पुस्तक :
पावस प्रवचन
द्वितीय पुष्प

प्रकाशक :
जयपुर चातुर्मास प्रवचन प्रकाशन समिति

मूल्य
२)५०

मुद्रक :
राज प्रिंटिंग वर्क्स
किशनपोल बाजार, जयपुर

श्रद्धा के दो शब्द

जयपुर चातुर्मास के शुभावसर पर आचार्य श्री १००८ श्री नानालालजी मा० सा० के प्रवचनो का यह द्वितीय पुष्प पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए हमे अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

आचार्य श्री का दिव्य संदेश "किं जीवनम् ? सम्यग् निर्णायकम् समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्" घर-घर में प्रचारित एवं प्रसारित होकर मानव जीवन को सुपथ पर अग्रसर करने मे प्रेरणात्मक बने—यही इस प्रकाशन का उद्देश्य रहा है।

प्रस्तुत पुष्प के सम्पादन एव दिशा-निर्देशन मे हमें आचार्य श्री के सुशिष्य श्री शान्ति मुनिजी मा० सा० का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।

मैं तो सिर्फ निमित्त मात्र हू—सर्व ओर से मुझे जो अपूर्व सहयोग मिला उसके लिए मैं अपने सब सहयोगियो को धन्यवाद देता हूँ व आभार मानता हूँ।

ज्ञानचन्द चोरडिया

एम ए ,बी.कॉम ,एल एल बी.

सयोजक

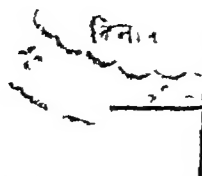
जयपुर चातुर्मास प्रवचन प्रकाशन समिति

दिनांक

१८-११-७२

अनुक्रमणिका





अनन्त-ज्योति

अतश्च खलु स पेहाए, धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए—

आचाराङ्ग २/१

अनंत जीवन प्रवाह मे जीवन को बीच का सुअवसर जानकर
साधक मुहूर्तभर के लिए भी प्रमाद न करें।

(प्रार्थना)

अनन्त जिनेश्वर नित नमूँ, अद्भुत् ज्योति अलेख।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख ।। अनन्त जिनेश्वर नित नमूँ।
सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप ।।
पवन शब्द आकाश थी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप ।। अनन्त जिनेश्वर नित नमूँ ।।

यह प्रभु अनन्त नाथ की प्रार्थना है।

आशय की स्थिति से व्यक्त हुआ है, ऐसा माना जा सकता है। क्योकि इसमे कहा है—

अनन्त जिनेश्वर नित नमूं, अद्भुत् ज्योति अलेख।
ना कहिए ना देखिये, जाके रूप न रेख॥ अनन्त जिनेश्वर....

शब्दो का अर्थ कुछ झलक ही रहा है और यह भावना व्यक्त हो रही है "अनन्त जिनेश्वर नित नमू"। कहाँ है अनन्त जिनेश्वर ? हमारी दृष्टि मे आ रहे है क्या ? हम उनको जब देख ही नही पा रहे हैं तो उनको नमन कैसे किया जाय ? पर साथ मे संकेत है कि उनको आप इन चमडे की आँखो से नही देख पायेगे। वे अद्भुत् ज्योतिस्वरूप हैं, जिनका कोई रूप नहीं है। न उनका कोई आकार ही है और न ही वे वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श से युक्त है। पौद्गलिक आकार रहित प्रभु के अद्भुत् स्वरूप का आभास मात्र कर सकते हैं लेकिन उनको देख नही सकते। देखने का प्रसंग भी एक समय आ सकता है बशर्ते कि इस मानव जीवन को आप समग्र रूप से समझ ले और इस जीवन की परिभाषा को भी, जो कि आप लोगो के सामने निरन्तर व्यक्त हो रही है। उस परिभाषा को सभी दृष्टिकोण से आप अवलोकन करते हुए अन्तर की वृत्तियो मे उसका प्रवेश कराले तो अनन्त नाथ भगवान् के दर्शन भी इस जीवन के लिए असम्भव नही है, कठिन अवश्य है। लेकिन यह कठिनता भी शनैः शनै सुगमता के रूप मे परिणित की जा सकती है। इस जीवन से बढकर इस ससार मे अन्य कोई जीवन नही दीखता। विशिष्ट आत्माए हैं उस दिव्य रूप को सुन कर सोचा करती है कि इस मानव जीवन का कितना महत्त्व है। विकास की स्थिति का जितना इसमे चान्स है उतना किसी दूसरे जीवन मे नही है, विशिष्ट केवलज्ञानियो ने भूमण्डल पर इस बात की उद्घोषणा की है। उस उद्घोषणा को नही समझने के कारण यदि वर्तमान जीवन को कुछ भी न समझ कर व्यर्थ मे गवाया तो बहुत बडी भूल होगी। हम इस भूल को सुधारने के लिए इस जीवन को समझने का प्रयास करे। इस जीवन मे अनन्त नाथ भगवान् की अद्भुद् ज्योति कैसे आये, जिस ज्योति के लिए जिस प्रकाश के लिए वडे वडे योगी लोग साधना के वल से अपनी जीवनियो की इतिश्री कर लेते हैं लेकिन उस ज्योति को, उस प्रकाश को पूर्ण रूप से प्राप्त नही कर पाते है। अत उस दिव्य जीवन को प्राप्त करने के लिए जीवन की परिभाषा को समझना नितात आवश्यक है।

मैं अनन्तनाथ भगवान् की प्रार्थना कह रहा हूँ। आज से करीव ढाई हजार वर्ष पहिले वीतराग प्रभु भगवान् महावीर ने वस्तुस्थिति का प्रतिपादन करते हुए भगवान् अनन्त नाथ के स्वरूप को प्रकारान्तर से रखा है। "अनन्त" का मतलव है जिसका अन्त नही। इस ससार मे जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं सव नाशवान है अत सान्त है किन्तु प्रभु पद अविनाशी है उनमे अनन्त शक्ति है अत वे अनन्त है। उस जीवन मे अनन्त शक्तियो का पूर्ण विकास है उसी अनन्तता को प्राप्त करने के लिए आप और हम लालायित हैं। उसके लिए शास्त्रो मे प्रक्रिया वतायी गई है जिसमे धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान का प्रसग आता है जिसका विस्तृत वर्णन शास्त्रो मे विद्यमान हैं। उस ध्यान मे यदि मानव तल्लीन हो जाय तो जीवन का जो वास्तविक सम्यक् निर्णायक स्वरूप है वह दृष्टिगत हो सकता है और वह प्रभु की अद्भुद् शक्ति के स्वरूप को भी अपने आप मे प्रकट कर सकता है। जो शक्ति प्रभु मे है वही शक्ति हमारे अन्दर भी विद्यमान है। उसको भली प्रकार से समझने का प्रयास करें।

इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तन भारत भूमि और भारतीय जनता को वहुत समय से प्राप्त है। एक नही अनन्त तीर्थ करो ने यहां जन्म लिया किन्तु उनके दिव्य स्वरूप को हम समझ नही पाये। इसीलिये भारतीय जीवन आज जिस स्थिति मे चल रहा है यह स्थिति कुछ विचारणीय है। भारतवासियो को तो यह सोचना चाहिये कि हम इस आध्यात्मिक क्षेत्र मे, नैतिकता के धरातल पर और जीवन की साधना के क्षेत्र के साथ-साथ वैज्ञानिक पद्धत्ति मे भी अन्य देशो से वहुत आगे हैं। यह ठीक है कि इस युग की स्थिति के अनुरूप प्रेक्टिकल रूप मे नही है फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से हम वहुत आगे है। ये सैद्धान्तिक वाते जो आज भारतीयो को उपलब्ध है वे सिद्धान्त आज अन्य क्षेत्रो को उपलब्ध नही हैं। अन्य देशो मे इस विषय की तो गवेषणाये ही चल रही हैं। विज्ञान के क्षेत्र मे वैज्ञानिकों ने खोज प्रारम्भ की। खोज की दृष्टि से आगे वढे। खोज करते करते उन्होने किस स्थान पर पहुँचने का प्रयास किया। पर इतना करते हुए भी उनके ऐतिहासिक पृष्ठो मे देखे तो पता लगेगा कि वे जीवन की सम्यक् निर्णायक स्थिति पर नही पहुँच पाये है। भारतीय सस्कृति एक आदर्श सस्कृति है। इसके द्वारा मानव अपना आध्यात्मिक विकास करके चिर सुख शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

जीवन को पानी मत बनाइये

आज का मनुष्य कितना ही भौतिक शक्तियो के सहारे चले लेकिन वे भौतिक शक्तियाँ आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि नही दे सकती हैं जिस आध्यात्मिक शक्ति से व्यक्ति अपने आप के अन्तर को देख सकता है। क्या आप अपने अन्तर की स्थिति को देखने का प्रयास करेगे। आज मानव की दृष्टि बाहर की ओर लगी हुई है। मानव इधर-उधर दृष्टिपात करते हुए यह सोचता है कि फॉरेन के अन्दर जो कुछ बाते श्रवण करने को मिल रही है क्या वे हमारी भारतीय सस्कृति मे, या भारतीय संस्कृति के ग्रन्थो मे है। क्या ये बाते भारतीय पुस्तकों मे मिल सकती हैं? अधिकतर व्यक्तियो को इस बात की जानकारी नही परन्तु ऐसा वर्णन हमारी पुस्तको मे उपलब्ध है। इस बारे मे मैं आपसे कुछ कहने की स्थिति मे हूँ। आपके साहित्य और शास्त्रो के अन्दर वस्तुतत्व का स्वरूप उससे बढकर विद्यमान है। जीवन की कला, जीवन के स्वरूप का वर्णन, जीवन की पद्धति क्या है, जीवन के सिद्धान्त क्या है, आदि सभी विषय आपके इन भारतीय सस्कृति के ग्रन्थो मे उपलब्ध हैं जो फॉरेन के ग्रन्थो मे नही है क्योकि उनका इतिहास जब हम देखते है और उनके विकास के क्रम को सामने लेते है तो हमे ज्ञात होता है कि वे अपने आप मे अन्दर प्रयोग करते हुए कैसे आगे बढे है। यूनानी दार्शनिको का जो प्रथम दर्शन है, उस ग्रीक के दार्शनिक को लेते हैं, उस ग्रीक दार्शनिक कोलिस का चिन्तन है कि ससार मे जो कुछ है जड ही जीवन है। जड ही जीवन का स्वरूप है। ससार का स्वरूप एक तत्व मे है। उनकी एक कल्पना इस प्रकार से बही। वे कैसी कल्पना करते थे, उसका थोडा सा नमूना यदि आज आप देख लेगे तो आप अपने मस्तिष्क से चिन्तन कर पायेगे। उनका चिन्तन कुछ भी महत्व नही रखता है। ग्रीक दर्शन मे प्रथम दार्शनिक थेलिश हुआ है—उसने जीवन के एक तत्व का चिन्तन किया और उसने कहा कि पानी ही सब कुछ है, पानी से ही जीवन बनता है, पानी ही जीवन का स्वरूप है। पानी से ही ससार चल रहा है, पानी से ही पत्थर बने हैं। याने सब कुछ पानी ही है। इस प्रकार का दृष्टिकोण बना। इस दृष्टिकोण से वे अपने आपको समझाने लगे। अब उनका दूसरा साथी आता है—एनाक्षी मेनसे। वह कहता है, पानी ही जीवन नही है। जीवन तो वायु है। इस वायु से ही संसार की रचना हुई है। यह जीवन जो जड और चेतन के रूप मे है। यह वायु से निर्मित है। यह एक ही तत्व वायु

के सहारे चल रहा है। परन्तु इससे कुछ लोगो को तुष्टि नही हुई। तीसरे साथी उनके इस क्षेत्र के अन्दर आये जिसका नाम हेराक्लीट्स था। वह कहने लगा—यह जीवन पानी और वायु से नही बना है। तेज ही जीवन का सहारा है। तेज ही सृष्टि का तत्व है। तेज ही जीवन का स्वरूप है, तेज ही आत्मा है। तेज से ही जड और चेतन की रचना हुई है और यह सब उसी के अन्तर्गत चल रही है। लेकिन ये सब छद्मस्थ, अवेर व्यक्तियो की खोजे थी और उसके साथ एक न एक व्यक्ति एक-एक नई खोज को लेकर आता रहा। एक कहता है पानी से सृष्टि की रचना हुई है, दूसरा कहता है वायु से जीवन, सृष्टि की रचना हुई है और तीसरा कहता है कि तेज से। आप इसको मान जायेगे? प्रारभिक विद्वानो की दृष्टि से इन सबको सामान्य रूप से यहाँ पर लिया है। यहा जड तत्ववाद का उल्लेख आया है। जो सृष्टि के अन्दर तत्व है उन सब मे इसका सम्मिश्रण है और उसके अन्दर जीवन है। आप सोचिये, प्रारभिक विद्वानो को, दार्शनिक दृष्टि और उनका दर्शन क्या सोच रहा है। आज की दृष्टि से उनका चिन्तन भिन्न चल रहा है। यह उनका प्रारभिक सोचना था। इसके बाद जो दार्शनिक आये हैं उन्होने द्वैतवाद की स्थिति का प्रसग उपस्थित किया। जड और चेतन का प्रसग आया। जड और चेतन की खोज आगे चली। ऐनाक्षी गोरस नामक दार्शनिक ने कहा—सृष्टि के अन्दर स्वतन्त्र रूप से दो तत्व हैं। एक है जड तत्व और दूसरा है चेतन (*Nous*) तत्व। जितने निर्जीव पदार्थ दिखते हैं उनको जड तत्व और जितने चैतन्य के स्वरूप मे दिख रहे हैं उनको चैतन्य तत्व के अन्दर रख लिया जाये। इस प्रकार उन्होने आगे की स्थिति रखी। इसके पश्चात् आधुनिक ढग के ग्रीक दार्शनिक डेमोक्रिट्स का सिद्धान्त नानार्थवाद के रूप मे आया। वह कहने लगा हम दो ही सिद्धान्तो से नही चलते हैं, सृष्टि के स्वरूप मे दो तत्व ही नही हैं, दो तत्वो को ही जीवन का स्वरूप नही समझा जा सकता है। उसने नानार्थवाद की स्थिति को सामने रखा और यह घोषणा की कि ससार अनेक तत्वो से बना है। उन्होने स[illegible]या की दृष्टि से गिना और उसको असख्यात्मक स[illegible]या बना कर अनन्त दृष्टि का चिन्तन किया जो वर्तमान का वैज्ञानिक युग है, इसमे भी यही कुछ चिन्तन हो रहा है तो यही कुछ। इस समय जो स्थिति सामने आ रही है उसमे अनन्त तत्व हैं। इन अनन्त तत्वो की खोज आज मानव भौतिक साधनो से कर रहा है। आज मानव का सारा का सारा जीवन भौतिक खोज की ओर मुड रहा है। आप जरा सोचिये। विज्ञान के धरातल पर आप जरा

चिन्तन करेंगे तो आपको विदित होगा कि आज का वैज्ञानिक किस आधार पर इस जीवन की स्थिति का अकन करने की कोशिश कर रहा है। मैं इस बात को आपके सामने इसलिए रख रहा हूँ कि मानव मस्तिष्क मे आज कल इन पाश्चात्य दर्शनो का, एव वैज्ञानिक दृष्टिकोणो का एक विशेष महत्त्व हो गया है। आज इसको महत्व की स्थिति से देखा जा रहा है। अब जो आधुनिक जीवन की परिभाषा है उसके साथ ही यदि आप भारतीय संस्कृति के प्राचीन ग्रन्थो को देखेगे और उनके शास्त्रो का अवलोकन करेगे तो आपको मालूम होगा कि नानार्थवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, जडवाद ये सारे वाद भारतीय सस्कृति के ग्रन्थो के अन्दर विद्यमान हैं। जो आध्यात्मिक दृष्टि पर आधारित हैं। अलग-अलग दार्शनिको के दर्शन की जो पृष्ठ भूमि रही है, वे सारे तत्व, प्रयोग और सिद्धान्त यहाँ पर विद्यमान है और उनको देखने से आप इस निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि जीवन का स्वरूप उसमे से ढू ढा जा सकता है।

आप वर्तमान जीवन मे जिस ख्याति और शक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं, वह कैसे प्राप्त की जा सकती है इस दृष्टिकोण से चिन्तन करें। पाश्चात्य देशो के विद्वानो, विशेषकर ग्रीक देश के विद्वानो का उल्लेख मैंने किया है। वहा पर जो और विद्वान हुए है उनके दृष्टिकोणो को भी सामने रखा है, और रख रहा हूँ। आप इन पर जरा सोचिये, चिन्तन कीजिये। आप कहेगे महाराज, पाश्चात्य दृष्टिकोणो से हमारा कोई मेल नही है। पर मैं कहूँगा फिर भी यह हमारे देश मे क्यो फैल रहा है। आप अपने मन को थोडा इसकी ओर केन्द्रित कीजिये। तुलनात्मक दृष्टि से मैंने इस विषय को छुआ है। हम चिन्तन के क्षेत्र मे आगे बढकर चिन्तन के द्वारा उस जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास करे कि इस जीवन के साथ अनन्त शक्ति का सम्बन्ध जुडा हुआ है। हम कैसे आत्मा की अनत शक्ति को मानते हैं और कैसे आत्मा को स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप मे मानते हैं। इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषय हमारे ग्रन्थो मे भरे पडे है पर उनकी तरफ हमारा ध्यान ही नही है। वैज्ञानिक और पाश्चात्य दार्शनिक उन गहन तत्त्वो को समझने का प्रयास कर रहे हैं और हम कान मे तेल डालकर सो रहे हैं। सत्य रूप से देखा जाये तो हमारा यह सारा जीवन सघर्ष के लिये रहा है। जीवन की सारी शक्ति लडाई झगडे करने मे, तेरी मेरी करने मे जा रही है। मेरा पडौसी क्या कर रहा है, मेरा पडौसी उन्नति क्यो कर रहा है, मैं इस उन्नति करने वाले पडौसी के पैरो मे कैसे कुठाराघात करूं, उसको गिराकर मैं कैसे उन्नति के शिखर पर

पहुंच चाहिए, यह भावना भारतीयों के मस्तिष्क मे प्रवेश कर गई है। भारतीयो मे जो अपूर्व दिव्य शक्ति, दिव्य ज्योति विद्यमान थी वह आज उनमे से ओझल होती जा रही है। इतना होते हुए भी, इतनी पिछडी स्थिति मे बैठ कर भी हमारी निद्रा भग नही हो रही है, हम प्रगाढ निद्रा मे सो रहे है। आप प्रश्न करेगे महाराज कहा सो रहे है, सोये हुए होते तो लाल भवन मे कैसे आते ? मैं आपके लिये ही नही कह रहा हू। आपके भाई बहुतेरे है, जो प्रमाद की नीन्द मे सो रहे हैं। आप भी यहा तो जरूर बैठे हुए हैं। आपका दृष्टिकोण मेरी तरफ लगा हुआ है। आपके कान कुछ श्रवण भी कर रहे है लेकिन जिस प्रकार से यह लाल भवन धार्मिक दृष्टि से जीवन के अनत स्वरूप को ढूढने का आकर्षण बिन्दु है, वैसा आकर्षण बिन्दू आत्म स्वरूप के प्रति आपके जीवन का बन गया है या नही ? यहा आप सुनने आये हैं, सुनते है और सुन कर चले जायेगे। चलो भाई लाल भवन पहुच जाय, कुछ सुन लें और अपनी हाजरी दे दे—अन्यथा कभी महाराज ने पूछ लिया और हाजरी न हुई तो अच्छा नही रहेगा। आज रविवार का दिन है, छुट्टी का दिन है अत जैसे अन्य क्षेत्रो मे पर्यटन आदि के लिये जाते है वैसे ही यहाँ पहुँच जाये। पर हाजरी भरने के लिये भी किस टाइम पर पहुचना है व्याख्यान के प्रारम्भ मे या पूरा होने पर। मैं सुनता हूँ कि भारतवासियो की आदत कुछ ऐसी बनी हुई है, कि वे समय के पाबन्द बहुत कम मिलते है। कही २ स्कूल के अन्दर सुनने और देखने का प्रसग आता है। अध्यापक लोग छात्रो की हाजरी लेते है उसके बाद फिर छात्र ईमानदारी के साथ अध्ययन कर रहे हैं या नहीं ईमानदारी से पढ रहे है, या नही यह नही देखते है। ऑफिस मे कोई अधिकारी देखरेख के लिये उपस्थित हुआ तो इधर उधर घूमते हुए मिलेंगे। यह प्रवृत्ति और इस प्रकार की स्थिति, हमारे जीवन का नक्शा व्यक्त कर रही है। आज भारत का

दौड रहे हैं, आपा धापी करने में लगे हुए हैं। यह कहावत चरितार्थ हो रही है कि जितना संग्रह कर सके उतना कर लेना चाहिये। यही जीवन का ध्येय, यही जीवन की दृष्टि बन गई है। इधर उधर हाथ फैलाने लग गये हैं। इसकी तरफ दौड लग रही है। फिर हम चाहे कि अनंत नाथ भगवान के दर्शन हो तो कैसे हो सकते हैं ?

छात्र पढने की दृष्टि से स्कूल पहुचता है और वह स्कूल मे अध्ययन की कक्षा मे न बैठे और हाजरी मांड कर बाहर खेल कूद करता रहे और दिन भर उसीमे बिता दे, फिर वह छात्र परीक्षा के समय यह चिन्तन करे कि मैं परीक्षा के अन्दर प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होऊं। क्या वह छात्र प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हो सकता है ? नही हो सकता है। जब वह नही होता है तो दुःख का अनुभव करता है और कभी-कभी इतना दुःखी हो जाता है कि इस जीवन को ही समाप्त कर लेने की सोच लेता है और यह कल्पना कर लेता है कि यह हमारा जीवन बेकार जीवन है, इतने समय तक स्कूल मे अध्ययन किया और मैं फैल हो गया अब इस जीवन को रख कर क्या करू। वह यह अनुसधान नही कर पाता है कि वस्तुतः मैने अध्ययन किया या नही। मैंने खेल कूद किया या अध्ययन किया। अगर खेल कूद मे लगा रहा तो अध्ययन नही हुआ और उसके परिणाम स्वरूप मैं फैल हो गया। इस बात का वह अनुसधान नही करता है लेकिन चूंकि मै फैल हो गया इसलिये मेरा जीवन ही व्यर्थ हो गया इस प्रकार के विचारो से आत्मघात तक करने के लिये तैयार हो जाता है।

मैं जब देहली मे आया तो सुना गया कि कुतुब मिनार पर पहरा लगा हुआ है। मैंने पूछा क्यो ? तो कहा कि आजकल परीक्षाओ के रिजल्ट निकल रहे हैं और परीक्षाओ के रिजल्ट मे छात्र पास भी होते है और फैल भी होते हैं। जो फैल होने वाले छात्र है वे उस एक वक्त की असफलता को लेकर अपने वर्तमान के बहुमूल्य जीवन को समाप्त करना चाहते हैं और कुतुब मिनार पर चढ कर आत्मघात करना चाहते है इसलिये सरकार की ओर से पहरा लगाया गया है कि कोई छात्र कुतुब मिनार पर चढ न सके।

मैं जब इस बात को सुनता हू तो मुझे आश्चर्य होता है कि आज भारतवासियों की क्या दशा है ? जीवन की कली खिली नही, विकसित नही हुई उसके पूर्व ही स्वयम् की लापरवाही से फैल हो कर मरने की तैयारी कर रहा, आत्मघात कर रहा है। आत्मघात कितना बडा पाप है यह उसको महसूस नही हो रहा है। महसूस कैसे हो, जब उसने जीवन

का मूल्य ही नही समझा है। बिना मूल्य समझे ही वह जीवन को समाप्त कर रहा है।

पहिले किसकी दाढी बुझाओगे ?

आत्मघात करने के लिये कई भाई और बहिने तैयार हो जाते है। यह केवल छात्रो का ही प्रसग नही है। मेरे कानो मे कभी-कभी कुछ भाई और बहिनो की बाते सुनने को आती हैं, वे सोचते है कि इस जिन्दगी मे क्या पडा है, जिधर देखो उधर गरीबी और आपा धापी मे समस्याये हल नही हो पाती हैं इसलिये इस जीवन मे तो मरना ही श्रेयस्कर है। मैं भाई बहिनो को परामर्श देता हू कि इन छोटी सी समस्याओ को लेकर अपने आपको खो रहे है और इस बहुमूल्य जीवन को समाप्त करने के लिये उतारू हो रहे हैं। कितना जघन्य पाप कर रहे हैं। दुनिया मे इससे बढकर कोई पाप नही हो सकता है। यह आत्मघात महापाप का भी महा पाप है। कत्लखाने मे भी पाप होता है कसाई महापाप का कार्य कर रहा है, पर आत्मघात करने वाला उससे भी बढकर महापापी है। आप सोचेंगे, यह कैसे ? कसाई बकरे आदि का वध कर रहा है उसको महापापी कहा जा सकता है। जो व्यक्ति अपने जीवन को ही समाप्त कर रहा है दूसरो के जीवन को तो समाप्त नही कर रहा है। वह अपने जीवन को भी इसलिये समाप्त कर रहा है कि उससे दुःख सहन नही हो रहे हैं या और किसी अन्य प्रकार की बातो मे अपने जीवन को समाप्त कर रहा है। इसको महापापी क्यो कह रहे है ? इसलिये कि बकरे और भैसो को काटा जाता है उसमे क्रूरता आती है और अतिक्रूरता के अन्दर हिंसा होती है फिर भी जो बकरे पर हाथ उठा रहा है, वह यह सोचता है कि छुरी चलाने से मुझे कष्ट नही होता है, वह अपनी सुरक्षा कर दूसरो पर छुरी चलाता है वह यह अनुभव नही करता है कि यदि मेरी अंगुली पर लग जाय तो मुझे कैसा अनुभव हो। इस प्रकार उसमे क्रूरता जरूर आती है और इतनी क्रूरता आती है कि उसको महापाप की संज्ञा दी गयी है। पर आप सोचिये कि उसकी अपेक्षा भी जो अपने आप पर छुरी चलाता है, वह अत्यधिक क्रूर बनता है वह साधक अपने शरीर के अवयवो पर हाथ उठाता है।

महत्वपूर्ण जीवन है। और आपके जीवन को मैं सबसे श्रेष्ठ और प्रिय समझता हूं। आपके लिये शासन व्यवस्था सबसे प्रिय है लेकिन मेरे लिये तो आप ही श्रेष्ठतम, प्रिय है। बादशाह ने कहा मैं अधिक प्रिय हू ? जी हजूर। तो तू एक बात का उत्तर दे कि तुम्हारी दाढी मे भी आग लग जाय और उसी समय मेरी दाढी मे भी आग लग जाय तो पहले तू किसकी आग बुझायेगा ? तो उस समय बीरबल कहने लगा, जहा पनाह, हजूर माफ करिये यहा पर तो सबसे पहले हाथ मेरी दाढी पर ही जायगा। पहले मैं अपनी दाढी को बुझाऊ गा और बाद मे आपकी दाढी को बुझाऊ गा।" तो बता—अभी तो तू कह रहा था कि आप सबसे प्रिय है और सारा जीवन आप पर न्यौछावर है तो मेरी दाढी पहले क्यो नही बुझाता हैं। हजूर, वह तो आदर्शवाद की बात है। यथार्थवाद की बात तो यह है कि मैं अपने आपको सबसे प्रिय समझता हूं। मैं अपने जीवन को सबसे अच्छा समझता हूं और दूसरे नम्बर पर मैं आपको समझता हूँ और फिर तीसरे नम्बर मे अन्य व्यक्तियो को समझता हूँ। यह तो एक रूपक है।

मनुष्य को अपना जीवन कितना प्यारा है, कितना प्रिय है। कितना वहुमूल्य है यदि इस ओर मनुष्य सोचे तो जीवन को समझ सकता है। लेकिन मनुष्य अपने जीवन के महत्व को न समझ कर थोडे से संकटो को देख कर तथा उनसे घबरा कर अपने बहुमूल्य जीवन को समाप्त करने पर उतारू हो जाता है, चोरी छिपे अपने शरीर को रेल के पहियो के नीचे फैंक देता है या जहर खाकर मर जाता है या घासलेट डालकर आग लगा कर मर जाता है। यह वरबादी का रास्ता आज भारतवासियो को क्यो सूझ रहा है ? मैं सोचता हूँ फॉरेन के व्यक्तियो को ऐसा रास्ता नही सूझता है। बहुत कम लोग होगे जो उस रास्ते पर जावे चाहे भौतिकवादी हो या अन्य तरह का दृष्टिकोण रखते हो। परन्तु वे इस प्रकार के रास्तो को नही अपनाते हैं और जिनको बार-बार आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा मिलती है वे अपने जीवन की वेकद्री करके मरने की सोचते हैं। क्या उन्होने जीवन के स्वरूप को समझा है। कि जीवनम्-जीवन क्या है ? इसको समझना है। जीवन की परिभापा के प्रसग से मैं आपको कुछ बता रहा हूँ। सम्यकम् निर्णायक्म् समता मय च यत् तत् जीवनम्। इसकी परिभापा मैं राज्य की राजधानी के नागरिको के समक्ष कर रहा हूँ ताकि वे इसको समझे और उसको समझ कर राजधानी के आस पास के क्षेत्र मे इसका प्रचार प्रसार करे। सब तरह के व्यक्ति चाहे वे व्यापारी वर्ग के

हो या अधिकारी वर्ग के हो, वे दिलचस्पी के साथ इसको समझें। वे एकाग्र होकर इसका श्रवण करें और श्रवण कर इसका चिन्तन मनन करें। जीवन क्या है ? इसको समझने का प्रयास करें तो जीवन की परिभाषा समझ में आ सकती है, जीवन के स्वरूप को समझा जा सकता है।

मैं एक जिज्ञासा रखता हूँ और सोचता हूँ कि बैठने वाली जनता मेरी जिज्ञासा की पूर्ति करेगी। हालांकि मैं दूसरे त्याग प्रत्याख्यान पर हाथ नहीं उठवाता हूँ, इसके लिये मेरी भावना कम रहती है। परन्तु मैं यह चाहता हूँ कि यहां पर बैठने वाले भाई और बहिन अपने जीवन के महत्त्व को समझते हों तो कम से कम सर्वानुमति से इस विषय में हाथ ऊंचा करने की कोशिश करें कि हम कभी भी आत्मघात नहीं करेंगे। अपने जीवन को अपने आप नष्ट नहीं करेंगे। क्या इसमें भी सलवार करेंगे। क्या मेरी बात आपने नहीं सुनी ? कैसी भी परिस्थिति हो अपने आप का घात नहीं करेंगे। बड़ा विचार हो रहा है। या तो मेरे शब्द मेरी बहिनें नहीं समझ पाई हैं। इधर दूर बैठने वाले छोटी-छोटी बात करते हैं इसलिये संभवतः उनके कान पर यह बात नहीं आ पाई हो, क्या आप अपने जीवन को खत्म करना चाहते हैं। आपको यह समझना है। जीवन की परिभाषा को ठीक करना है तो सबसे पहले हम जीवन को समाप्त नहीं करने का संकल्प लें, हमारे जीवन में कैसी ही अवस्था हो हम उससे नहीं घबराएंगे अपने आपके जीवन को नष्ट करने का प्रयास हम नहीं करेंगे। कैसी भी परिस्थिति हो, जो अपने आप पर हाथ उठाता है तो वह अहिंसक नहीं हो सकता है, क्या वह जैन हो सकता है, क्या उसे मानव कहा जायेगा ? जो आत्मघात का त्याग नहीं करता क्या मैं उसको जैन कहूँ ? तो फिर कैसे

है। वे सोचते है कि महाराज क्या बोल रहे है। कभी परिमाण, चेतन्य, लक्षण, निर्णायक आदि ये सब क्या है। वस्तुत इन विषयो का अभ्यास न होने से हरेक व्यक्ति इसको नही समझ पा रहा हैं। परन्तु आप सदा-सर्वदा, निरन्तर श्रवण करते रहेगे तो यह अवश्य ही समझ मे आयेगा। आपको यह बता रहा हूँ कि जो जीवन निर्माण की ओर बढता है, वह जीवन के महत्व को समझता है, अपनी सन्तानो को भी इसका महत्व समझाता है। वह जीवन के एक भी क्षण को व्यर्थ मे नष्ट नही करता है। वह चिन्तन मे यह सोचता है कि गृहस्थ अवस्था मे भी उसके कुछ उत्तरदायित्व हैं, वह उनको समझने को कोशिश करता है। कथा भाग से यह विषय आपके समक्ष स्पष्ट आ रहा है।

कथा भाग का वर्णन चल रहा है—महारानी एक स्वप्न देख कर अपने पतिदेव के सामने उसका वर्णन रखती है। महाराजा ने जब यह बतलाया कि तुम्हारी कुक्षी मे से एक दिव्य पुरुष आयेगा, जो शाति का पु ज होगा। वह सरोवर के समान आकर्षक होगा। वह पानी के समान सब जीवो का आधारभूत होगा। कमल के समान जीवन को सुगन्ध से परिपूर्ण करने वाला होगा। सन्तजन के लिये और परिवार के लिये वह शुभ और उज्जवल होगा। महारानी यह श्रवण कर गभीरता से उस पर चिन्तन करने लगी। अभी तक तो मैं अपने जीवन के कर्त्तव्यो का निर्वाह करने की दृष्टि से ही चल रही थी। पर आज मुझ पर एक उत्तरदायित्व और आ गया है। अत. मैं अपने आपके जीवन को ऐसा रखूँ, कि उसके आधार पर सन्तान का रक्षण कर सकू ताकि वह अपने जीवन निर्माण के संस्कार जन्म से ले सके। वह इन सब बातो का चिन्तन करती हुई अपने जीवन को उस तरह बिताती है जिससे गर्भस्थ सन्तान को कोई कष्ट न हो उसमे अभद्र संस्कार न आए।

मां के संस्कार बेटे में

महारानी महाराज के वचन सुन कर प्रसन्नता का अनुभव करती है। गम्भीरता से चल कर अपने भवन मे पहुँचती है। सोचती है, मेरे ऊपर सतान का उत्तरदायित्व आया है उसका पालन कैसे करू। क्या यह भी उत्तरदायित्व है?

वहिनो की तपश्चर्या का मंगलाचरण प्रारम्भ हो रहा है। कल भी कुछ वहिनो ने प्रात्याख्यान किये थे (पछखे थे)। वहिनो की शक्ति

आज कल भी नारे तो लग रहे है। गरीबी मिटाने की आवाज बुलन्द हो रही है लेकिन यह आवाज केवल प्रधान मत्री तक ही सीमित है या प्रधान मत्री की जाति की ये बहिने है, इन बहिनो के अन्दर भी वह आवाज आ रही है ? आज का युग परिवर्तित युग है। आज के युग मे बहिनो के विषय मे उन्नति की कल्पनाये उठती जा रही हैं। प्राचीन काल मे बहिनो के विषय मे बहुत कुछ अनादर के भाव थे लेकिन आज बहिनो के प्रति आदर के भाव बढते जा रहे है। सभा मे कभी बोलने का प्रसंग आता है तो बहिनो को पहले बोलने का मौका दिया जाता है। संतो ने प्रश्न कर लिया कि माताओ को क्यो पहले बुला रहे हैं। तो भाई के मुख से निकला कि आज माताओ की प्रधानता है। इन्दिरा गाधी बहिनो का प्रतिनिधित्व लेकर चल रही है और किसी दृष्टिकोण से आज सारे विश्व मे एक धाक जमा ली है। यह तो मुझे बताने की आवश्यकता नही है लेकिन मै दो शब्दो से समग्र जीवन का सम्बन्ध जोडने का सकेत दे रहा हूँ कि आज की जो माताये हैं उनको पर्दे मे रख कर निर्बल बना दिया है, उनके जीवन मे धार्मिक सस्कार, उन्नत जीवन के सस्कार, जीवन निर्माण के सस्कार और जीवन के स्वरूप को समझने के सस्कार प्रायः नही आने दिये हैं। प्राय इसलिए कि इसमे कुछ अपवाद हैं।

इस पर आप अपने अन्तरमन से चिन्तन करें, जो विचारक या राजनैतिक क्षेत्र के लोग हैं वे किस प्रकार से इस विषय मे सोचते हैं ? यह यह तो विदित ही है लेकिन जो व्यापारी या दूसरे लोग हैं वे बहिनो के बारे मे इस प्रकार सोचते है कि ये तो हमारी कठपुतली है। जैसे अनेक वस्तुऐ हैं उन वस्तुओ मे से यह भी एक वस्तु है। एक वस्तु से तृप्ति नही हुई तो दूसरी वस्तु को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार इन बहिनो के प्रति मानव अपने कर्त्तव्य का पालन नही कर रहा है। पुरुष इस ढग से क्यो चल रहा है इसका चिन्तन करना चाहिये। बहिनो मे जागृति आ रही है। एक बहन प्रश्न कर रही थी। वह काकरिया परिवार की बहन थी, उसने एक प्रश्न रखा कि महाराज, बहिनो को अपने जीवन के अन्दर एक ही वक्त शादी करने का अधिकार है। बहिने केवल एक वक्त शादी करती हैं। फिर कदाचित् पति का वियोग हो जाये तो वह अपसे उत्तरदायित्व का वहन करती है, अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का पालन करती है तो क्या पुरुष के लिये भी ऐसा नियम नही है, उसका कोई कर्त्तव्य नही है। यह प्रश्न मेरे सामने था। लेकिन वह प्रश्न आपके सामने रखे तो आप क्या उत्तर देंगे। क्या इधर उधर बगले झाकेंगे ? जिस तरह की दृष्टि ये रखती हैं क्या मनुष्य नही

रहे। एक बार विवाह हो जाये और संयोगवश ऐसा प्रसंग आ जाये तो क्या पुरुष जीवन भर अकेला नहीं रह सकता। वह ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता? वह दूसरा विवाह क्यों कर लेता है। इस मामले में बहनों की कमजोरी है। वह बहनों पर अत्याचार करता है और दूसरी तरफ बहनें अपना कर्त्तव्य पालन करने को तैयार है, तत्पर है। उनकी बेकद्री का असर है जिसमें इसको खेल रहे हैं। उनके मूल्य को नष्ट कर रहे हैं। एक स्त्री के बाद पुरुष दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है। पर इस प्रकार की स्थिति कब तक चलेगी? जब तक कि माताएँ अपने जीवन के स्वरूप को नहीं समझेंगी। जब तक उन्होंने भी यह समझ लिया है कि वे पुरुषों की कठपुतलियां हैं, उनके विषय विकार की सामग्री हैं तब तक वे अपने जीवन का मूल्यांकन नहीं कर सकती हैं।

मैं आपको यह बतला रहा हूँ कि इन माताओं को उस प्रकार की शिक्षा दी जाय जिससे वे अपने स्वरूप को समझ सकें। मैं स्त्री शिक्षा का पक्षपाती हूँ, परन्तु स्वच्छन्द शिक्षा का पक्षपाती नहीं हूँ। एक तरफ शिक्षा में उन्नति हो रही है, स्कूलों के अन्दर जो शिक्षा दी जा रही है, वह जीवन निर्माण की दिशा में नहीं है। वह शिक्षा विषयों की तरफ है। वैसी शिक्षा नारी जीवन के लिये उपयोगी नहीं है। नारी अपने जीवन के स्वरूप को समझे, ऐसी शिक्षा का मैं पक्षपाती हूँ। भारतीय संस्कृति के अनुरूप उनके जीवन का निर्माण जिनराज देव ने यथास्थान बताया है माताएँ अपने उस दायित्व को समझकर शक्ति का विकास करें। इन माताओं में जागृति लाने की आवश्यकता है। वे अपने जीवन के अन्दर स्वयं के गौरव को समझें।

का पालन हो रहा है वह महापुरुष चिन्ता वाला न वने। क्योकि यदि वह अधिक चिन्ता वाला बन गया तो हृदयरोग की वीमारी से ग्रस्त हो जायेगा और वह जीवन का उद्धार नही कर पायेगा, जीवन के स्वरूप को नही समझ पायेगा, जीवन की परवाह नही कर पायेगा। इसलिये वह चिन्तामुक्त हो। वह चिन्तामुक्त कव बनेगा जव कि मै चिन्ता छोडू गी। तो उन्होने चिन्ताओ को तिलाजलि दे दी और साथ ही साथ यह भी सोचने लगी कि मेरी सतान व्यक्तिगत चरित्र से हीन न वने। वडा होने के वाद अपने चरित्र को न गिरावे, चरित्र निर्माण का सव से वडा सम्वल है ब्रह्मचर्य व्रत। मेरी कुक्षी मे इस पुत्र का आरोहण हो गया है तो मै अव ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करू और जव तक कि इस गर्भ का ठीक स्वरूप बाहर व्यक्त न हो जावे मैं विषयो की तरफ न मुडू । यह भावना मेरे मे अभी से चलेगी तो गर्भ के अन्दर रहने वाला वच्चा इस दृष्टि को ग्रहण करेगा तो वाहर आने के वाद अपने नैतिक जीवन के अपने उत्तरदायित्वो को समझते हुए अपने जीवन को वर्वादी की ओर नही ले जायेगा। यह भावना किस को थी ? यह उस माता को थी। मै इस चरित्र का कथन इसलिये कर रहा हू कि आज का मानव भी अपने जीवन को इस तरीके से चलावे। आज के भाई, वहिन अपने जीवन के उत्तरदायित्वो को समझ कर अपनी कर्तव्यनिष्ठा के साथ ईमानदारी का पालन करे। जब कभी किसी गृहस्थ के घर मे सतान होने की स्थिति मालूम होती हो तो वे भी ब्रह्मचर्य का अखडता के साथ पालन करे। यह मर्यादा मैं सोचता हू आज पुरुष मे कितनी है। इसे विचार पूर्वक सोचे। पशुओ मे हम सुनते हैं कि जिस वक्त मादा पशु गर्भ धारण करती है तो पुरुष पशु उसकी तरफ देखता भी नही है। यह दृष्टि उनमे है। लेकिन आज के मानव मे कितनी निष्ठा है, यह मेरे मु ह से कहलाने की बात नही है। आप अन्तर में ही विचार करके देखे। ऐसी अवस्था मे भी मानव अपने पर नियन्त्रण नही रखता है तो आने वाली सन्ताने क्या बनेगी। वे बदचलन बनेगी तो उसका उत्तरदायित्व उनके माता पिता पर होगा। आप चिन्तन करिये मै यह बात इसलिये कह रहा हू कि आप जीवन के स्वरूप को समझे, जीवन के स्वरूप को सही अर्थ से देखे। यह समझ कर इस जीवन को अनन्त नाथ भगवान के चिन्तन मे लगा देगे तो आपका जीवन अन्त मे सफल और मगलमय हो सकता है।

जयपुर
३०-७-७२

इस दृष्टिकोण से तीर्थकरो के नाम का प्रसग आपके सामने आ रहा है और यहा धर्मनाथ भगवान को याद कर लिया गया है। कवि ने सकेत दिया कि—

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो

इस प्रार्थना को भक्तजन कभी-कभी बडी मस्ती से गाते हैं और प्रभु को यह आमत्रण देते हैं कि धर्म जिनेश्वर आप मेरे हृदय मे बसो। हृदय का तात्पर्य आप द्रव्य मन तक ही न समझे भावमन से भी उसका सम्बन्ध है क्योकि द्रव्य मन तो सारे शरीर मे व्याप्त है पर उसका सचालन भाव मन से होता है। भाव मन, यह आत्मा की शक्ति है। उस शक्ति मे अनेक तरह की विकृतिया है। अनादि काल से आत्मा इन पर पदार्थो के साथ रमण कर रही है। ये जितने भौतिक तत्त्व दिख रहे हैं उनको आत्मा अपना मान कर चल रही है और उन तत्त्वो के पीछे अपनी समग्र शक्तियो को लगा रही है। उसके परिणामस्वरूप भौतिक तत्त्व के सस्कार जिन्हे हम कर्म कह सकते हैं आत्मा के साथ सम्बद्ध हो जाते है ? शास्त्रीय परिभाषा से कर्म सज्ञा एक प्रकार के पुद्गल-मेटर की ली गई है। वे कर्म भौतिक तत्त्वो के बने हुए हैं। आत्मा के असख्य प्रदेशो पर जब उस सूक्ष्म कर्म रज का आवरण आ जाता है तो आत्मा की समग्र शक्तिया आच्छादित हो जाती है पर उनमे से कुछ न कुछ पुरुषार्थ रूप आत्मिक प्रकाश बाहर आता ही रहता है। इसे एक उदाहरण द्वारा आप और स्पष्ट कर लें:—

एक हजार पावर का बल्ब प्रकाश युक्त है। वह किसी स्थल पर पडा हुआ हो और उसके ऊपर एक लाल कपडा ढक दिया जाय। उस लाल कपडे के ढकने से बल्ब के उस प्रकाश की शक्ति का हनन तो नही होगा। वह शक्ति नष्ट तो नही होगी लेकिन कपडे के आवरण से दब जायेगी। कपडे मे से छन कर कुछ प्रकाश की शक्ति बाहर आएगी। तो उस लाल कपडे से छन कर जो रोशनी बाहर आ रही है और वह किसी दीवार पर गिर रही है। मान लीजिये वह दीवार श्वेत वर्ण की है किन्तु उस पर रोशनी की किरण गिर रही है तो वह दीवार कैसी दिखेगी ? आपने कभी अनुभव किया होगा ? लाल दिखेगी। क्या प्रकाश की किरणे लाल हैं ? प्रकाश की किरणे मूल मे तो श्वेत हैं लेकिन उस लाल कपडे के आवरण से लाल-लाल दिखने लगी और जिस किसी पदार्थ पर पडती है तो वे लालिमा ही उपस्थित करती है यह एक देशीय उदाहरण है।

इस उदाहरण के माध्यम से हमे उस आवृत्त आत्मशक्ति को समझना है। हमारी आत्मा की शक्ति वह हजारो पावर के बल्ब से भी बढकर है उसके पावर का कोई नाप नही कर सकता है। अनेको सूर्यो का प्रकाश भी पूर्ण विकसित आत्मा के प्रकाश के तुल्य नही हो सकता। जैसा कि मानतुगाचार्य प्रभु ऋषभदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं— 'सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्रलोके" हे प्रभु आपकी महिमा सूर्यातिशायि है, अर्थात् सूर्य के साथ भी आपके प्रकाश की तुलना नही की जा सकती क्योकि सूर्य के प्रकाश मे ताप है, उष्णता है, और वह उष्णता ग्रीष्म ऋतु मे मनुष्य को तग कर देती है, लेकिन आपके प्रकाश मे वह उष्णता नही है। सूर्य का प्रकाश सीमित है, लेकिन आपका प्रकाश असीम है। सूर्य मे गति है लेकिन आपका प्रकाश अटल है। सूर्य की स्थिति के साथ आपके ज्ञान शक्ति के प्रकाश की तुलना नही की जा सकती क्योकि उसका सीमित प्रकाश हैं। दो सूर्य की उपमा दी जाय, तीन सूर्य की उपमा दी जाय, चार की दी जाय, अनन्त सूर्य की उपमा दी जाय तो भी अनन्त सूर्यो का प्रकाश एक तरफ और आपकी शक्ति का, जो आन्तरिक ज्ञान-प्रकाश है वह एक तरफ, उस ज्ञान प्रकाश की तुलना अनन्त सूर्यो के प्रकाश से भी नही दी जा सकती ऐसी अनन्त शक्ति का पुञ्ज परमात्म-रूप है। और जैसी परमात्मा की शक्ति है वैसी की वैसी शक्ति प्रत्येक भव्य आत्मा की है। वह आत्मा सर्वत्र है। वह आत्मा यहाँ भी है। यहाँ पर भी जितने भाई-बहिने बैठी हुई हैं उन सब मे वह शक्ति है, लेकिन अन्तर यह पड रहा है कि उस शक्ति के ऊपर लाल वर्ण के कपडे की तरह मोह की लालिमा छाई हुई है, हमारी आत्मा पर मोह का रग इतना गहरा चढा हुआ है कि वे किरणे उस मोहरूपी कपडे मे से फूटकर बाहर तो आती है लेकिन मोह की जाति के द्रव्यो से उसी रग की दिखती है। आत्मा के उस प्रकाश स्वरूप श्वेत वर्ण पर वह मोह रूपी लाल वस्त्र के पडने के कारण आत्मा अपने स्वरूप तत्त्व को ठीक तरह से नही देख पाती है, उसकी दृष्टि पुद्गलो पर लगी रहती है, उन बाह्य तत्त्वो मे वह इतनी अधिक आशक्त हो रही है और यही सोचती है कि ये मेरे स्वरूप हैं और मै इसकी हूँ। यह कैसी विषम स्थिति इस आत्मा के साथ चल रही है। वह आत्मा इस जीवन का निर्णय नही कर पा रही। वह आत्मा स्वयद्रष्टा है, स्वय के अन्दर महत्त्वपूर्ण होते हुए भी स्वय की स्थिति का निर्णय करने मे समर्थ नही हो पा रही है। उस असमर्थता को दूर करने के लिए

भगवान का अवलम्बन लेते है और भगवान को याद करते है कि भगवान जैसा हमारा इस मोह के कपडे से रहित निखालिस स्वरूप है, वह निखालिस स्वरूप मेरे हृदय का बन जाय, अर्थात मेरा भाव मन भी उस मोह की लालिमा से दूर हो जाय। इस दृष्टि से मैं आपको अपने हृदय मे बसाना चाहता हूँ। क्या है तैयारी, परमात्मा को हृदय मे बसाने की ? आप मेरे साथ गाने के लिए थोडा तैयार तो हो गये है पर इस पर थोडा चिन्तन करे और स्वर के साथ स्वर मिलाने का प्रयास करे, "धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो प्यारो प्राण समान' है। धर्मनाथ भगवान आप उन अनन्त सूर्यो के प्रकाश को भी मात करने वाले है आप मेरे हृदय मे बसो, आप मेरे हृदय मे विराजमान हो जाओ तो यह सारी मोहजनित लालिमा दूर हट जायगी, मेरा हृदय पवित्र हो जायगा, और मेरी आत्मिक शक्ति इस शरीर मे रहते हुए भी प्रबुद्ध हो जायगी। इस दृष्टि से आप भगवान का स्मरण करके उन्हे हृदय मे बसाना चाहते है पर इतने कथन या स्वरमात्र से यह होने वाला नही है। कविता मे तो यह बात सरल मालूम पडती है, लेकिन देखा जाय तो यह इतनी सरल नही है। इसके अन्दर गूढ रहस्य भरा हुआ है। आगे के शब्दों पर ध्यान देंगे और इन शब्दो के अर्थो का अनुसन्धान करेंगे तो मोह के सम्पूर्ण परदे को हटाने की शक्ति का इसमे निर्देश है। कवि कह रहा है धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान। प्राण के समान मेरे हृदय मे बसो। प्राण आपको कितने प्यारे है ? प्राण क्या जानते है ? शास्त्रीय दृष्टि से यदि आप इस जीवन के स्वरूप को समझे और इसका निर्णय करे तो प्राण का भी कुछ ज्ञान हो जाय।

बूंद-बूंद से सागर भरता

जो शास्त्रीय थोकडो का ज्ञान रखते है और शास्त्र का चिन्तन करते है उनको तो मालूम है कि प्राण कितने है ? १० प्राण है। किन्तु अधिकांश व्यक्ति इन विषयो को नही जानते है। मैं समझता हूँ कि जयपुर के अन्दर मोहनलालजी मूथा का जो संयोग मिला है वह बहुत ही अच्छा सुयोग है। वे बहुत से थोकडे जानते है और उनमे सिखाने की लगन भी है लेकिन सीखने वालो की कमी है। यहा का युवक वर्ग धर्म-ध्यान मे तो रुचि रखता है लेकिन स्वाध्याय मे अमुक टाइम मे तो कुछ धर्माराधन किया और

फिर चला जाता है जवाहरात का व्यापार करने के लिए। वह भी उनके जीवन के साथ सम्बन्धित है, लेकिन जितने समय आते हैं उस अवधि मे अन्दर भी यदि एक-एक बोल भी ले तो एक-एक बोल करते हुए भी कई बोल सग्रहीत हो सकते है। और धीरे-धीरे जीवन के वास्तविक स्वरूप को भी समझ सकते है। लेकिन यह प्रयास बहुत कम देखने मे आ रहा है। कुछ युवक थोडा सा धर्मकार्य करते है लेकिन अपना नियमित रूप से जो जीवन बना रखा है उतना सा करके वे इस कार्य की इतिश्री समझ लेते है कि हमने तो कर लिया है और उससे ही तुष्टि पा लेते है, लेकिन तुष्टि पा लेने से ही काम चलने वाला नही है। यदि हमे प्रभु को हृदय मे बसाना है तो प्राणो को भी समझना होगा, भगवान को हृदय मे बसाने का तात्पर्य यह है जो हमारे १० प्राण हैं उनको हम कभी भूलते है क्या? उठते बैठते अपने प्राणो को याद रखते हैं। बडे रूप से श्रवण बल प्राण अर्थात् जो श्रवण करने की शक्ति है वह प्राण है। चक्षु बल प्राण अर्थात् चक्षुओ के अन्दर जो देखने की शक्ति है वह प्राण है, नाक की जो सूघने की जो शक्ति है वह प्राण है, जीभ की चखने की शक्ति प्राण है, स्पर्श की शक्ति स्पर्श बल प्राण है आप जिस मन के लिए सकेत करना चाहते हैं वह प्राण है, वाचिक शक्ति भी प्राण है, इसी प्रकार काया है, श्वासोच्छ्वास है एव आयुष्य प्राण है। इन १० प्राणो मे आप जीवन की आशा को लेकर चल रहे हैं। इसको कभी भी आप याद नही करते हैं। कोई हाथ मे माला लेकर प्राण प्राण की माला फेरता नजर नही आता है। क्या कोई फेरता है? नही। फिर भी इन प्राणो को भूलते है क्या? मै समझता हूँ कि प्राण प्रत्येक को प्यारे है। आप उनको याद नही करते हैं लेकिन फिर भी उनको भूलते नही है। रात-दिन उनका ध्यान रखते हैं। नीद मे अनायास यदि कोई चीटी काटती है तो गाढ निद्रा वालो की बात छोड दें बाकी जो थोडा सा भी जागृत है वह चीटी को हटा देगा और नीद मे ही खुजल लेगा। शरीर की चेष्टाए करके उसको ठीक तरह से कर लेगा। स्वप्न मे भी और सोते हुए भी अपने प्राणो का ध्यान रखते हैं। जैसे उन प्राणो का ध्यान इन्सान को है उसी तरह से परमात्मा के शिव स्वरूप का ध्यान करना है ताकि मन से राग की स्थिति हट जाय और जब राग दूर हो गया तो हम वीतराग बन सकते हैं। लेकिन उस दशा को प्राप्त करने के लिए, भगवान के मार्ग पर चलते हुए भगवान धर्मनाथ को याद करते हैं। उनके अन्दर जो प्रकाश शक्ति है वह अखण्ड शक्ति है, अजर–

अमर शक्ति है, उनकी मृत्यु कभी नही होती है। वह स्वय एक स्थाई शक्ति है, उस स्थाई शक्ति के प्रकाश को अपने हृदय मे स्थान दे और उनको आमन्त्रण देकर बिठा दे तो हमारी शक्ति भी स्थाई रूप मे परिणित हो सकती है, लेकिन इस स्थाई शक्ति को समझने मे कभी कुछ बाधक तत्त्व सामने आते है, और वे बाधक तत्त्व किन की ओर से आते है ? जो अधूरे व्यक्ति है, अपूर्ण व्यक्ति है, जिन्होने जीवन के स्वरूप को समग्र रूप से नही समझा है, जो केवल अपनी बुद्धि के लिए और सिद्धान्त बना कर जन साधारण के सामने रख दिये। वे कहते हे, देखो भाई, जीवन तो है लेकिन जीवन को क्षणिक समझो। वह क्षण क्षण के अन्दर नष्ट होने वाला है। उन्होने जीवन की परिभाषा यह कर दी कि यह जीवन प्रति क्षण नष्ट होने वाला है, वह प्रति क्षण नष्ट हो रहा है। यदि मान लिया जाय तो जीवन की परिभाषा ही कौन समझे और किं जीवनम्? यह जीवन क्या है इस प्रश्न का हल भी कौन करेगा ? प्रश्न करने मे पहले समय लगेगा, पहले समय मे प्रश्न किया और दूसरे समय मे वह स्वय प्रश्न करने वाला तो रहा नही क्योकि क्षण क्षण नष्ट हो रहा है तो प्रश्न करने वाला तो पहले समय मे ही नष्ट हो गया, दूसरे समय मे उत्तर आया तो उत्तर पाने वाला कोई दूसरा व्यक्ति पैदा हो गया और वह उत्तर देते हुए तीसरा हो गया। तो इस तरह से न जीवन की परिभाषा बनती है और न जीवन ही रह पाता है, अत यह जीवन क्षण २ मे नष्ट होने वाला नही है, जो साधारण जनता को बडे रूप मे यह बतलाया जाता है, कि यह तुम्हारा जो शरीर है क्षण २ मे नष्ट हो रहा है। लेकिन सोचता यह है कि शरीर मात्र जीवन नही है। जीवन कुछ और है। जीवन की शक्ति सम्यक् निर्णायक शक्ति है, वह शक्ति क्षण २ मे नष्ट नही होगी, क्योकि जो शक्ति पहले क्षण मे मौजूद थी, वही शक्ति दूसरे तीसरे समय मे मौजूद रहेगी तो वह दूसरे आदि समयो मे कार्य का निर्णय कर पायेगी।

आप क्षणिक नहीं नित्य है

न्यायाधीश को छोडिए। आपने अपने इस जीवन मे वचपन की अवस्था से जिस समय होश सम्भाला उस समय आपके सामने कोई ऐसा आकर्षण या कोई ऐसी स्थिति अथवा तत्त्व आया कि जिसको आपने अच्छी तरह से निर्णय करके मस्तिष्क मे वैठा लिया तो वचपन मे आपने जो निर्णय करके अपने मस्तिष्क मे लिया आपकी वह निर्णायक शक्ति जितनी वचपन मे थी युवावस्था मे उससे अधिक आई कि नही ? आप जवाहरात की दृष्टि से देखिए, परीक्षण करने की दृष्टि से जो वचपन के अन्दर जिस नगीने को पहचानने की निर्णायक शक्ति पैदा की उस नगीने को पहचानने की निर्णायक शक्ति आपकी तरुणाई मे वढी कि घटी ? निरन्तर आप अभ्यास कर रहे हैं तो वचपन मे जिस मात्रा मे जिस नगीने का निर्णय कर पाते थे उससे जवानी मे कुछ अधिक स्पष्ट निर्णय कर पा रहे हैं। जैसे-जैसे जवानी आगे की ओर वढी और वृद्धावस्था भी आ गई और आपकी निर्णायक शक्ति मे परिवर्तन हुआ तो उसमे वृद्धि हुई या वह ह्रास की ओर गई, इसका अनुभव आप वतायेंगे। सम्भव है, मेरे भाई इसका अनुभव करे या न करे, लेकिन यह सत्य तत्त्व है कि इस प्रकार सही रूप मे निर्णायक शक्ति जो आती है वह दिन प्रतिदिन वढती जाती है। शरीर के अवयव क्षीण हो सकते है। वचपन का शरीर जवानी मे नही रहेगा और जवानी का शरीर वृद्धावस्था मे नही रहेगा लेकिन निर्णायक शक्ति परिवर्तित हो जाती है पर नष्ट नही होती। और जो दस वर्ष पहले आपके विचार वने, आपने जो कार्य किया, उस कार्य की स्थिति का जव प्रसग आता है तो आज भी याद कर लेते हैं। कव और कहाँ। महाराज आपने चौमासा किया था, कितने वर्ष हो गए- २२-२३ वर्ष पहले की वात को आज भी याद कर रहे है, तो इतने समय तक उसके सस्कार अपने मन मे लगातार मौजूद है तभी याद कर रहे हैं। तो हम कैसे मान ले कि निर्णायक तत्त्व निरन्तर नष्ट हो रहा है ? क्षण-क्षण नष्ट होने वाली वात २२ वर्ष के वाद कैसे याद रह सकती है। यदि इस सिद्धान्त को नही माना जाए तो फिर कल की वात को भी भूल सकते है। कल की वात भी याद नही कर सकते। दस वर्ष वाद सगे सम्वन्धी से मिले तो उनको भी नही पहचान पायेगे। दस वर्ष वाद पिता पुत्र या सगे सम्बन्धी मिलेगे तो परिचय देते हैं कि वह यही है। आप दस वर्ष पहले इस स्थान पर मिले थे। अरे यह वही है। तो यह जो निर्णायक तत्त्व है, उस तत्त्व को दुनिया भूल रही है। उस तत्त्व का प्रतिपादन करने मे ऐसी विचारधारा काम कर रही है। जो इस आत्म तत्त्व, आतरिक तत्त्व को क्षण-क्षण मिटने वाला घोषित कर

रही है किन्तु क्षणवाद सर्वथा मानने योग्य नही है। ऐसे प्रसग भी आते हैं जिनमे इस क्षणिक वाद का समुचित उत्तर दिया गया है। उत्तर किस ढंग से दिया गया है इसका भी एक रोचक प्रसग है।

एक व्यक्ति कर्जा लेने की दृष्टि से सेठ सा० के पास पहुँचा, वहाँ से दस हजार रु० का कर्जा लिया और अपने कार्य को आगे बढाया। उसने सोचा कि अब इस दस हजार के कर्ज को चुकाने मे कितना कष्ट का अनुभव करना पडेगा। क्या ही अच्छा हो, दस हजार के कर्ज को दबा कर बैठ जावे लेकिन ऐसे दबा नही सकेगे। ऐसे दबाने के लिए जाऊंगा तो लोग कहेगे कि यह बेईमान है, अनैतिक जीवन वाला है। दूसरे तरीके से पेश आऊंगा तो लोग कहेगे कि यह झूठ बोलता है। मुझे दस हजार को दबाने के लिए धार्मिक तरीका अपना लेना चाहिए। उसकी दृष्टि दौडी और वह सोचने लगा कि कौन से धर्म के अन्दर ऐसा तरीका है जिस तरीके से मैं दस हजार को हजम कर जाऊ। तो सोचते-सोचते उसका मस्तिष्क वहा क्षणिक वाद के सिद्धान्त की ओर घूम गया, और यह सिद्धान्त उसने मस्तिष्क मे जमा लिया कि क्षण-क्षण आत्मा नष्ट होती है, इस बात को लेकर उसने सारा प्लान बना लिया। अब वह सेठ रुपया मागने के लिए आया तो सीधा सा उत्तर दे दिया कि भाई तुम्हारे रुपये मैंने नही लिये। लेने वाला तो उसी समय मर गया। यह ससार तो क्षण-क्षण नष्ट हो रहा है, हमारा सिद्धान्त तो यही है। रुपयो को हजम करने का तरीका उसने सुन्दर ढूंढ लिया। सेठ ने पूछा कि भाई दस हजार रुपया लौटाओ। उसने झट से उत्तर दिया कि आप किस मे मागते हैं दस हजार रुपये। सेठ ने कहा कि आप मे। मुझे आपने कब दिए ? भाई आपको दिए, अमुक तिथि को दिए, आपसे लिखापढी भी करवाई और आपके हस्ताक्षर मौजूद हैं। उसने कहा कि वह मेरे हस्ताक्षर है ही नही। मैंने जो धर्म सिद्धान्त सीखा है उसके अनुसार हमारी आत्मा और हमारा जीवन क्षण-क्षण नष्ट होता है। जिस समय हस्ताक्षर किए थे वह आत्मा और वह जीवन तो अब रहा नही, उतने समय मे तो न मालूम कितने जीवन और पैदा हो गए। इस सिद्धान्त के अनुसार मैंने हस्ताक्षर नही किए और इसी सिद्धान्त की दृष्टि से मैं कह रहा हूँ। सेठ हैरान हुआ, क्या करना चाहिए। उसने दावा कर दिया और वकील लगा दिया। न्यायाधीश के सामने निर्णायक शक्ति का प्रश्न आया। न्यायाधीश ने जब उसे पेशी पर बुलाया और कहा कि ये तुम्हारे हस्ताक्षर हैं और हस्ताक्षर के बारे मे

ऐसा है कि वैज्ञानिक दृष्टि से पाच सौ साल या पाच हजार वर्ष पूर्व के हस्ताक्षर भी वैज्ञानिक तरीके से पहचाने जा सकते है तो ये हस्ताक्षर कैसे झुटलाए जा सकते हैं। क्या ये आपके हस्ताक्षर नही है उसने कहा कि नही। क्योकि उस समय जो हस्ताक्षर करने वाली आत्मा थी वह तो मर चुकी है और इसलिए अब कर्जा चकाने की आवश्यकता नही है। न्यायाधीश के दिमाग मे भी इस तरह से जमाने का प्रयास किया। लेकिन न्यायाधीश की बुद्धि निर्णायक थी, वह तटस्थ दृष्टि से निर्णय करने मे सक्षम था। उसने कहा कि आपने जो कुछ कहा वह बहुत ठीक। मैं समझा कि आपका सिद्धान्त क्षणिक वाद का है क्षण-क्षण तत्त्व नष्ट होने वाला है, आप यही वात कह रहे हैं ? हाँ यही वात है। तो वहुत अच्छी वात है। मैं उसी वात से निर्णय देता हूँ कि जिस समय कर्जा लिया उसी समय आपकी आत्मा तो नष्ट हो गई। अत अमुक नम्बर की जो हवेली पर सरकारी कब्जा कर लिया जावे और उसको नीलामी मे वेच कर के उस सेठ का कर्जा चुका दिया जावे। जव ये शब्द आए तो वह कहने लगा कि साहव वह हवेली तो मेरी है आप हवेली पर अधिकार कैसे कर सकते हैं क्योकि हवेली का मालिक मौजूद है। तो न्यायाधीश ने कहा अरे भाई तुम्हारी हवेली कहा से आई। तुम तो प्रथम समय मे ही मर गए। यह हवेली तो कितने वर्ष पहले वनी थी, अत जो इसको वनाने वाला था वह तो कभी का मर गया, फिर हवेली आपकी कैसे रह गई। आपके सिद्धान्त के अनुसार एक क्षण पहले आप दूसरे थे और ये तीसरे और फिर चौथे हो रहे है अत॰ स्पष्ट है कि इस क्षणिक वाद के सिद्धान्त के अनुसार यह हवेली आपकी नही है, यह तो अव सरकार की होगी। नीलामी के वाद कर्जा चुकाया जायेगा। तव उस क्षणिक वादी ने सोचा कि दस हजार के पीछे पचास हजार की हवेली जा रही है तो कहने लगा कि नही ऐसा निर्णय मत करिए। मैं अपनी गलती महसूस करता हूँ। मैंने कर्जा लिया और हस्ताक्षर भी मैंने ही किए। ये मेरे ही हस्ताक्षर हैं मैं क्षणिक वादी नही हूँ। मैं दस हजार रुपये देने को तैयार हूँ, पचास हजार की हवेली नीलाम करा कर सरकार के अधीन मत कराइए।

बन्धुओ, क्षणिकवाद के सिद्धान्त के रूप मे ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं यदि इस सिद्धान्त को मान लें तो जीवन के प्रत्येक क्षण की गतिविधि मे अटकाव आ सकते हैं। अत॰ ऐसे सिद्धान्त का सरक्षण निर्णायक शक्ति के लिए हितावह नही है। ऐसे सिद्धान्त से जीवन का

निर्णय नही हो पाता, जीवन को समझ नही सकते । इसलिए जीवन को समझने के लिए इस प्रकार के निरन्वय क्षणिकवाद से नही चल सकते । सही निर्णायक शक्ति के लिए सान्वय क्षणिकवाद के साथ ही चल सकते है । उस शक्ति के अनुसार ही मनुष्य अनुसधान करता है और तभी जाकर वर्तमान जीवन मे विशुद्धता और भावी जीवन मे उज्ज्वलता आ सकती है । यह स्थिति आध्यात्मिक दृष्टि से भी है जिसे जीवन के निर्णायक तत्त्व के रूप मे कुछ दिनो से रख रहा हू । इसके साथ-साथ स्थूल दृष्टि से चारित्र भाग भी चल रहा है । जिस माता की कुक्षि मे जिस सतान का प्रसग है, उस सतान के लिए माता अपने जीवन को त्याग मय रख रही है, इसका तात्पर्य यह है कि माता यह समझ रही है कि जिस सतान का मेरी कुक्षी मे पालन हो रहा है, मै उसको सुन्दरतम् सस्कार दू । यदि माता यह समझ ले कि कुक्षी मे आने वाला जीवन तो क्षणभगुर है और नष्ट होने वाला है तो कैसे वह उसको सस्कार दे पाती । वह माता इस ढग मे सोच रही है कि यह जीवन पर्याय दृष्टि से अस्थायी है पर जीवन का तत्त्व स्थाई है । मै तो जीवन की शुद्धि के अन्दर निमित्त बन रही हू और निर्णायक शक्ति भी अपने अन्दर ढूढ रही हू और दूसरे जीवन को भी निर्णायक शक्ति की योग्यता दिला रही हू । इस भावना के साथ इस कथा का प्रसग चलता है ।

महारानी के गर्भ की धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी । जैसे-जैसे उस गर्भ के अन्दर वृद्धि के भाव बढने लगे वैसे-वैसे उसमे अनेक सकेत प्रस्फुटित होने लगे और वे जीवन के सकेत विविध रूप मे माता के हृदय मे आने लगे, अर्थात् उस गर्भवती महारानी के मन मे दोहद (दोहले) उत्पन्न होने लगे, माता तथा गर्भस्थ शिशु दोनो की मिली जुली इच्छा को दोहद कहते है । तो माता के मन मे कुछ अभिलाषाए होने लगी । वे अभिलाषाए माता की स्वय की ही नही थी, लेकिन गर्भस्थ बच्चो की भावनाओ का परिणाम था । माता कभी मन मे चिन्तन करती कि मै एक क्षत्राणी वीरागना हू । मेरे जीवन मे क्षात्र-तेज चमक रहा है । मेरा जीवन लोगो की रक्षा करने के लिए है । कभी महारानी तलवार को म्यान मे से निकाल कर उसकी चमक के अन्दर अपनी आकृति देखती और मानो तलवार को सम्बोधित करके कहती है कि तलवार तू जैसी चमक रही है उसी तरह मेरी सन्तान चमके । तू दोनो काम आ सकती है । तेरे से सहार भी किया जा सकता है और तेरे से रक्षण भी किया जा सकता है, लेकिन तू मेरी सन्तान को सहार की तरफ मत ले जाना, तू मेरी सन्तान को रक्षण की

ओर ले जाना। इस प्रकार की सन्तान की भावनाओ का परिणाम महारानी के मन से व्यक्त होता है। महारानी कभी यह चाहती है कि मुझे अमुक तरह से दान देने की खुली परवानगी दी जाय। महाराजा सोचते हैं कि दान की भावना इतनी तेज रूप मे महारानी की नही बन सकती है। जो गर्भ के अन्दर सन्तान है उस महापुरुष की भावनाओ का प्रभाव पड रहा है। महाराजा उसकी पूर्ति करते हैं। इसी तरह से विचार करती है। कभी वह साचती है जीवन का समग्र रूप से निर्णय करना है। सोचती है कि मुझे सारे जगत के जीवन का सरक्षण करना है। इस प्रकार की भावनाए महारानी के हृदय मे होती थी। और इस प्रकार वह जीवन के अन्दर प्रमुदित हो कर रहा करती थी। यह सारी बाते सन्तान की स्थिति का ज्ञान कराती है।

योग्य समय मे पुत्र रत्न हुआ सूर्य तेज को धार।
अन्धकार को दूर हटाता तेजपुज के लार।

महारानी के गर्भ की स्थिति जैसे-जैसे तेजस्वी बनती जा रही थी वैसे-वैसे महारानी का शरीर चमकने लगा। बन्धुओ, जब उत्तम आत्मा जन्म लेती हैं तो उस उत्तम आत्मा के कारण माता की भावना भी उत्तम बन जाती हैं, लेकिन अधम आत्मा माता की कुक्षि मे आती है तो वह उस माता को भी अधम बनाये बिना नही रहती है। कस की माता का भी वर्णन आता है—कि कस जब गर्भ मे था तब माता की भावना बनी कि अपने पतिदेव के कलेजे का मास खाऊं। ऐसी दुष्ट आत्मा जब माता के गर्भ मे आती है तो माता की भावना को भी मलिन कर देती है। आज के युग मे भी देखा जाता है कि कभी-कभी कोई गर्भवती माता रोती ही रोती है। कही पर ऐसा भी सुनने मे आता है कि गर्भ मे जब बच्चा होता है तो माता मिट्टी खाती है। शायद शहरो मे ऐसा नही होता हो, लेकिन गावो मे ऐसा पाया जाता है कि कभी-कभी गर्भवती माताए कोयला खाती हैं। तो यह स्पष्ट बात हैं कि यह माता का स्वभाव नही होता है, लेकिन जैसी आत्मा उसकी कुक्षि के अन्दर आती है उसका प्रभाव माता के मस्तिष्क पर होता है। महारानी को इस प्रकार से सयम, शील, तप आदि की आराधना करते हुए नौ, सवा नौ महीने का समय बीतता है तो उसकी कुक्षि से पुत्र-रत्न का जन्म होता है।

जैसे ही पुत्र का जन्म हुआ वैसे ही सुमुखी नाम की दासी राजभवन से निकल कर जहा महाराजा अपने शयनकक्ष मे थे वहा पहुँची। महाराजा

को सम्बोधित किया, नाथ, आज आपके कुल का दीपक तेजस्वी पुत्र इस राजभवन मे अवतरित हुआ है। आपको मैं यह शुभ सन्देश देती हूँ। दासी के मुँह से यह शुभ सन्देश सुनकर महाराजा प्रफुल्लित हुए और दासी को पुरस्कृत किया। उनके पास शृंगार की जितनी सामग्री थी वह सब इनाम मे दे दी और बडे हर्ष के साथ परिवार के सम्बन्धियो को लेकर राजभवन की ओर पहुँचने लगे—

उत्सव कैसे मनायें ?

बन्धुओ, प्राचीन काल की जो पद्धति थी, वहा का जो रीति-रिवाज था उसका जरा अवलोकन करे। वहा पर पुत्र जन्म का प्रसग आया और उत्सव का प्रसग भी आया। वहा उत्सव मनाने की दृष्टि से महाराजा ने कैसे उत्सव मनाया और आज आप किस तरह से उत्सव मनाते है। मै पहले आपके उत्सव का जिक्र करू या पहले महाराजा के उत्सव का जिक्र करू ? आपका तो आप जानते ही है। न मालूम कितनी रोशनी करते होगे, बिजली के बल्ब जलाते होगे जिन पर बेचारे हजारो जीव मर जाते होगे, दूसरे व्यर्थ के आडम्बरो मे, व्यर्थ की चीजो मे समय और धन का अपव्यय करते होगे, लेकिन महाराज ने इस तरह उत्सव नही मनाया। उन्होने सबसे पहले बन्दी जनो की ओर ध्यान दिया जो कि कैद मे पड़े हुए थे। जो योग्य व्यक्ति अपने जीवन का परिमार्जन कर सकते थे उनको बन्दी जीवन से छुट्टी दे दी। साथ ही साथ जो गरीब जन थे, दु खी जन थे उनको देखा। वे दु खी जन पुत्र-रत्न के पैदा होते हुए भी सुखी नही बनते है तो इस पुत्र जन्म से क्या लाभ। उनका दु ख-निवारण करने के लिए एक मार्ग निकाला। नगर की जनता का जीवन ऊ चा कैसे उठे, इसके लिये योग्य रीति से दान का प्रदर्शन लगा लिया और योग्य स्थल पर दान देने लगे। दान देने का भी तरीका होता है। एक तरफ तो अनावश्यक उदारता कर देते है और दूसरी तरफ जहाँ उदारता की आवश्यकता होती है वहा कुछ नही करते हैं। कही पर तो इतनी वर्षा कर दी जाय कि अतिवृष्टि से एक भी दाना न उगे और जहा खेतो मे पानी की आवश्यकता है वहाँ पर पानी उपलब्ध ही न हो। इसी तरह से ज्ञान-शक्ति रूपी पानी को लेकर बादल चल रहे हैं उनको देखना है कि उनकी वर्षा किधर हो रही है ? कही वर्षा ऐसी जगह पर तो नही बरस रही है, जहा पर कुछ न उगे। जहा पर धरती कठोर है वहाँ बरस रहा है तो व्यर्थ है, वहा पर तो बीज

की भी कमाई होने वाली नही है। जहा पर वास्तविक रूप से जीवन की निर्णायक शक्ति का लाभ हो सकता है, या हो रहा है, उसकी तरफ इन बादलो का ध्यान जाय या नही ? यह अपने आप चिन्तन करे। लेकिन महाराजा अपने योग्य तरीके से कार्य कर रहे थे—

महाराज ने जो कर लगा रखे थे उनका अवलोकन किया और जो गरीब जन कर देने मे असमर्थ थे उन सब का कर माफ कर दिया। यह किस प्रसग मे हुआ ? पुत्र जन्म के उत्सव के प्रसग मे। क्या कभी आपके यहा भी ऐसा प्रसग आता है कि घर मे किसी पुण्यवान पुरुष का जन्म हुआ और किसी गरीब पर आपने कोर्ट मे मुकदमा चला रखा हो, उसकी झौपडी आदि के नीलाम करने का प्रसग आ रहा हो आप उसे माफ करने के लिये तत्पर हो ? मैं सोचता हूँ विरले ही कोई होंगे जो गरीब पर मुकदमा नही करके उसे माफ करने की सोचे। पुत्र उत्सव की स्थिति तो बहुत दूर है, लेकिन एक गरीब की झौपडी नीलाम करवाये, और जब उसकी उस समय की दुर्दशा का चित्र सामने आता है तो रौंगटे खडे हो जाते हैं। लेकिन आज इस जनतन्त्र मे भी शासन का दुरुपयोग कर गरीबो के साथ खिलवाड की जाती है। ग्राम पचायतो के चुनाव होते हैं, और ग्राम पचायतो के चुनावो मे इस प्रकार के प्रसग आते हैं।

करुणा भी सिसक उठी

मै उडीसा का जिक्र कर रहा हूँ वहाँ पर ग्राम पचायत के चुनाव मे एक प्रसग आया कि एक गरीब व्यक्ति भी प्रतिनिधि के रूप मे चुना गया, क्योंकि आज के जनतन्त्र मे गरीब भी चुनाव मे खडा हो सकता है। जो सरपच बनने वाला था उसने उस गरीब से कहा कि देख सरपच के लिए तू मुझे वोट देगा तो तुझे बीस रुपये दूंगा। वह गरीब भी गरीबी से तग आ रहा था, बीस रुपये ले लिए और कहा कि आपको वोट दूगा। लेकिन उसके बाद दूसरा उम्मीदवार पहुचा और उसने कहा कि भाई अगर वोट मुझे देगा तो मै चालीस रुपये दूगा। आजकल तो वोट भी बिकते हैं। आजकल जनतन्त्र का दुरुपयोग कैसे हो रहा है इस विषय को सम्भवत आप अच्छी तरह जानते है, यह ज्यादा बतलाने की बात नही है। उसने लालच मे आकर चालीस रुपये वाले को वोट दे दिया। यह बात जब बीस रुपये वाले को मालूम हुई तो उसके गाठ पड गई। उसने सोचा कि मेरे बीस रुपये लेकर वोट मुझे नही दिया। उसने बीस रुपये का ब्याज

कटवा मिति से जोडा और थोडे दिनो मे सौ रुपये कर दिये। सौ रुपयो का दावा करके कुडकी करवा ली और कुडकी लेकर उसके घर पर पहुँच गया। उस गरीब के पास खाने के लिए विशेष सामग्री भी नही थी। घर मे उसकी पत्नी के बच्चा जन्मा था। देश जब बच्चे का जन्म होता है तो माता को खाना खिलाने के लिए एक अलग धान होता है। वह विशेष तरह का धान उस माता को खिलाने के लिए पाच सात सेर घर मे पडा हुआ था। उसके साथ मे पुलिस थी उसने घर के सारे सामान को इकट्ठा करके ले लिया और उसके साथ जो जापे वाली को खिलाने का पाच सात सेर धान था वह भी ले लिया। तब उस गरीब ने गिडगिडा कर कहा कि महरबानी करके आप इस धान को छोड दीजिये मै इस जापे वाली को क्या खिलाऊगा। लेकिन उसके दिल मे कोई दया नही आई, उसने उस धान को भी उठा लिया। उसके कच्चे मकान की छत पर जो कवेलू थे वह भी उतरवाने लगा लेकिन सयोग की बात थी कि मजदूर नही मिले इसलिए कवेलू तो रह गये, बाकी घर का सफाया कर दिया। अब आप सोचिये कि उस गरीब की क्या दशा बनी। उसको अत्यन्त दु ख हुआ। उसने सोचा कि मैं तो बिना मौत मारा गया। आज मेरे घर मे कुछ भी नही है। अब नए बच्चे की माता को क्या खिलाऊगा। उसने सोचा अब मरना ही श्रेयस्कर है। घर मे से डण्डा उठाया और पत्नी से कहा कि अब मैं बदला लेने के लिए जा रहा हूँ। बीस रुपये लेने के लिए उसने इस तरह का अत्याचार किया है, अब मैं मर मिटूंगा। अब मेरी इन्तजार मत करना। डण्डा लेकर पहुँचा। वह महाशय अपने साथियो के साथ बाजार मे बाते कर रहे थे। हा हा बीस रुपये लेकर वोट नही दिया तो कैसा मजा चखा दिया। इस भावना के साथ वह हर्षित हो रहा था कि गुस्से मे वह व्यक्ति पहुँचा और आकर डण्डा सिर पर दिया। उसके जोरो से चोट आई और मुर्छा छा गई। लेकिन जब मुर्छा मिटी तो उसके साथ उसके मियाँ मिट्ठू लोग थे उन्होने उस गरीब के हाथ से डण्डा छीन कर उसके हाथ मे पकडा दिया और इस प्रकार गरीब की पिटाई की कि वह गरीब इतना घायल होगया कि जीवन से हाथ धो बैठा। वह पैसे वाला तो अस्पताल पहुँच कर इलाज कराकर बच गया लेकिन वह गरीब आदमी मर गया। इस प्रसग मे उसके भी लेने के देने पड गए। इस मुकदमे बाजी का इतना मामला चला कि जिन लोगो ने डण्डा छीना था उनके भी बीस-बीस हजार रुपये खर्च हो गये और स्वय का भी कितना ही खर्चा होगया और जेल मे गये सो अलग। इस

प्रकार के प्रसग देखने मे आते हैं जब मनुष्य कितना क्रूर हो जाता है। फलस्वरूप उसे ही अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पडते है।

तो मैं आपके सामने जीवन के दृष्टिकोण को समझाने के लिए, जीवन के स्वरूप को समझाने के लिए, जीवन के स्थाई तत्त्व को आपके सामने रख रहा हूँ। कही महारानी ने सोचा होता कि जीवन क्षण भगुर है, वह स्थाई रहने वाला नही है और इसी दृष्टि से उसने बच्चे का पालन पोषण किया होता तो क्या वह उसमे ऐसे सस्कार पैदा कर सकती। लेकिन महारानी ने जीवन के मर्म को समझकर उसका पालन किया। राजा ने भी बच्चे के जन्म के बाद गरीब जनता पर कर की छूट दे दी। उसने बच्चे के जन्म के मगलमय उत्सव के अवसर पर सदा के लिए याद रहे ऐसी भावना से जो महाराजा का एक नवीन भवन बन रहा था उसको धर्म ध्यान के लिए भेंट कर दिया। आप भी बहुत से भवन बनाते हैं लेकिन वे उसी राग के लिए, मोह के रग से रंजित करने के लिए तैयार कराते है, किन्तु यदि उनको धर्मध्यान के लिए दे दें तो कैसे, क्या आपकी कीर्ति होती है। आज आप जिस भवन मे बैठे हुए हैं वह भवन भी कहा से प्राप्त हुआ है। लाल बहिन का नाम मैंने सुना है। यह बहुत बडा धर्म स्थान आज जिस बहिन ने दिया है उस बहिन का नाम भी रोशन है। कितने ही प्राणियो को यहा बैठकर आत्म कल्याण का प्रसग मिल रहा है। लेकिन मोह के अन्दर आकर मकान तो बना लिए और कभी उनको छोडकर जाना पडा, पीछे वालो ने उसको किसी कसाई या वेश्या को बेच दिया तो उनके हाथो मे पाप का कितना प्रसग उपस्थित हो सकता है। इस प्रकार जीवन के अन्दर होश हवास मे मोह का त्याग करने की बात बिरलो के ही मन मे आती है। महाराज के किस तरह से इस मगलमय अवसर की याद स्थायी रखने के लिए अपने नवीन भवन को धर्मध्यान के लिए दे दिया। जब बालक के नामकरण का प्रसग आया तो महाराजा ने कहा कि मुझे ज्योतिष और शास्त्र को देखकर नामकरण नही करना है। यह बच्चा तो अपना ज्योतिष अपने साथ लेकर आया है। इसने गर्भ मे आते ही माता को कमल युक्त सरोवर का स्वप्न दिखाया तो बच्चे का नामकरण भी कमलसेन कर देना चाहिए। कमल के अन्दर जैसे सुगन्ध रहती है और कमल को देखने से ही जिस प्रफुल्लता का अनुभव होता है, उसी दृष्टि से उसने पुत्र का नाम रख दिया कमलसेन। अब वह बालक कमलसेन के नाम से पुकारा जाने लगा और कमलसेन आगें जाकर कैसे तरक्की करता है और कैसे

शान्ति की खोज

प्रार्थना

विश्व सेन नृप "अचला" पटराणी, तस सुत गुण सिणगार हो सौभागी।
जनमत शाति करी निज देश मे, मरी मार निवार हो सौभागी ॥
शाति जिनेश्वर साहिब सोलहमा ॥

आज भगवान श्री शाति नाथजी की प्रार्थना की जा रही है। नामो का परिवर्तन होते होते दुनिया के इष्ट और प्रिय नाम वाले भगवान का भी प्रसग आ गया। मानव शान्ति का वहुत पिपासु है। मानव ही नही देव भी शान्ति की चाह करते हैं। नरक और तिर्यन्च-पशु भी शान्ति की अभिलाषा अपने हृदय मे रखते हैं लेकिन वह शान्ति मिल नही पारही है। शान्ति की भूख लगने पर भी खुराक नही मिल पा रही है और शान्ति की प्यास लगने पर भी पानी नही मिल रहा है। सारा ससार इस शान्ति की पिपासा मे इधर से उधर घूम रहा है। एक दृष्टि से देखा जाय तो समग्र प्राणियो का प्रयास शान्ति की दिशा मे है। यह वात दूसरी है कि शान्ति का मार्ग सही मिला या गलत मिला। जिस प्राणी को जिस प्रकार शान्ति का उपाय सूझा, जिसने जैसा मार्ग वताया अथवा जिसने जैसी कल्पना की उसी को शान्ति का उपाय समझा और वह उन्ही रास्तो और उपायो को लेकर चल पडा। वह मार्ग चाहे सही था या विपरीत। इस जीवन मे शान्ति की नितान्त आवश्यकता है। अशान्ति जीवन को तपाती है और शान्ति जीवन को सुख देती है। अशान्ति एक जहर है और शान्ति अमृत है। अशान्ति इस जीवन के अन्दर अत्यधिक वेदना पैदा करती है और शान्ति जीवन के प्रत्येक अणु को प्रफुल्लित करती है। उस शान्ति के नाम से कोई पदार्थ आ जाता है तो मानव उसके पीछे दौडता है तो फिर भगवान का नाम ही "शान्ति" आ जाय तो कहना ही क्या! दूसरे नाम याद करें या न करें लेकिन शान्ति नाथ भगवान को सवसे पहले याद करते हैं। जरासा

कोई सन्तप्त वायु मण्डल बना कि शान्ति-नाथ भगवान को याद कर लिया जाता है।

वे शान्ति नाथ भगवान आकाश से अवतरित नही हुये थे और नही पाताल से निकले थे। मानव प्रक्रिया के अनुसार मानव के रूप मे जैसा अन्य प्राणियो का जन्म होता है उसी तरह उनका भी हुआ लेकिन उनके जन्म के प्रसग से ही ससार मे शान्ति का सचार हुआ इसीलिये उनका नाम शान्ति नाथ रखा गया। यद्यपि वे चक्रवर्ति भी हुये और तीर्थकर पद भी पाया। दोनो पदो का सौभाग्य उनको मिला। चक्रवर्ती का पद सर्वभौम सम्राट का पद है—६ खण्ड का आधिपत्य जिनके चरणो मे हो। ६ खण्ड के अन्दर रहने वाला प्राणी जिनकी आज्ञा को सिरोधार्य करके चले। जिधर दृष्टि पड जाय उधर लाखो-लाख हाथ उठ जाय। जिधर इशारा हो वहा झुण्ड के झुण्ड नर नारी दौड पडे। संसार के उत्कृष्ट मानवीय भौतिक सुखो की उपलब्धि जिसमे हो, ऐसे वायुमण्डल मे रहने वाले वे शान्ति नाथ भगवान उन भौतिक सुखो मे ही तल्लीन नही रहे यद्यपि वे उस अवस्था मे रहते हुये शान्ति का उपदेश अत्यधिक दे सकते थे लेकिन राज्य तख्त पर बैठकर जो उपदेश दिया जाता है वह जनता मे उतना हृदयग्राही नही होता जितना कि राज्य तख्त को छोडकर जनता के सम्पर्क मे आकर और जनता की उपस्थिति मे साधना मार्ग को प्रशस्त बनाकर दिया जाय। इसलिये शास्त्रो का कथन है—
चदत्ताभारहवास चक्कवट्टिमहड्ढिओ संति सति करे लोए पत्तोगइ मणुत्तर ॥ उ०

उन्होने उस ६ खण्ड के राज्य को ऋद्धि और वैभव को नाक के श्लेष्म की तरह परित्याग किया और सोचा कि शान्ति का स्वरूप त्याग की स्थिति मे ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। जब तक मनुष्य पराश्रित हैं और बाह्य पदार्थो मे शान्ति ढूढता है तब तक वह शान्ति का वास्तविक दर्शन नही कर पाता। शान्ति स्व-आश्रित है। जो पर पदार्थों के सम्पर्क से शान्ति का अनुभव होता है अर्थात् स्वय से भिन्न पदार्थों के सयोग से जो कुछ भी शान्ति का आभास पाता है वह वस्तुत: शान्ति नही है। शान्ति तो स्वय से व्यक्त की जाती है, शान्ति पर आया हुआ आवरण पर पदार्थो के ममत्व के हटने पर हटता है। जो मानव भौतिक पदार्थो को सब समझकर चलता है और उन्ही मे सुख और शान्ति ढूंढता है वह इन्सान उन पदार्थों की उपलब्धि पर क्षणिक शान्ति का अनुभव

कर सकता है किन्तु अन्ततोगत्वा वह दुख में ही झूलता है। शास्त्रकारो ने शान्ति के अनेक भेद किये हैं उनमे ये चार मुख्य है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। वस्तुत इन चार मे शान्ति का सही रूप नही है। द्रव्य की दृष्टि से अच्छा-सुन्दर मकान मिल गया और उस मकान के अन्दर वह शान्ति का अनुभव करने लगता है लेकिन मकान के जब छूटने का प्रसग आता है तब अशान्ति पल्ले पडती है। बहुत वडा द्रव्य-भवन विवशता से जब छूटता है तो वह अत्यधिक अशान्ति का अनुभव करता है। पर पदार्थ एक वक्त छूटते ही हैं चाहे स्वेच्छा से छोडे जाय, चाहे परतन्त्रता से छोडे जाय। मकान कभी मनुष्य के साथ नही गया। कोई आत्मा उसे परलोक मे नही ले गई। इन मकानो को यही छोड गये चाहे कितनी ही बडी हवेली हो, चाहे कितना ही भव्य भवन हो और चाहे घास फूस की झोपडी ही क्यो न हो। उसे भी छोडना पडता है और भव्य भवनो को भी छोडना पडता है। यद्यपि अज्ञानी आत्मा के लिये भव्य भवन को छोडना तो दूर रहा वह घास फूस की झोपडी को भी छोडना पसन्द नही करता। जिसके पास कोई ऋद्धि नही जिसकी झोपडी कोई मूल्य नही रखती लेकिन फिर भी उसके अन्दर ममत्व इतना रहता है कि वह छोडना पसन्द नही करता। और तो दूर रहा जहा एक काटो मे रहने वाला कीडा काटो की थैली को घर कह सकते है उन काटो को भी छोडना वह पसन्द नही करता। तो क्या भव्य भवन छोडना पसन्द कर सकता है? लेकिन जिन्दगी मे एक क्षण ऐसा आता है जब उसकी पसन्दगी काम नही आती है, और वह भवन जबरन छूट जाता है और वह हाय हाय करता हुआ चला जाता हैं। तो देखिये वह द्रव्य सापेक्ष शान्ति उसके जीवन को शान्ति नही दे पाई बल्कि अत्यधिक दुख दे गई। जिसके पास हवेली नही है और जिसके पास घास फूस की झोपडी भी नही है वह इस शरीर को छोडने की कोशिश करेगा और शरीर छूटेगा तब उसको दुख होगा। क्या आप देखते हैं सन्त महापुरुष जहा भी रहते है कभी भव्य भवन मे जाते है तो कभी उनको घास फूस की झोपडी मिलती है और कभी ऐसा अवसर भी आता है जिसमें सेठिया लोग बैठना पसन्द नही करे ऐसे स्थान मे रहना पडता है। छत्तीसगढ में जब हम गये वहा मार्ग मे घरो की बस्ती कुछ नही थी। मजदूर सडक पर जो डामर डालने का काम करते थे उन डामर की कोठियो को खडी करके उन पर घास की टाटिया डाल देते हैं और उन्ही को घर मानते है तो वहाँ रहना भी पसन्न आया और रात्रि को सन्त लोग वही शयन कर प्रात. काल चले वहा मूलचन्दजी देशलेहरा जो मध्य प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष

रह चुके है, दर्शन करने आये तो कहने लगे महाराज आप इस झोपडी मे कैसे रहे मुझे तो यहा बैठना भी अच्छा नही लगता। सन्तो ने कहा आपको तो यह अच्छा नही लगता लेकिन सन्तो के लिये यह भी अच्छा है। वहा ऐसी भी झोपडी मिल गई नही तो झाड के नीचे ही शयन कर लेते। जहा केवल ट्रक पडी हुई थी वहां भी सन्तो ने रात्रि बिताई है तो सन्तो का जीवन द्रव्य पदार्थो की अपेक्षा नही रखता है। अगर सन्त द्रव्य पदार्थो की अपेक्षा करें तो शान्ति नही मिल सकती है। सन्त जीवन मे हाय तोबा नही चलती है और द्रव्य पदार्थ नही मिलने से दुख नही होता है। जिनके पास द्रव्य पदार्थ आध्यात्मिक शक्ति के रूप मे है वे ही पुरुष अपने आपमे शान्ति का अनुभव करते है। जिनके पास द्रव्य पदार्थ आध्यात्मिक रूप मे नही है और जब कभी वाह्य द्रव्य पदार्थ का प्रसग आता है तो दुख अनुभव करते है इसलिये द्रव्य सापेक्ष जो शान्ति है यह शान्ति नही है। क्षेत्र की दृष्टि से मनुष्य चिन्तन करता है कि यह मेरा देश है, यह मेरा गाव है और जब वह उस देश या गाव मे रहता है तो उसको अच्छा लगता है लेकिन वह दूसरे देश या गाँव मे जाता है तो उसको अच्छा नही लगता है। यह अच्छा लगना क्षेत्र की दृष्टि से है, पर क्षेत्र कौन सा अच्छा, कौन सा बुरा है? क्षेत्र सब समान है। लेकिन मनुष्य ने क्षेत्र को भी पकड लिया। उसके साथ ममत्व भाव पैदा कर लिया। ममत्व भाव के कारण क्षेत्र सम्बन्धी शान्ति भी नही मिलती है। वह भी दुख का कारण है।

सभी काल सुखदायक हो सकते है

काल की दृष्टि से कौनसा काल शातिदायक है। मुख्य तौर पर काल की तीन अवस्थाये परिवर्तित होती हैं—चातुर्मास का काल, शीत का काल, ग्रीष्म काल—इनमे कौनसा काल शातिदायक है? क्या चातुर्मास को शातिदायक मानते हैं? ग्रीष्म ऋतु को? या शीत काल को? मनुष्य अलग-अलग कल्पना करके चलता है। जब गर्मी होती है तब वह अभिलाषा करता है कि वर्षा का समय आ जाय, वह शातिदायक होगा। वर्षा की स्थिति जब बनती है और कभी-कभी अत्यधिक वर्षा हो जाती है तो वह सोचता है, अरे! यह समय अच्छा नही, यह तो अशातिदायक होगा। शीत काल की वह अभिलाषा करता है। जब अत्यधिक ठण्ड पडती है तो वह घबरा कर गर्मी की अभिलाषा करता है। तो काल की दृष्टि से, काल

को अभिलाषा से शाति का अनुभव नही होता है। अत काल जो सापेक्ष शाति है वह भी वास्तविक शाति नही है। भावो की दृष्टि से, भाव मनुष्य को प्राय: विकारी दिशा मे बहाते हैं। एक दृश्य से कोई शाति अनुभव करता है, वह दृश्य हटता है तो सयोग-वियोग की स्थिति बनती है तो हाय-हाय करके जिन्दगी बीताता है। ज्ञानीजन का कथन है, शाति के विषय मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव सापेक्ष जो शान्ति का अनुभव है वह वास्तविक शाति नही है। इनसे निरपेक्ष शाति मिल सकती है। यदि सदा के लिए शाति अनुभव करनी है तो उस त्याग के मार्ग पर चलना होगा जो वीतराग भगवान ने दर्शाया है। वह त्याग का मार्ग ही शाश्वत शान्ति का मार्ग है।

जो छ खण्ड ऋद्धि का परित्याग करे—यह कोई आसान बात है? आज एक हाथ जमीन का परित्याग करना मुश्किल होता है। उसके लिए झगडा करेगे, मुकदमा करेगे, कितना ही रुपया खर्च कर देंगे। जो जमीन की कीमत है उससे अधिक पैसा अपनी सम्पत्ति मे से व्यय कर देगे। लेकिन हाथ भर जमीन को भी छोडने के लिए तैयार नही होगे। हाथ भर जमीन के लिए भी लडाई झगडा करने तक ही सीमित नही रहते, अपने सम्बन्धियो का कत्ल करने को तैयार हो जाते हैं। मुझे सासारिक अवस्थाओ के कुछ अनुभव हैं इस समय एक स्मृति मे भी आ रहा है। काका और भतीजे के बीच मे द्वन्द्व हुआ, एक हाथ भर जमीन पर। काका जी कहने लगे, भाई, तू यह दीवार बना रहा है, लेकिन इसको एक हाथ हटा कर बना। यह मेरा हक है। भतीजा कहने लगा, नही-नही, मैं तो यहाँ नीव लगाऊ गा। दोनो मे टकराव हुआ तो भतीजे ने काका का गला पकडा और पत्थर से काका का सिर फोडने को तैयार हो गया। वहा कुछ छुडाने वाले मिल गये तब जाकर उनका छुटकारा हुआ। मैंने जब आखो से यह दृश्य देखा उस समय स्थिति और थी। आज मैं चिन्तन करता हूँ ऐसे प्राणियो का, जो एक ही परिवार मे जन्म लेने वाले और एक हाथ भर जमीन के लिए एक दूसरे का जीवन नष्ट करने की तैयारी करने वाले हैं उन मनुष्यो को कहा शाति मिलने वाली है। इस प्रकार जिनमे त्याग भावना नही, ऐसे मनुष्य शाति अनुभव नही कर सकते। चक्रवर्ती ने ऋद्धि कैसे त्यागी, किस रूप मे त्यागी, उस त्याग का स्वरूप चिन्तन मे आता है तो मनुष्य का दिल दहल जाता है। यह तो दूर की चीज है, किन्तु जब कभी कोई भव्य आत्मा दीक्षा लेने की तैयारी करती है, उस वक्त दीक्षा लेने वाला तो लेता है और उसका परिवार दीक्षा भी दिलाता है लेकिन जो परिवार

के नही है उनको दुःख होता है, अरे ! अरे ! अभी से ससार त्याग कर साधु बन रहा है। अभी तो इसे साधु नही वनना चाहिए। इस विषय मे उन्हे चिन्ता और दु ख हो जाता है। इसके विपरीत यदि आवारा बन जाय, उदण्ड बन कर परिवार को कलक लगाने की तैयारी कर ले तो उस वक्त किसी को कुछ रंज नही होता बल्कि वह उसे सहते रहते हैं। इस त्याग की स्थिति की तरफ उनका आकर्षण नही है तो वे जीवन के अन्दर शाति का अनुभव नही कर सकते। शातिनाथ भगवान ने छ खण्ड ऋद्धि का त्याग किया, यह कम त्याग नही था और त्याग करके साधना करने मे लगे, जीवन की खोज करने मे लगे। जितने तीर्थंकर हुए उन तीर्थ करो ने जीवन के स्वरूप को समझने के पूर्व उपदेश नही दिया। समग्र जीवन को उन्होने पहले समझा है—मेरा जीवन क्या है और ससार क्या है। उन्होने इस खोज के साथ मे अपने जीवन को समझा और केवल ज्ञान प्राप्त किया। उस केवल ज्ञान के साथ जीवन का समग्र स्वरूप ज्ञात हुआ। जो एक को सम्पूर्ण रूप मे जान लेता है वह सबको सम्पूर्ण रूप से जान सकता है और जो एक को सम्पूर्ण रूप मे नही जान सकता है वह समग्र को नही जान सकता है। शास्त्रकारो ने कहा है "जो एग जाणइ से सव्व जाणइ, जे सव्व जाणइ स एग जाणइ"। आचा० यह ऐसी वाक्यावली है जिसके द्वारा सारी सृष्टि के रहने वाले प्राणियो का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

शान्ति अपने भीतर ही है

मै अभी शाति के विषय मे चर्चा कर रहा था वह शाति जीवन के धरातल पर हैं, वह शाति जीवन का स्वरूप है लेकिन उसको अभिव्यक्त करने की कला हमारे अन्दर आनी चाहिए। अभी अभिव्यक्ति करना तो दूर रहा लेकिन अन्तर के स्वरूप को भी नही समझ पा रहे हैं तो शाति की अभिव्यक्ति कैसे हो पायेगी। जिस इन्सान को रत्न और ककर का ज्ञान नही उस मनुष्य को रत्न और ककर की राशि के बीच मे छोडकर कहा जाय, लो, इस ढेर के बीच मे घुल मिलकर ककर और रत्न सब पडे हुए है, इनमे से तुम बहुमूल्य रत्न को उठा लो तो तुम्हारे जीवन के अन्दर शाति का अनुभव होगा। वह व्यक्ति उस ककर और रत्न के ढेर मे से ढूढने के लिए जाय तो क्या वह वहा से बहुमूल्य रत्न प्राप्त कर सकता है ? वह भटकेगा लेकिन उसमे से कुछ प्राप्त कर सकता ? ज्यादा से ज्यादा अज्ञानतावश बुद्धि का प्रयोग करेगा तो जो काच का टुकडा अधिक चमकता है इसलिए शायद वह उसे रत्न समझेगा। अज्ञानी मनुष्य रत्न और ककर

के ढेर मे से रत्न की परीक्षा नही कर सकता, वह शाति का अनुभव भी नही कर सकता, चाहे वह व्यापारी क्षेत्र मे हो या धार्मिक क्षेत्र में हो। कभी-कभी इस विषयक स्थिति से मनुष्य अपने आपको बहुत बडा धोखा दे सकता है। दो साथी कमाने की दृष्टि से एक स्थान पर पहुँचे। एक साथी ने बहुत कमाई करके धन सचय कर लिया। दूसरे ने उसके साथ रहकर भी कुछ प्राप्त नही किया। जिसको धन प्राप्त नही हुआ वह घर लौटने लगा। उसने अपने साथी से कहा, मैं देश जा रहा हूँ, तुम भी चलो। उसके दोस्त ने कहा मैंने तो व्यापार का फैलाव कर लिया है, मैं तुम्हारे साथ नही चल सकता। तुम जाओ। कुछ मेरी पत्नी के लिए लेते जाओ। उसने कहा, अच्छा ! आप कुछ दे दीजिये। उस व्यापारी ने एक बहुमूल्य रत्न अपने मित्र के हाथ मे दे दिया और कहा, यह मेरी पत्नी को ले जाकर देना। वह उस रत्न को लेकर चला। मार्ग मे उसने सोचा इस रत्न से मेरा जीवन सुखी बन जायगा। मैंने बहुतेरा प्रयास किया लेकिन कुछ उपलब्धि नही हुई। अब सहज मे यह रत्न मिल गया तो इस रत्न को हजम करने का सीधा तरीका है, क्योंकि इसके पीछे न तो कोई साक्षी है, न लिखा पढी है। मित्र ने दे दिया, मैंने ले लिया। अब हजम कर जाता हूँ तो भी मुकदमेबाजी का प्रसग नही आता है। इस रीति से उस रत्न को हजम करने की उसने कोशिश की। अपने स्थान पर आकर चुपचाप उस रत्न को दबा कर बैठ गया। मित्र की पत्नी को उसने कुछ भी नही कहा, जब मित्र की पत्नी को ज्ञात हुआ कि मेरे पतिदेव के मित्र आ गये हैं और मेरे पतिदेव नही आये हैं तो उसने आकर पूछा, कोई कुशलता का समाचार भेजा है। उसने कुछ उपेक्षा भाव से उत्तर दे दिया। वह चुपचाप चली गई। कालान्तर मे जब उसके दोस्त का सारा व्यापार काबू मे आ गया तो वह वहाँ से चल कर अपने स्थान पर पहुचा। मकान मे प्रवेश करते ही पत्नी से पूछा, क्या तुम आनन्द मे तो हो ? स्त्री ने कहा, आपकी तरफ से कुछ भी हो, हम आनन्द मे हैं या दुख मे हैं, आप तो जब से विदेश गये तब से हमारी खबर ही नही ली, न कोई पत्र दिया, न कुछ मेरे लिए भेजा। मैं अपने जीवन के साथ चल रही हूँ। उसने कहा, अरे ! तुम्हारे लिये तो मैंने बहुमूल्य रत्न भेजा था। क्या मित्र ने तुमको नही दिया है। उसने कहा, कुछ भी नही। दोस्त को अफसोस हुआ, मेरा बाल गोटिया मित्र, बचपन से हम इस स्थिति मे रहे कि दो शरीर और एक जीव, और आज बहुमूल्य रत्न के पीछे उसने मेरे साथ इस प्रकार का धोखा किया। वह अपने दोस्त के पास पहुचा, और कहा, मित्र मैंने आपको बहु-

मूल्य रत्न दिया था न ? उसने कहा, हा दिया था आपने। फिर तुमने क्या किया ? उसने कहा, मैंने आकर के आपकी पत्नी के हाथ मे दे दिया। मित्र कहने लगा, हाय, हाय बडा भारी धोखा है। इतने समय तक सोचता था, जैसा आपका जीवन पवित्र है वैसा ही आपकी पत्नी का जीवन पवित्र होगा। लेकिन जव वह इन्कार कर रही है और कह रही है कि मुझे कुछ भी नही दिया तो मुझे सन्देह है कि उसका जीवन किसी दूसरे के साथ लगा हुआ है। उसने वह बहुमूल्य रत्न किसी को दे दिया होगा। मैने उनके हाथ मे दिया। मित्र हैरान हो गया। आश्चर्य करने लगा, मेरी पत्नी आज दिन तक झूठ नही वोली, और आज यह कैसे कह रहा है। मित्र ने कहा, अरे भाई, तुमने किसकी साक्षी मे वह दिया है। उसने कहा, चार व्यक्तियो के सामने मैंने दिया है। वडा अफसोस हुआ, चार व्यक्तियो से पूछा गया। वह उस गाव के प्रतिष्ठित कहलाने वाले व्यक्ति थे। उन्होने कहा, हा साहव, हमारे सामने उनके हाथ मे दिया है। इधर पाच व्यक्ति हो जाते है और उधर अकेली वेचारी उसकी पत्नी। वडा दु:खी होकर वह न्यायाधीश के पास पहुंचा। उसने कहा, मेरे साथ ऐसी बात हो रही है। मेरा बहुमूल्य रत्न गया तो गया साथ ही मेरी पत्नी का जीवन भी लाछित हो रहा है, उसके जीवन पर कलक आ रहा है। मैं सोचता हूँ, मेरी पत्नी ऐसी नही है। आप न्यायाधीश है। आप इस विषय मे कुछ इन्साफ कर सके तो वहुत ही अच्छा रहेगा। न्यायाधीश ने कहा, कुछ लिखा-पढी है ? कुछ भी नही है। सिर्फ मेरा मित्र इतना वोलता है, हा, वह रत्न आपने दिया है मैंने आपकी पत्नी को दे दिया है। न्यायाधीश वह व्यक्ति था जो जीवन की परीक्षा करने वाला और चतुर था। उसने उसके मित्र को वुलवाया और उससे पूछा, क्या तुमको विदेश से आते वक्त तुम्हारे मित्र ने वहुमूल्य रत्न दिया था ? हा साहव, दिया था। फिर आपने क्या किया ? उसने कहा, मैंने आते ही मेरे मित्र की पत्नी को दे दिया। साक्षी के लिए चार व्यक्ति है। न्यायाधीश ने सोचा, कानून की दृष्टि से यह मामला इसके पक्ष मे जा रहा है। जो इसका मित्र है, जिसके जीवन को मैं जानता हूँ, वह इतना मलिन नही है कि व्यर्थ ही इसके वारे मे कुछ कह दिया जाय। न्यायाधीश ने कहा, अच्छा भाई ठीक है। उसको एक तरफ वैठा दिया। प्राचीन काल मे न्यायाधीश कुछ न्याय भी करते थे, लेकिन उस समय साधन कुछ और थे। वे कुछ तथ्य को ढूढने की कोशिश करते थे। उसने एक कमरे के अन्दर बहुतेरे पत्थर, कुछ छोटे कुछ वडे, एकत्रित कर रखे थे, जो चार व्यक्ति गवाही देने वाले थे, उनको सबको अलग-अलग

रखा। एक गवाही देने वाले व्यक्ति को न्यायाधीश साथ मे लेकर उस कमरे मे पहुँचा और कहने लगा, आपके सामने जो रत्न उस बहिन को दिया गया, वह कितना बडा था ? यह इतने छोटे मोटे पत्थर पडे हुए है इनमे से आप किसी पत्थर को उठा कर बताओ। उस गवाह देने वाले व्यक्ति ने अपनी जिन्दगी मे कभी रत्न नही देखा था तो वह सोचने लगा आखिर बहुमूल्य रत्न था तो बडा होना चाहिये, उसकी कल्पना दौडी और बडा सारा पत्थर उठाकर न्यायाधीश के हाथ मे देता है कि इतना बडा रत्न था। न्यायाधीश ने उस पत्थर को लेकर एक तरफ रख दिया और उसको एक कमरे मे बैठा दिया। दूसरा गवाह देने वाला था उसको बुलाया और इसी तरह प्रश्न किया। उसने भी जिन्दगी मे कभी रत्न नही देखा था। उसने भी यही सोचा कोई बहुमूल्य रत्न था तो बडा होना चाहिये और बडा सारा पत्थर उठाकर दे दिया। वैसे ही तीसरे और चौथे ने कार्य किया। न्यायाधीश ने चारो पत्थरो को एक साथ रखकर उस व्यक्ति को जिसने रत्न दबाया था, बुलाया और उससे कहा बोलो भाई तुम्हारे मित्र ने तुम्हे रत्न दिया था वह कितना बडा था तो उसने उस रत्न को देखा था और दबा रखा था इसलिये उस आकार का पत्थर उठाकर न्यायाधीश के हाथ मे दे दिया। तब न्यायाधीश ने पूछा ऐसे और भी रत्न तुम्हारे पास हैं ? और रत्न तो उसके पास थे नही। वही रत्न था लाकर बता दिया और कहने लगा और रत्न नही हैं। तो न्यायाधीश ने देखा इतने बडे बहुमूल्य रत्न को रखने वाले के पास और भी रत्न होने चाहिये। उसको पास मे रखकर न्यायाधीश ने कहा भाई तुमने धोखा किया और वह धोखा तुम्हारे मित्र के साथ ही नही है, अपने जीवन के साथ भी धोखा है। तब उसने कहा ऐसा कैसे हो सकता है। चार जनो की साक्षी मे दिया है— चार जने इसके साक्षी हैं। तो न्यायाधीश ने कहा ये चार आदमी तो रत्न को जानते भी नही हैं। ये जो चार पत्थर लाकर इन्होने दिये है, इससे साबित होता है कि इन्होने तो रत्न को देखा तक भी नही है। ये जो चार पत्थर रखे हैं इन्हे देख लो। फिर उस मित्र मे परिवर्तन आया और पश्चाताप के साथ कहने लगा मेरी भूल हो गई। मैंने तो यह कार्य किया लेकिन उन चार आदमियो को धोखा दिया। न्यायाधीश ने उस रत्न को वापिस लौटा दिया। यह एक रूपक है। आज इससे क्या उपस्थित हो रहा है धोखा देने और चोरी करने वाले की कैसी हालत हो गई। यह इसीलिये कहा है कि मनुष्य इस जीवन मे सभी तरह की स्थिति के साथ गुजरता है। उसे भिन्न तत्त्वो की पहचान नही होती तब तक उन चार व्यक्तियो की तरह

अटकल बाजी लगाया करता है। जीवन की परीक्षा करना है और जीवन को देखना है तो जो ज्ञान मार्ग भगवान महावीर ने बताया है वह यह है कि इन चीजो का परित्याग करके जीवन को निखालिस बनाकर देखे कि हमारा जीवन कैसे चल रहा है, जीवन की कैसी परिस्थित चल रही है। इस जीवन को समझने वाला वह उन पदार्थो का भी परित्याग कर देता है। अपने जीवन के स्वरूप को निखार कर लेता है चाहे वे किसी भी स्थिति मे क्यो न रहते हो। इसी बात को सरलीकरण के साथ समझाने के लिए मैं कमलसेन की कथा रख रहा हूँ। कमलसेन का बचपन का जीवन बडे विचित्र ढग से चल रहा है—

विकास की पहली सीढी

कमलसेन का नामकरण हो गया, उसकी स्थिति शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढने लगी और जब योग्य अवस्था पर पहुँचा तो स्कूल मे शिक्षण के लिए भेजा गया। आजकल की तरह कोमल अवस्था मे स्कूल मे प्रवेश नही कराया गया। आजकल तो कोमल अवस्था मे ही उनको स्कूल मे भरती करा दिया जाता है, उनका जीवन पहले ही मुर्झा जाता है। आज अपने बच्चो को स्कूल मे भेजने की बडी जल्दी कोशिश करते हैं, बच्चे के वय का कोई ध्यान नही करते हैं और यह सोचते हैं बच्चा पढ लिखकर होशियार हो जाय तो पैसा कमाने की एक मशीन तैयार हो जाय। क्योकि मनुष्यो ने पैसा कमाने की मशीन समझ रखी है। बच्चो के जीवन के महत्त्व के प्रश्न को नही समझते है जब स्कूल मे बच्चो के प्रवेश का प्रसंग आता आता है और सरकार की तरफ से यह आज्ञा हो कि स्कूल मे भरती होने वाला बच्चा पाच वर्ष का होना चाहिए तो झूठ बोलकर और कृत्रिम सर्टिफिकेट देकर बच्चे को स्कूल मे भरती करा दिया जाता है। इसका परिणाम क्या हो रहा है छोटे बच्चे को ही पुस्तको का बहुतेरा भार लग जाता है और उसका कोमल मस्तिष्क अतिभार से मुरझा जाता है। वे बच्चे जैसे होनहार होने चाहिए वैसे नही बन पाते और अपने जीवन मे कोई विशेप उन्नति नही कर सकते हैं। आज आप अनेक डिग्री प्राप्त छात्रो की दशा देखेगे, वे डिग्री भले ही प्राप्त करले किन्तु उनकी बुद्धि और व्यवहार उतने कुशल नही है जितना प्राचीन काल का मानव जो डिग्री प्राप्त नही है और सीधा सादा है वह व्यवहार कुशल और बुद्धि वाला होता है। कुछ विरले छात्र ही ऐसे होते हैं जो अपनी बुद्धि कोशल को

दिखा सकते हैं। इसका कारण प्रारम्भिक रूप से शिक्षा का भार है जो छोटे बच्चो पर डाल दिया जाता है लेकिन प्राचीन काल मे ऐसा नही था।

अतः कमलसेन को स्कूल मे कुछ योग्य अवस्था हुई तब भेजा गया। उस समय पढाई का भार दिमाग पर नही पडता था। सहज तरीके से ज्ञान-विज्ञान सीख लेते थे। राजा के घर मे कई दास-दासो रहते थे, वे अपने अपने देश की भाषा बोलते थे राजा का बच्चा कई भाषाओ का ज्ञान सहज ही प्राप्त कर लेता था। कमलसेन ने अपने बचपन की अवस्था मे ही कई तरह की कला सीख ली। उसमे धार्मिक कला का भी सुन्दर समावेश था। धार्मिक कला सीख ली जाय तो व्यक्ति के जीवन का स्वरूप चमक उठता है। जिसने धार्मिक कला नही सीखी वह जीवन को नही समझ पाता है। वह जीवन को मिट्टी के ढेले की तरह कि वा यन्त्र की तरह समझ कर उसका प्रयोग करने लगता है, जीवन की तरफ से उदासीन होने लग जाता है। कमलसेन सोचने समझने लगा कि यह जीवन मिला है, इस जीवन को ससार के विषयो मे लगाना उपयुक्त नही है। इस जीवन मे मुझे तत्त्व की खोज करनी है, मेरा स्वरूप क्या है मैं जीवन के उस स्वरूप की खोज मे लग जाऊ। इस भावना का प्रादुर्भाव बचपन मे हो गया।

चिंता और चिता

जिसने जीवन का थोडा तथ्य समझा है, जीवन के स्वरूप की कुछ उपलब्धि की है वह व्यक्ति इस जीवन को व्यर्थ के काम मे नष्ट नही करता है। कमल सेन अपनी तरुणाई मे प्रसन्न मुद्रा के साथ अपने जीवन का उत्थान कर रहा था। उसने शोक और चिन्ताये दूर फेक दी। जब तक बचपन की जिन्दगी होती है उस वक्त तक बच्चा प्रफुल्लित होता है। वह तरुणाई मे प्रवेश करता है तो वहुत सी चिन्ता उस पर सवार हो जाती हैं। चिन्ता जिस तरुण पर सवार हो गई, मान लीजिये, उसके लिए वह, आग हो गई। चिन्ता और चिता – इनमे ज्यादा अन्तर नही पडता है। कितना अन्तर पडता है ? बिन्दी का ? लेकिन चिंता किसको जलाती है ? चिंता जीते मनुष्य को जलाती है। मनुष्य का सीधे तरीके से विकास होने वाला है, लेकिन चिंता रूपी अग्नि के अन्दर वह जलने लग जाता है। स्थिति वदल जाती है। कमल सेन अपना जीवन ऐसे जलाने के लिए तैयार नही था। उसके मन मे न ईर्ष्या थी, न द्वेष। वह अपने साथी को वढते हुए देख

साधु को देखा, उसके मन मे अशान्ति उत्पन्न हो गई, वह जोर से बोलने लगा ये साधु लोग व्यर्थ मे इधर उधर फिरते हैं। कुछ भी काम नही करते। ऐसे लोगो को जिन्दा रहने का अधिकार नही है। समाज के अन्दर ये भार भूत है। ऐसी बहुत बाते बोल गया। महात्मा उसकी बात को सुनते रहे और चुपचाप खडे रहे। जब तरुण बोलना बन्द करता है उस वक्त महात्मा छोटा सा प्रश्न करते हैं कि भाई तुमने अपनी बुद्धि का विकास किया है तो साथ मे अपने जीवन का भी विकास किया होगा? मै एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ उसका उत्तर दे पावोगे? तो उसने कहा उत्तर हम नही देंगे तो कौन देगा? कहो, कहो तुम्हारा क्या प्रश्न है? महात्मा ने कहा एक दातार अपना माल दुकान मे फैलाकर बैठता है और जोर जोर से चिल्लाता है जो कोई लेना चाहे ले जाय, मैं दान देता हूँ। उस मार्ग से बहुतेरे निकलते है लेकिन कोई व्यक्ति उसको ग्रहण नही करता तो वे वस्तुए किसकी रहती है? तरुण ने कहा अरे इतना भी नही समझते। वह दातार देना चाहता है और कोई लेना नही चाहे, उसके दान को स्वीकार नही करे तो उसकी ही रहेगी। सन्त बोला भाई तुम भी उस दातार की तरह ही हो। तुमने कह दिया लेकिन किसी ने ग्रहण नही किया। किसो ने उसको स्वीकार नही किया तो ये सारी चीजें किसकी रहेगी? तरुण समझ गया। वह सोचने लगा इसमे मेरी व्यर्थ को शक्ति नष्ट हुई है। उसके ज्ञान की पिपासा भी जागृत हो जाती है। वह महात्मा के चरणो मे अपने जीवन का स्वरूप समझता है। वन्धुओ बहुतेरे जीवन मे उत्तेजना देने वाले मिल सकते हैं लेकिन इनको आप कतई स्वीकार न करे जिससे आपके जीवन की शक्ति नष्ट न हो। मनुष्य के अपने विचार जैसे होते हैं, उसकी दृष्टि भी वैसी ही होती है। हमारा देखने का ढग उसी प्रकार का होता है। अच्छे पुरुष सभी मे से अच्छाई ही ग्रहण करते हैं। बुराई की ओर उनका ध्यान ही नही जाता। इसीलिए तो कहा गया है कि दृष्टि मे सृष्टि बसी है। आप भी इस रूपक से एव तरुण कमल सेन के जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करके चलेगे तो आपका जीवन शान्तिनाथ प्रभु को परम शान्ति को प्राप्त कर सकेगा।

लाल भवन
१-८-७२



जीवन की परख

प्रार्थना

कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो ।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बाँह दृढ गहिये ।।

बन्धुओ !

यह प्रभु कुन्थुनाथ की प्रार्थना है । ये प्रार्थना की पक्तिया आधुनिक कवि की नही हैं । यह प्राचीन काल के कवि की कविता है । इसमे शब्द उसी भाषा के अनुरूप रखे गये हैं । लेकिन शब्द उतने महत्वपूर्ण नही है जितने शब्दो के पीछे रहने वाले भाव । शब्द तो अन्दर के विचारो के वाहक हैं । विचार शब्दो पर आरूढ होकर बाहर आते हैं । कवि के मन मे जो कुछ विचार पैदा होते हैं उन कल्पनाओ की और विचारों को शब्दों के माध्यम से बाहर व्यक्त करते है । शब्द कैसे ही हो, वाहन का महत्व नही है, महत्व सवार का है ।

उस शब्द रूपी वाहन पर विचार रूपी सवार कैसे आ रहा है ? इस तरफ दृष्टिपात यदि किया जावे तो उन विचारो का ही महत्व सामने आता है । परमात्मा कुंथुनाथ के चरणो मे कवि विनयचन्दजी ने कहा कि :—"हमारी बांह दृढ गहिये ।"

"प्रभु ! आप मेरी बाँह को अब दृढता से पकड ले । यहाँ बाँह को पकडने का तात्पर्य इस भौतिक शरीर की बाँह को नही, लेकिन जीवन की जो बाँहे हैं उनमे से एक को तो पकड लो । अर्थात् इस ससार रूपी समुद्र के अन्दर यह आत्मा गोते खा रहा है, इसको उबार दो, तार दो और पार लगा दो । ये भावनाएँ इस कविता की पक्तियो मे से झलक रही है । लेकिन देखना यह है कि क्या प्रभु इस प्रकार बाँह पकडकर तारते है कि अगर इस तरीके से परमात्मा तारने लगे तो इस ससार के अन्दर जितने

भी दुखी प्राणी हैं, जो इस ससार समुद्र के अन्दर बुरी तरह से भटक रहे हैं, उन सबका उद्धार हो जाए। प्रभु दयालु हैं दयालु को तो दया का पात्र चाहिए। पर क्या वे ऐसा कर रहे हैं ? जब वे ऐसा कर सकते हैं तो फिर क्यो नही दुखी व्यक्तियो का उद्धार कर रहे हैं ? यह एक दृष्टि सामने आती है, एक प्रश्न बनकर सामने खडा हो जाता है। लेकिन अगर गहराई से चिन्तन किया जाय तो यह कथन केवल उपचार मात्र है । स्वय की अभिमान की भावना को तिलाजलि देना मात्र है। व्यक्ति अपने जीवन पर, अपने यौवन पर, अपनी शक्ति और सम्पन्नशीलता पर एव अपने शरीर पर अभिमान करता है। मैं ऐसा कर रहा हूँ मेरे अन्दर ऐसी शक्ति आ गई है। इस प्रकार की अह वृत्ति जब आत्मा पर छा जाती है तो वह आत्मा अपने विकास को अवरुद्ध कर डालती है। इस अह वृत्ति का परित्याग करने के लिए अपने आपको साधारण व्यक्ति बताने के लिए कवि कुछ सकेत दे रहा है कि आप मुझे पार उतारो। अहकार की वृत्ति दो तरह से प्रकट हो सकती है अर्थात् अह की शक्ति का प्रयोग दो तरह से हो सकता है। एक तो दूसरे को नीचा दिखाने को दृष्टि से अह वृत्ति के साथ शब्दो का प्रयोग करता है "मैं ऐसा हूँ" और दूसरा मात्र वस्तु स्वरूप का कथन करने की दृष्टि से अपनी वास्तविक शक्ति को किसी के सामने रखता है कि मैंने कुछ किया है और यह मैं कर रहा हूँ। उसमे भी मैं शब्द का प्रयोग है । पर वस्तु स्वरूप का निरूपण करने की दृष्टि से जो मैं शब्द का प्रयोग किया गया है वह घातक नही है। वह तो विकास की ओर ले जाने वाला है क्योकि उसके द्वारा वस्तुस्थिति का प्रतिपादन करते समय शब्द का प्रयोग होना स्वाभाविक है। पर जो दूसरो को कमजोर बताने के लिये या नीचा दिखाने के लिए या अन्य तरह से प्रयोग करते हैं वह हितावह नही है।

प्रत्येक व्यक्ति को यह सोचना है कि मेरे जीवन का उत्थान मेरे हाथ मे है। प्रभु मुझे हाथ पकड कर लेजाने वाले नही है। यह जो कुछ भी प्रभु के चरणो मे निवेदन है वह एक अपनी लघुता की दृष्टि से है। भगवान तो दयालु हैं पर दयालुता के साथ ही उनमे तटस्थ भाव भी विद्यमान हैं। उनके सामने कैसा भी दृश्य हो लेकिन वे उस दृश्य को तटस्थ दृष्टि के रूप मे देखते हैं। वे उसमे हस्तक्षेप नही करते। जितनी आत्माएँ ऊ ची वढ जाती हैं उतनी हो वे साधारण स्थितियो मे हस्तक्षेप नही करती। आपने व्यावहारिक जीवन मे भी देखा होगा। जव वच्चे थे

तब बच्चो के खेलो मे भाग लेते थे। उसमे जय पराजय की भावना थी और दो बच्चो के बीच मे अपने खिलौनो को लेकर झगडे होते थे तो ताकत की दृष्टि से आप बच्चो मे हस्तक्षेप करते थे। पर वह बचपन की स्थिति चली गई और जीवन मे आगे बढे, यौवन मे आये और यौवन के बाद प्रौढता आई और जब मनुष्य के सामने अन्य महत्वपूर्ण कार्य आ गये तब वह इन दो बच्चो के झगडे को देखता है उनके खेलने के साधनो को देखता है लेकिन क्या अब वह उनमे रुचि लेता है ? उन बच्चो के बीच मे हस्तक्षेप करता है ? आप अपने ऊपर ही ले लीजिये आप बैठे हुए है और दो बच्चे अपने मिट्टी के खिलोनो से खेल रहे है। कभी वह उसे पटक रहा है कभी वह पटक रहा है पर आप इसमे कुछ भी भाग नही लेगे, इधर ध्यान भी नही देगे। आप यही सोचेगे कि इधर क्या देखना है, यह तो बच्चो का खेल है। इसमे क्या हार और क्या जीत। ये अपने आपकी छोटी वृत्ति से दुखित हो रहे है और एक क्षण अगर जीत गये तो सुखी हो रहे हैं। एक एक क्षण मे सुख और दुख का अनुभव करते है। इसमे मेरा क्या लेना देना है। जिस तरह से यह तटस्थ वृत्ति आप मे भी आ रही है। इसी तरह से जिन आत्माओ का चरम विकास हो गया है जिनमे रागद्वेष की कल्पना नही रही वे सब तरह से तटस्थ बन जाते है। ससार मे रहे हुए प्राणियो की तरह जो क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा है, कभी किसी को कुछ कह दिया तो दुखी हो गया और उसने कही कुछ कह दिया तो वह सुखी हो गया, क्या यह भी उन चरम छोर के विकास को प्राप्त-प्रभु के लिये बच्चो का खिलोना नही है ? ज्ञानियो की दृष्टि मे यह भी खिलोना जैसा ही है। वे बच्चे उन कम कीमत के खिलोने से खेलते है तो आप अधिक कीमत वाले खिलोने से खेलते है। ये सोने चादी और जवाहरात क्या है। आप इन्हे चाहे कितना ही महत्व दे। ये अधिक कीमत वाली कितनी ही हो। उनको एक व्यक्ति पकडता है, दूसरा कचोटता है, तीसरे के हाथ से निकल जाती है, तो इसको उनको कुछ दुख सुख होता रहता है तो ज्ञानी इस सब खेल को देखकर समझते है 'यह तो बच्चो का खेल है। इसमे भाग लेने की आवश्यकता नही। ये सब वस्तुए तो मोह की कारण भूत है। इनको जितना जितना छोडेगे उतनी उतनी वास्तविक सुख की दिशा मे प्रगति करेगे। इसलिये इस आत्मा को अपना मार्ग अपने आप तय करना है न कि भगवान के भरोसे बैठे रहना है। हमे अपने स्वरूप का निर्माण करना है स्वय को ही करना है और जो निर्णायक शक्ति

छिपी है शरीर मे दबी हुई है, उसको प्रकट करना है उसमें निखार लाना है।

मूल प्रश्न, जीवन क्या है ?

जयपुर मे आने के पश्चात् कुछ प्रश्न आपके सामने रख गया और उसके आगे कुछ उसकी व्याख्याएं चल रही हैं। वह आपको याद होगा ही।

प्रश्न है, किं जीवनम् ?

जीवन क्या है। इस प्रश्न के उत्तर मे कुछ परिभाषाओ का रूप लेकर मैं इस वात पर चल रहा हू कि—

"सम्यग् निर्णायक समतामय च यत् तज्जीवनम्"

इसमे जो निर्णायक शब्द है। वह मूल शब्द है और मूल की व्याख्या वनती है तो फिर विशेषणो की व्याख्या आती है। मनुष्य है तो फिर वह मनुष्य कैसा है किस टाइप का है। कैसी वृत्ति रखता है ये विशेषण पीछे लगते है। इसलिये विशेषण के पूर्व मूल जो विशेष्य है उसका ठीक तरह से वोध कर लेना चाहिये।

जीवन की परिभाषा के अन्तर्गत निर्णायक शब्द अपेक्षा से विशेष्य के रूप मे लिखा जा सकता है। इसकी व्याख्या यदि हमारे समझ मे आ गई तो हम इस शब्द के साथ लगने वाले सम्यग् विशेषण पर भी विचार कर सकते हैं। वह निर्णायक शक्ति, प्रत्येक मानव के अन्दर विद्यमान है और उस निर्णायक शक्ति का जो कर्त्ता है वह भी इसमे वैठा हुआ है। आज निर्णायक शक्ति के कार्य को देखा जा रहा है लेकिन कर्त्ता का अवलोकन नही किया जा रहा हैं। फव्वारे छूट रहे हैं, फव्वारो को हम देख रहे है, पर वह फव्वारा कौन छोड रहा है इसको नही समझ पा रहे है। कार भाग रही है, और मनुष्य की दृष्टि उस पर लगी हुई है। वह कार वहुत तीव्र गति से जा रही है लेकिन कार के चलाने वाले को दौडता हुआ देख नही पाते। कार को चलाने वाला दौडता नही है। वह वैठा रहता है, कार मे।

उसमे वह कार चलाने की निर्णायक शक्ति रहती है, कहा मोड और कैसा मोड दिया जावे यह उसमे विज्ञान है।

वैसे ही इस जीवन रूपी कार की स्थिति का आप थोडा अवलोकन

करे। यह शरीर रूपी कार इस भूमण्डल के रग मच पर कब से दौड रही है, कौन दौडा रहा है, इसका कार्य तो दृष्टिगत हो रहा है लेकिन इसका सचालक ड्राइवर कहा है और वह मूल तत्त्व किस मे रहा हुआ है इसका जव तक सही विज्ञान हमे नही होगा तब तक इस शरीर को देख देखकर हम भूलावे मे ही पडे रहेगे। लोग अपने शरीर की सुन्दर छवि को देखकर फूले नही समाते है। आज इस शरीर के पीछे क्या स्थिति बनी हुई है, इसको किस तरह से बनाव तथा शृंगारो से सजाया जा रहा है, इसका किस तरह से प्रदर्शन किया जा रहा है, यह हम सबके देखने मे आ रहा है। यह सव प्रदर्शन उस विज्ञान के नही जानने के कारण हो रहा है और जो आज की स्थिति बन रही है वह भी उस विज्ञान के अभाव मे बन रही है अधिकाश के जीवन इसके पीछे व्यर्थ जा रहे हैं। तरुण और तरुणिया आज अपने इस शरीर को देख देखकर फूले नही समाते। मन मे समझते है कि अहो, हमारा यह शरीर कैसा सुन्दर है। बचपन की अवस्था मे अपने आपको शरीर की सुन्दर आकृति को देखकर मुग्ध बने फिरते है, तरुणाई मे कुछ और दृश्य रहता है पर वृद्धावस्था मे पहुँचते है तो रौनक और वदल जाती हैं।

उस अवस्था मे मानसिक उत्साह शिथिल पड जाता है लेकिन यह नही सोच पाते कि यह वृद्धावस्था क्यो आई। इसका कारण क्या बना, इसके पीछे मूल स्रोत क्या है यह वे नही समझ पाते क्योकि यह समझने की शक्ति नही रही तो उसको देख-देख कर दुखित होते हुए इस ससार से रवाना होजाते है। इसीलिए वीतराग देव ने गौतम गणधर को सम्बोधन करके कहा :

"परिजुरइ ते शरीर
कैसा पण्डुरया हवन्तिते
से सोयवलेयहायइ
समय गोयम ! माप्पमायए ।। ३०
"परिजुरइ ते शरीर
कैसा पण्डुरया हवन्तिते
से चक्खु वलेयहायइ
समयं गोयम ! माप्पमायए।

हे गौतम ! जिस शरीर के ऊपर तुम मुग्ध होते जा रहे हो, जिस शरीर की प्रक्रियाओ को देखकर फुलावट वढ रही है, इन प्रक्रियाओ के

अन्दर ही सीमित मत रहो, यह तो रंग बदलने वाली है और जीर्ण शीर्ण बनने वाली है इसके केस श्वेत (पाण्डु) रग के बन जायेगे उस वक्त कुछ भी नही कर पावेगा। अभी जो तुम्हे वास्तविक तत्त्व देखने का है उसे देखो, जिसका निर्णय करना है उसका निर्णय करो लेकिन शरीर जो चमडी और हाडमास का पुतला है उस पर मुग्ध मत बनो। इस वीतराग वाणी मे अनन्त आशय रहा हुआ है उस अनन्त आशय की दृष्टि से वीतराग देव के जो वचन हैं उनमे से जितने लिये जाये उतने कम हैं। आप उस वीतराग वाणी को अपने जीवन के साथ देखिये जब आप मे भौतिक दृश्यो को देखने के साथ-साथ मूल तत्त्व को समझने की शक्ति विद्यमान है और आप अच्छी तरह से समझ सकते है। उस वक्त यदि आपने उस मूल तत्त्व को नही देखा और केवल टहनी और पत्तियो को देखते रहे और जब शरीर की दुर्दशा होगी, मानसिक शक्ति कमजोर होगी तब कुछ भी नही देख पाओगे। इसीलिए जीवन के निर्णायक स्वरूप मूल तत्त्व जो आपके इस शरीर के मध्य विद्यमान है और अपना सारा कार्य कर रहा है। उस निर्णायक स्वरूप को ठीक तरह से हम समझ ले तो परिभाषा का एक-एक शब्द हमारी समझ मे ठीक तरह से आ सकता है।

यथाशक्ति सभी निर्णायक है ?

प्रत्येक आत्मा मे वह निर्णायक शक्ति रही हुई है। केवल मानव ही उस निर्णायक शक्ति को ले कर चल रहा हो ऐसी बात नही है। पशुओ के पास भी वह निर्णायक शक्ति है। पशुओ मे पचेन्द्री है सो तो है लेकिन जहाँ चार इन्द्रीय वाले प्राणी है, तीन इन्द्रियो वाले प्राणी हैं, दो इन्द्रियो वाले प्राणी है और एक इन्द्रिय वाले प्राणी हैं उनमे भी निर्णायक शक्ति तो है लेकिन उनके जो निर्णय करने के साधन (माध्यम) है वे विकसित नही है। जहा एकेन्द्रीयादि जीव हैं जब उनको क्षुधा लगती है तो वे भी भोजन के लिए निर्णय कर पाते है और भोजन गृहण करके अपने आप मे तृप्ति का अनुभव करते है। वनस्पति के अन्दर भी यही बात है। आप कहेगे कि भोजन करने की निर्णायक शक्ति वनस्पति मे कैसे मानी जाय। वनस्पति का नाम इसलिए मैं ले रहा हूँ कि यह हर मानव के मस्तिष्क मे जल्दी आ सकती है। कुछ शताब्दियो पूर्व जब कभी यह कहा जाता कि वनस्पति के अन्दर भी वह तत्त्व है जो कि भोजन का निर्णय करने वाला है जिसको हम आत्मा की सज्ञा दे सकते है तो कोई स्वीकार करने के लिए तत्पर नही होता। वे कहते कि वनस्पति जो चलती फिरती नही है उसमे

जीव कैसे हो सकता है ? लेकिन जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण कुछ पैना बना और आज यद्यपि विज्ञान चरम सीमा पर नही पहुँचा है फिर भी जितनी मात्रा मे विज्ञान का प्रदर्शन दुनिया के सामने व्यक्त हुआ उसमे मानव को कई तरह की उपलब्धिया हुई है उनमे वनस्पति मे जीवत्व सिद्धि की भी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और उससे यह सिद्ध किया गया है कि वनस्पति मे भी हमारे जैसी एक निर्णायक शक्ति रही हुई है। जगदीशचन्द्र बसु ने जिस समय वनस्पति मे जीव सिद्धि का प्रयोग दर्शको के सामने रखा वहा बडे-बडे दूरवीक्षणयंत्र रख दिये गये जैसा कि श्रवण करने को मिला कि एक व्यक्ति का ४० रुपया टिकट का रखा गया फिर भी इतने दर्शक थे कि सभी को स्थान नही मिल सका उस वक्त जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति की प्रशसा की तो वनस्पति प्रफुल्लित और विकसित होती हुई दृष्टिगत हुई। आप सोचिये कि जैसे मनुष्य अपनी प्रशसा को सुनकर अपने अन्दर निर्णय करता है कि यह मेरी प्रशसा हो रही है, ओहो मैं ऐसा हूँ और झट से उसमे प्रफुल्लता आ जाती है वैसे ही वनस्पति के साथ जब सुन्दर शब्दो का प्रयोग हुआ तो वनस्पति के अन्दर प्रफुल्लता आई तो उसको देखकर आप अनुमान लगा सकते है कि उसके अन्दर हमारी तरह की निर्णायक शक्ति रही हुई है जिसने समझा कि मेरी तारीफ हो रही है, और जब दूसरे शब्दो मे उसकी निन्दा की गई तो वह कुमलाती हुई दिखाई दी। यह दोनो दृश्य जैसे विकसित मनुष्यो के अन्दर देखे जाते है उसी तरह से उसमे भी देखे गये। इससे यह परिभाषा सिद्ध हो गयी कि वनस्पति कहलाने वाली एकेन्द्रीय मे भी वह निर्णायक तत्त्व विद्यमान है लेकिन वह वनस्पति स्वय उस निर्णायक तत्त्व को समझने मे अक्षम है। उसका विकास सिर्फ एक शरीर तक ही है। आगे की इन्द्रियो का विकास नही है लेकिन जैसे ही वह आत्मा-निर्णायक तत्त्व वनस्पति को छोड करके कुछ विकास क्षेत्र मे आगे आती है और दो इन्द्रिय प्राप्त करती है तव कुछ उसमे और इसमे कुछ अन्तर आ जाता है। एक जिह्वा और बढ जाती है और वही आत्मा कालान्तर मे और विकास के क्षेत्र मे आगे बढती है तो अगले जन्म मे तीन इन्द्रिया प्राप्त कर सकती है। आप इस विकासवाद को आध्यात्मिक विज्ञानवाद के साथ समझेंगे तो यह विकासवाद आपको वस्तु स्थिति का सही निर्णय देने वाला होगा। यद्यपि दार्शनिक एव वैज्ञानिक क्षेत्र मे भी विकासवाद का प्रयोग चला और उसमे डार्विन का विकासवाद मुख्य था किन्तु उसे विकासवाद को आधुनिक वैज्ञानिको ने कुछ कमजोर बना दिया और उसका उतना तथ्य वर्तमान वैज्ञानिको के मस्तिष्क मे अब नही

रहा है। लेकिन इस आध्यात्मिक विज्ञान के क्षेत्र मे, इस विज्ञान की प्रक्रिया का ठीक तरह से विश्लेषण किया जाये तो इस निर्णायिक शक्ति का विकास कैसे बनता है और साथ ही उसका परिणाम इस शरीर के विकास के साथ कैसे सम्बद्ध होता है यह बहुत ही शानदार विषय हर मानव के मस्तिष्क मे आ सकता है। जब उसका अधिक विकास हुआ और कुछ साधन उपलब्ध हुए तो दूसरे जन्म मे तीन इन्द्रिय शरीर जिह्वा और नासिका मिल गई। नासिका जिसको प्राप्त है जैसे चीटी, मकोडे आदि वे भी अपनी निर्णायिक शक्ति को अधिक नही समझते। वे उतना पूरा नही समझ पाते किन्तु उनकी घ्राण इन्द्रिया मानव की घ्राण इन्द्रियो से कुछ तीक्ष्ण बन जाती है।

यहाँ एक शक्कर का दाना पडा हुआ है, आप इस शक्कर के दाने के साथ नाक लगा दें तो आपको सुगन्ध स्पष्ट नही आयेगी लेकिन चीटी बिल मे रह रही है उसकी नासिका इतनी तीव्र हैं कि बिल मे से ही वह निर्णय करती है कि बाहर कोई सुगन्धित पदार्थ है और वह वहा से निकल कर के कभी इधर टक्कर खायेगी कभी उधर टक्कर खायेगी। क्योकि उसके दृष्टि नही है, फिर भी शक्कर के दाने का जायका लेने के लिए पहुँच जायेगी। आप देखिये यह भी निर्णायिक शक्ति तो है और वह निर्णायिक शक्ति कुछ विकास की ओर है किन्तु इससे जब आत्मा विकास के प्रसग पर और आगे बढती है तो उसको अगले जन्म मे चार इन्द्रियो का प्रसग भी आ सकता है जिसमे तीन तो पूर्व वाली हैं और चौथे नेत्र आ सकते हैं। वे प्राणी मक्खी आदि नेत्र के माध्यम से सुख दु ख की स्थिति का वर्तमान जीवन के साथ अनुभव करते है लेकिन दीर्घकालीन निर्णायिक शक्ति उनमे भी नही होती। जब तक पतगा बल्ब को देखता है तो उसका निर्णय करता है कि यह तो बहुत ही आकर्षक तत्त्व है मुझे इसको पकड लेना चाहिए। इस भावना से पतगा उस पर झपापात करता है और उसका ताप लगने से वह नीचे गिर जाता है, उसको मूर्छा आ जाती है लेकिन जब भी उसकी मूर्छा टूटती है तब फिर उसी पर जाता है लेकिन उसमे यह निर्णय करने की क्षमता नही आई कि यह जो दिखने वाला प्रकाश पिण्ड है वह उसे मूर्छित करने वाला है तो मैं पुन झपापात न करूं, अगर करूगा तो पुन मूर्छा खाकर गिरूगा। यह निर्णय करने की ताकत उसमे नही है क्योकि वह निर्णायिक शक्ति उसमे परिपूर्ण विकसित नही है इसलिए पुनः उस पर झपापात करता है और फिर गिरता है, फिर झपापात करता है

और फिर गिरता है और ऐसा करते-करते वह प्राणो की आहुति दे देता है। लेकिन वही जीव जब विकास की दृष्टि से आगे बढता है तो पाच इन्द्रिया प्राप्त हो जाती है उसमे कान विशेष आ जाता है। पशु और मानव की स्थिति आ जाती है। यह विकास का क्रम जो इस आत्मा के साथ चला उसमे निर्णायक शक्ति भी चल रही है। इस बात को समझने की योग्यता विशेष कर मानव मे ही है। यदि आज का मानव उस मूल तत्त्व को ढूढना चाहे कि वह निर्णायक शक्ति कौनसी है जो कि हमारे जीवन की परिभाषा के साथ लागू हो रही है तो वह उसको ढूंढ सकता है। यह साधन और योग्यता मानव के अन्दर है अवश्य है लेकिन मानव आज अपनी योग्यता को भुला कर के पतगा का साथी बन रहा है, यह कहा तक चल सकेगा। मेरा यह कथन अधिकांश प्राणियो के लिए है। अपवाद सर्वत्र है। आज का मानव क्या है ? किस के ऊपर अपने जीवन को न्यौछावर कर रहा है ? क्या पतगा जैसे रूप को देखकर मुग्ध बनता है ? उसी तरह से मानव किसी पिण्ड को देखकर मुग्ध तो नही बन रहा है और उससे कितने आघात लग रहे हैं और कितनी मूर्छा आ रही है उसका कुछ भी अवलोकन कर पा रहा है क्या ?

चल-चित्रों की धूम

वहुत अच्छे विज्ञापन आ रहे है। अव उस सिनेमाघर मे अमुक चित्र आया है जोअपूर्व है और ऐसा अपूर्व है कि जो कभी नही देखा। ऐसी आवाज जव कर्णगोचर हो तो किसका मन नही मचलेगा। अधिकाश प्राणी तिल-मिलाने लगेगे कि ऐसा चित्र तो जरूर देखना है। कोई बिरला आदमी ही ऐसा होगा जो कि इसका त्याग कर सकता हो। किन्तु जिसका मन ललचा गया है वह तो जायेगा सो जायेगा अपने वाल-वच्चो को भी साथ ले जायेगा, अपनी पत्नी को भी साथ ले जायेगा। वहा क्या देखेगा ? क्या अपूर्व चीज है वहा ? अपूर्व चीज मानव के लिए देव की हो सकती है लेकिन वहा सिनेमा के अन्दर कोई अपूर्व चीज नहीं है। है क्या ? ज्यादा से ज्यादा नायक-नायिकाओ के दृश्य और उसमे किसी का सुन्दर रूप निखार रखा है और उसी रूप के पतग वनकर वे देखने वाले व्यक्ति वहा पर पहुँच जाते है। वे अपनी शक्ति को कितनी मात्रा मे अपव्यय के रूप मे वर्वाद कर देते है, कुछ भी नही सोच पाते। अपने नेत्रो की जो महत्त्व-पूर्ण शक्ति है उसको नष्ट करने वे वहाँ आँखे फाड-फाड कर वैठ जाते है और सोचते हैं कि यह चित्र हमारे सामने से नही जाये और उसके साथ

ही साथ मानसिक शक्ति भी प्रवाह के साथ बहती जाती है। उसमे वह चित्र के वे सस्कार आते हैं जिनमे मुग्ध बनकर व्यक्ति मूर्छित सा बन जाता है। इससे शारीरिक स्वास्थ्य को तो वह बर्बाद करता ही है पर आर्थिक दृष्टि से भी अपव्यय होता है। वहा से निकल कर जब वह घर पहुँचता होगा तो जो चिन्तन की शक्ति उसमे आनी चाहिये थी, उसके स्थान पर अपनी शक्ति की क्षीणता का और थकान का अनुभव करता होगा। यह मैं अनुमान से कह रहा हूँ। सही अनुभव तो आप देखने वाले बता सकते हैं। ऐसी स्थिति बनती है कि नही ?

आप देखिये यह भी एक तरह की मूर्च्छा है। फिर भी मानव नही समझ पाता कि यह मैं क्या कर रहा हूँ। मानव का कर्तव्य तो यह है कि यदि उसे अनुभव करना है, कुछ देखना हो।

[illegible]

पर अभी फिलहाल एक तरुण की स्थिति का प्रसग जो आपके सामने आ रहा है वह अपनी तरुणाई को आज के तरुणो की तरह ही लेकर चल रहा था। पर उसकी तरुणाई और थी और आज के तरुणो की तरुणाई कुछ और है।

जिसने अपने निज गुण का महत्त्व समझा है वह उन गुणो के महत्त्व के पीछे आत्मराम को ध्याता है। जानते हो आत्मराम को ?

रमते योगिनो यस्मिन् स राम

जिसमे योगी लोग रमण करे। अर्थात् योगी लोग योग साधना मे मन को बाह्य इन्द्रिय जन्य पौद्गलिक पदार्थों से हटाकर अन्दर के जीवन की तरफ मोडते है और अन्तर मे जो वह एक निर्णायक तत्त्व है उसमे रमण करने की कोशिश करते है। योग के भेदो मे और उसकी प्रक्रिया मे अन्तर हो सकता है, पर योग शब्द का अर्थ यही है तो निज गुण का कामी अपने आत्माराम मे रमण करता है।

यह कमलसेन नामक तरुण जब अपनी तरुण अवस्था मे पहुँचा तो उसके सारे अगो का विकास हुआ। जब तक अगो का विकास नही होता है तब तक इस शरीर का व्यवहार कुछ और होता है और जब तरुणाई मे व्यक्ति पहुँचता है तो अगो के विकास के साथ उसकी मानसिक क्रियाए भी बदल जाती है और जीवन के अन्दर जो एक आधी और तूफान आता है उस तूफान और आधी से ओत-प्रोत उस तरुणाई पर काबू पाना सब लोगो के लिये सहज नही है। ऐसी स्थिति मे स्वय मे रही हुई निर्णायक शक्ति अगर सुषुप्तावस्था मे है, उसे किसी ने जागृत नही किया है तो वह तरुणाई की आँधी उस शरीर रूपी कार को कहाँ ले जाकर गिरा (ढकेल) देती है इसका भी पता नही लगता।

समाचार पत्रो मे आये दिन आप लोग भी पढते रहते हैं और कभी-कभी मुझे भी सुनने को मिलता है कि आज के तरुण और तरुणिया इस जीवन रूपी कार को कहा ले जाकर पटक रहे है। वे कैसी-कैसी औषधियो का और नशीली वस्तुओ का सेवन करते है जिनके नाम भी सम्भवत: आप कइयो ने नही सुने होंगे और उन परिस्थितियो मे पडकर वे अपने जीवन को किधर ले जा रहे है इसकी कल्पना करने मात्र से रोमाच हो जाता है। सरक्षक माता पिता तो यह समझते है कि हमारे बच्चे-बच्चिया कालेजो मे अध्ययन करने जा रहे है वे वहा कुछ ज्ञान-विज्ञान की बाते सीखकर

अपने जीवन का निर्माण करेंगे पर वे आज उल्टी दिशा मे बहे जा रहे हैं। माता-पिता उनके बारे मे बहुत थोडी जानकारी रखते होगे, वे शायद महसूस भी नही करते कि हमे इस विषय मे आगे क्या करना है। वे ११ से लेकर ५ बजे तक कालेजो मे पढते है। साधारण घरो के बच्चो मे तो शायद यह प्रवृत्ति नही होगी, पर जो अमीर घरो के बच्चे है वे क्या क्या वहाँ करते है। तो आज यह सब क्या चल रहा है। इस जीवन रूपी कार को किधर धक्का दिया जा रहा है वह बिना ब्रेक की कार किसी खड्डे मे तो नही गिर जावेगी। ड्राइवर के हाथो मे से ब्रेक की स्थिति कमजोर बन जाती है तो उसकी दशा क्या बन सकती है इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

उसके जीवन के साथ भी सभी तरह की जीवन सामग्री थी। अपने समय का राजकुमार था। पर उस तरुणाई मे आज की तरह के तूफान का प्रसंग नही आया। वह विकारो से जीवन पर कन्ट्रोल रखकर निर्णायक शक्ति की ओर झुक रहा है। जब कभी इस राजकुमार की शादी विवाह का प्रसग आता तो यह कहता कि यह आप क्या कर रहे है। क्या इस मनुष्य जीवन को किसी एकाध व्यक्ति के साथ सम्बन्धित करके समाप्त करना है? मैं अपने जीवन की इतनी कम कीमत नही करता। मैं इसका बहुत बडा मूल्याकन कर रहा हूँ। इसलिये आप मेरे लिये इसकी ताकीद न करे कि मेरा किसी कन्या के साथ विवाह हो। यह चर्चा ही न करें। पुत्र की बात को सुनकर पिता और माता का चित्त प्रसन्न नही होता था, ऐसी बात नही थी, वे भी प्रसन्न होते थे, क्योंकि उन दोनो का जीवन भी धार्मिक था और माता ने तो प्रारम्भिक अवस्था से ही अपने पुत्र मे सस्कार ही ऐसे डालने की कोशिश की थी।

जिन माता-पिताओ के धार्मिक सस्कार होते है वे पुत्र की ऐसी बातो को सुनकर प्रसन्नता प्रकट करेंगे और जिन माता-पिताओ के धार्मिक सस्कार नही होगे, वे उदास होगे और कभी-कभी तो कहेगे कि मेरा बच्चा इस प्रकार की बातें करने लग गया। कदाचित् सतो के पास पहुँचकर फिर ऐसी बाते कर दे तो फिर वे सतो के पास भी जाने दे या नही। फिर अपने पुत्र को कहेगे कि नही महाराज के पास नही जाओ नही तो महाराज जी तुमको साधु बना देगे। इस प्रकार की बाते बन जाती हैं लेकिन सोचना यह है कि इस प्रकार से यदि साधु बनने लगे तो शायद सत्र के सब साधु बन जायें। किन्तु जिसकी पुण्यवानी होती है वही साधु बनता है, हर एक नही।

बन्धुओ, महारानी और महाराजा प्रसन्नता का अनुभव करते थे और उस बच्चे को देखकर मन मे सुन्दर कल्पना करते थे। उस बच्चे का भी जीवन परम शुद्ध था और वह कहता था कि माता-पिता मेरा जीवन शुद्ध और पवित्र कैसे बने आदि अनेक प्रकार की बाते करके माता के उल्हास को बढाता रहता था।

उस तरुणाई के अन्दर शात रहना और इन्द्रियो का दमन करना यह कोई सहज बात नही है। चमचमाते हुए लोहे के गोले को हाथ मे पकडना—जैसा दुश्वार है उसी तरह से तरुणाई की उस आग की स्थिति मे इन्द्रियो के ऊपर काबू रखना भी उतना ही कठिन कार्य है। लेकिन यह सद्‌भाग्य वाले मनुष्य के जीवन मे कभी-कभी बना करता है वैसी स्थिति मे गम्भीरता और अंकुश के अन्दर उनका जीवन था और उनकी दृष्टि नीची का तात्पर्य यह है कि उसी दृष्टि का उपयोग हमेशा अपना रास्ता देखने मे था न कि इधर-उधर पतगो की तरह रूप देखने मे। जो व्यक्ति अपनी दृष्टि पर काबू पा सकता है वह धीरे-धीरे दूसरी इन्द्रियो पर भी काबू पा सकता है और जब बोलने का प्रसंग आता है तो कोई असत्य बात नही करता। आजकल तो बिना मतलब का असत्य कितना बोला जाता है और वह भी कालेज के प्रवाह मे बहने वाले कई तरुणो का ऐसा किस्सा सुनने को मिलता है कि कहा-कहा तक वे चार सौ बीसी सीख जाते है। लेकिन वह सत्यवचन बोलता। उसका जीवन परोपकार प्रिय हुआ बना था, दान देने की भावना थी और साथ ही साथ वह शूर वीरता भी उसके जीवन की विशेषता थी। इस प्रकार की उसकी स्थिति को देखकर माता-पिता के मन मे न मालूम कैसे विचार आते होगे और कैसी-कैसी कल्पनाए चलती होगी यह माता पिता ही सोच सकते है। आज के माता-पिता अपनी सन्तान के लिए कल्पना करने जायेगे तो वे दुखी हो या आनन्द का अनुभव करेगे इसे आप ही जाने। ऐसे बिरले ही माता-पिता होगे जो अपने पुत्र की ऐसी स्थिति को देखकर अपने जीवन मे कुछ आनन्द का अनुभव करते हो और दुखित नही होते हो।

चिन्तन की कुछ बातें

डॉ० नन्दलाल जी बोर्दिया अभी शायद इन्दौर होंगे, पहले दिल्ली मे थे, टी० बी० के स्पेशलिस्ट थे उनके इकलौते पुत्र श्री अशोक कुमार जिन्होने आधुनिक डाक्टरी की शिक्षा ग्रहण की और कालेज के अन्दर जैसे कि सस्कार उनको मिल रहे थे वे भी सस्कार उन्होने लिए और तरुणाई के

अदर पहुँचे, लेकिन उनकी वृत्ति बाह्य विषयों की तरफ नही होकर आतरिक विषयो की तरफ मुड गयी और तरुणाई के अन्दर आत्मचिन्तन और ध्यान मौन करने लगे। उनको ऐसा सहवास मिला उसमे भी वे अपने आपको अखण्ड बचाकर चलने लगे। जब मेरा इन्दौर चातुर्मास हुआ तो वे वहा पर आए और कुछ बाते की और जब मैं रायपुर पहुँचा तो वहा तो उन्होने बहुत सारे प्रश्न मेरे सम्मुख प्रस्तुत किये और मानसिक चिन्तन मे क्या-क्या परिस्थितिया आती हैं, तरुणाई की स्थिति मे भी इन्सान के साथ क्या क्या बीतती हैं, उसके साथ ही साथ जितने ढग के फ्राइड के सिद्धात हैं और शिक्षित लोगो के अन्दर क्या-क्या भावनाये पैदा हो जाती हैं इन सब बातो को उन्होने मुझ से पूछा और उनका समाधान लिया। यह भावना डाक्टर साहब के सामने भी आई और उनकी पत्नी के सामने भी आई लेकिन डाक्टर साहब ने कोई रन्ज नही किया और उनकी पत्नी ने भी कोई हाय आहि नही मचाई।

आज के युग मे यह विषय चिन्तनीय है। नही तो जिनके एक ही पुत्र हो और वह ऐसी बातें करे तो न मालूम माता रो रो कर घर मे कैसा वातावरण बना दे। लेकिन वह माता जो कि डाक्टर साहब की पत्नी थी दुर्ग के अन्दर जब आये और बीच मे भी मिले थे उनमे प्रसन्नता ही देखी। प्राय साल मे एक चक्कर इधर उधर लग ही जाता है। डाक्टर साहब दुर्ग मे मुझे कहने लगे कि महाराज अशोक कुमार जहा रहा है वहां मुझे पूरा सन्तोष नही है किन्तु यदि वह आपके पास दीक्षा ले तो मैं इसके लिए तैयार हूँ। वह अशोक कुमार कुछ साधुचर्या के नियमो का जितना चाहिए उतना पालन करने मे सक्षम नही होने की वजह से अभी उनकी स्थिति वैसी ही चल रही है। वह डाक्टर भी बन गया और सरकार से तनख्वाह भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है लेकिन वह अपनी आवश्यकता के अनुसार काम मे लेता और बाकी पैसा गरीबो मे बाट देता। यह वहां का उनका जीवन है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे मैं कमलसेन के माता-पिता का जिक्र कर रहा हूँ, आप सोचेगे कि यह महाभारत के समय की पुरानी बात है लेकिन आज के युग मे भी ऐसी माताए नमूने के तौर पर हैं। इस दृष्टि से भी आपको अपने जीवन का थोडा अवलोकन करना है और उसी जीवन का अवलोकन करने के लिए जीवन की परिभाषा आपके सामने रख रहा हूँ। लेकिन उस परिभाषा को समझने के लिए आप कुछ आतरिक तैयारी करें। तमाम समस्यायें जो आज हमारे सामने हैं आतरिक जीवन

सम्बन्धी, राष्ट्रीय चरित्रहीनता की समस्याये और अन्य समस्यायें ये सब की सब धीरे-धीरे स्वतः ही समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार मूल को नही पकडा गया और टहनी पत्तियो की तरफ चले गये तो मूल समस्या और बढती जायेगी, जिसका मूल हाथ मे नही आयेगा फिर चाहे कोई भी उपाय करे कुछ नही होने वाला है।

वही डाक्टर कुशल है जो रोग का पहले निदान करता है कि इसको कौनसा रोग हैं, और किस कारण से है ? जो रोग का निदान ठीक करके फिर उपचार करता है वह जल्दी सफल होता है और यदि रोग का निदान न करके केवल दवाइयो का प्रयोग करता रहता है। वहा उस मनुष्य के जीवन की प्रयोगशाला बना दी जाती है तो डाक्टर जितना कामयाव होना चाहिए नही हो पाता।

बन्धुओ, आप अपने जीवन की डाक्टरी सीख जावे और जीवन का मूल तत्त्व क्या है, सारे रोगो का निदान क्या है इसे ढूंढना चाहे और इस अन्वेषण मे सफल होगये तो जीवन का विकास हर हालत मे होकर रहेगा।

इस गरमी की मौसम मे भी बहनो की शक्ति तप की ओर लग रही है। यह प्रभू महावीर के तप का प्रभाव है। नही तो आज के युग मे तो उपवास करना भी दुश्वार है। एक समय भी भोजन के लिए कहा जाता है तो आदमी ठण्डा हो जाता है। दिन मे दो तीन बार खाया जाता है। ऐसी स्थिति मे आज जो वहन नो की तपस्या पच्ख रही है तो इससे तो रूपक और ही बनता है। और भी भाई वहन तपस्या कर रहे है। इन बहनो का यह साहस और इस प्रकार की प्रवृत्ति एक दृष्टि से प्रशसनीय है और साथ ही साथ जीवन विकास की प्रेरणा भी दे रही है। यदि आप भी इनका अनुकरण करते हुए अपने-अपने जीवन को माजने का प्रयास करेगे तो आपके जीवन मे भी चार चाँद लग सकते हैं। आप अपना जीवन सफल बना सकते है। इस समय इतना ही कहकर विश्राम लेता हूँ।

॥ इति ॥

२-८-७२
लाल भवन

आत्मिक रहस्य

प्रार्थना

अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो, विमल विज्ञान विलासी ।। साहिब सीधो ।
चेतन भज तू अरहनाथ ने, ते प्रभु त्रिभुवन राय ।
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेहनो पुत्र कहाय ।।२।। साहिब सीधो ।।

यह प्रभु अरहनाथ भगवान की प्रार्थना है। प्रार्थना की पक्तियो मे परमात्मा के स्वरूप को पूर्णरूपेण व्यक्त नही किया जा सकता है। उनके स्वरूप का वर्णन हर व्यक्ति के बूते की बात नही है। देव दानव और सुर वृहस्पति भी उनके गुणो का वर्णन नही कर सकता है। प्रभु अरहनाथ जिनसे विश्व का कोई तत्त्व छिपा हुआ नही है। सवग्रह पदार्थो को जिन्होने साक्षात् देख लिया है और सदा देख रहे हैं, ऐसे अरहनाथ भगवान के चरणो मे जब प्रार्थना की कडियो का उच्चारण होता है तो मानव की सहज भावना जागृत होती है कि मै भी इस प्रकार का ज्ञान और विज्ञान सपादित करू जिससे ससार के समग्र पदार्थो को देख सकू मनुष्य प्राय सुन्दर पदार्थो को देखने मे लालायित रहता है। पाच इन्द्रिया और मन के सहारे जितना ज्ञान और विज्ञान सम्पादित कर सकता है उतना कर लेता है पर उसकी जिज्ञासा बढती रहती है। वह यह भी चाहता है कि पर्दे की आड मे क्या है? दिवाल के पीछे क्या है और भूतल के नीचे कौन सा तत्त्व रहा हुआ है। आकाश मे जो बहुत बडी दिव्य शक्तिया दिख रही है उन शक्तियो मे क्या तथ्य रहा हुआ है वह उन सब ही बातो का वह विचार किया करता है और यदि उसका वश लगे तो वह उन सब चीजो को देखने का भरसक प्रयत्न करता है। आज मनुष्य का विकास इस हद तक पहुचा है उसके पीछे यही एक भावना रही हुई है कि इस ससार के रहस्य को मै अधिक से अधिक समझ सकू। जिधर भी मनुष्य का प्रवाह मुडा और जिस तरफ भी गति होने लगी वह निरन्तर पानी की

तरह खोज के प्रवाह में बहता गया और बहते बहते आज दुनिया के सामने कुछ विचित्र से दृश्य उपस्थित कर दिये। पानी जिधर जाता है उधर वही अपना रास्ता बना लेता है लेकिन उसकी गति उधर ही ज्यादा होती है जिधर कि उसको सुगमता से जाने का मार्ग मिलता हो। बडी चट्टान आती है तो वह रुकता जरूर है लेकिन रुक कर भी चट्टान को गीली करके मार्ग ढूढ लेता है। अमुक तरफ चट्टान पोली है तो आगे मार्ग बना कर गति कर लेता है।

मनुष्य आज पानी के प्रवाह की तरह बढ रहा है, उसे जिधर मार्ग मिला वह खोज के मार्ग को सुगम बनाता गया और बढते बढते न जाने वह कहा से कहा तक पहुँच गया। आदियुग के मनुष्य, शास्त्रीय दृष्टि से जुगलिया मनुष्यो मे और आज के मनुष्य मे बहुत गहरा अन्तर है। क्योकि आदियुग का मनुष्य आग के स्वरूप को नही समझता था, जब आग का विकास हुआ तो वह आश्चर्य करने लगा। किन्तु आज का मानव उन लघुतम उपलब्धियो से आश्चर्य नही करता है। आज के मानव की तीव्र रफ्तार से इस ओर गति हो रही है। विज्ञान मे दौड लग रही है, आगे बढने की कोशिश हो रही हे। फिर भी वह सुगन्ध के गहनतम रहस्यो का पता नही कर पा रहा है। उस का कारण है कि जिस विज्ञान की धारा को लेकर चला जा रहा है—वह पूर्ण सही विज्ञान नही है। वास्तविक ज्ञान और विज्ञान जिससे गूढतम रहस्यो को जाना जाए, अरहनाथ किवा वीतराग सिद्धान्तो मे ही उपलब्ध हो सकता है। अरहनाथ विमल विज्ञान विलासी थे, उन्हे सम्पूर्ण गूढ रहस्यो का ज्ञान था किन्तु वे आज के वैज्ञानिक की तरह से देखने की कोशिश नही करते हैं। आज का वैज्ञानिक यन्त्रो के द्वारा देखने का प्रयास करता है। आज के इस मशीनरी युग में अपोलो, रोकेट आदि दूर दूर तक भेज कर भी अनुमान ही लेकर चलता है लेकिन भगवान अरहनाथ ने इन साधनो का कुछ भी प्रयोग नही किया, उन्होने अपनी साधनो मे पुनर्जन्म की पुन्यवानी से जो सहज साधन उपलब्ध हुए उनको ही यथास्थान प्रयोग किया।

कौन से साधन उपलब्ध हुए ? मनुष्य का तन मनुष्य शरीर भी अपने आप मे एक बहुत बडा वैज्ञानिक साधन है। मनुष्य शरीर के साथ पाच इन्द्रिया और मन है। ये साधन भगवान को उपलब्ध थे, वे इन साधनो ो जितना चाहिये उतना उपयोग विमल विज्ञान को प्राप्ति मे करते थे। म्भ मे साधना क्षेत्र मे राज्य और परिवार को छोड कर जंगल मे चले

गये और साधना पथ पर चलते हुए, इन्द्रिया और मन को अपने नियन्त्रण मे किया, शरीर की तरफ भी विशेष ध्यान नही दिया। उनका शरीर वज्र ऋषभनाराच सहनन युक्त था, अर्थात् वे मजबूत शरीर के धारक थे। आखो के द्वारा वे बहुत दूर की चीज देख सकते थे। लेकिन उन्होने देखने की कोशिश नही की, कानो द्वारा भी वे बहुत दूर की आवाज सुन सकते थे, कानो के पर्दो पर बहुत दूर की ध्वनि आ रही थी लेकिन फिर भी वे उनको सुन नही रहे थे। वे अन्त ध्यान मे तल्लीन हो कर देखने लगे कि वह विमल विज्ञान कौन सा है और उसके स्वरूप को मैं कैसे प्राप्त करू । यह भावना विमल नाथ भगवान के अन्त करण मे और ऐसे अन्य तीर्थ-करो मे भी जागृत हुई तब उन्होने विमल विज्ञान प्रकट किया और आँखे बन्द करके अन्त से सारे लोक को अपनी हथेली की रेखाओ से भी अधिक स्पष्ट देख लिया। उनको परमाणु की त्रिकाल पर्यायो का भी ज्ञान हुआ। ये परमाणु किस रूप मे चल रहे हैं, उनकी पर्याये क्या हैं, उनमे परिवर्तन कितने समय मे आ रहा है और किस तरह से उनका परिवर्तन होगा। परमाणु बहुत छोटा तत्त्व है जिसके दो हिस्से नही हो सके। ऐसे सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व को परमाणु कहते हैं। मनुष्य भौतिक दृष्टि से उसे नही देख सकता। उन परमाणुओ को भी आत्मा की अन्तर्ज्योति मे उन्होने देख लिया समग्र विश्व को। कोई तत्त्व उनसे छिपे हुए नही रहे इस दृष्टि से उनका नाम अरहनाथ बन गया, और अविनाशी के रूप मे स्थापित हुआ। उनमे विषय विकार आदि वैभाविक पर्याए नही रही। सदा के लिये उनका ज्ञान स्थायी विमल विज्ञानविलासी बन गया।

भौतिक वाद से ऊपर उठिए

आज के विज्ञान के पीछे विमलता नही है। वह मल युक्त है और जहाँ ज्ञान मल युक्त है वहा पर ऐसी विमलता नही आती। आप इस धार्मिक भवन मे एकत्रित हो रहे हैं। किसलिये हो रहे हैं? भौतिक विज्ञान के लिये नही हो रहे हैं, आप यहाँ माइक्रोस्कोप आदि यन्त्रो को लेकर नही बैठे है। यहा तो सोच रहे है कि आज के इस भौतिक विज्ञान के भी परे एक आत्मिक विज्ञान है जिसको विमल विज्ञान की सज्ञा दी जा सकती है। उसे प्राप्त करना है। उसके लिये यहा साधना करना है हम साधना मे बैठ कर विमल विज्ञान विलासी बनें तो अरहनाथ की तरह इस सृष्टि के सम्पूर्ण पदार्थो को देख सकते हैं। उनके अवलोकन के लिये हमे इधर-उधर

भटकना नही पडेगा। पहाड की चोटियो पर और हवाईजहाज मे उड कर अमेरिका और इ ग्लैन्ड भी नही जाना पडेगा। यहा बैठे बैठे ही विमल विज्ञान को प्राप्त किया जा सकेगा लेकिन अभी इस वर्तमान काल मे तो ऐसा विज्ञान प्राप्त नही कर सकते। अवधिज्ञान प्राप्त कर सकते है, उसका विच्छेद नही हुआ है। यदि यह ज्ञान भी प्राप्त कर ले तो रूपी पदार्थो को तो देख ही सकते है।

विमल विलासी बनना है, अरहनाथ के चरणो मे पहुँचना है और अन्त. की स्थिति से विमल विज्ञान जिसे कहा जा रहा है उसको ढूढ निकालना है इसलिये मैं आपके सामने जीवन के प्रश्न को रख रहा हूँ और उसको हल करने के लिये कुछ दिनो से व्याख्या कर रहा हूँ।

जीवन कहा है ? जीवन क्या है? आपके सामने निर्णायक स्थिति का वर्णन किया। जो निर्णायक है और समता मय है वही जीवन है, वह जीवन की परिभाषा के साथ जुडा हुआ है। निर्णायक शक्ति प्रत्येक प्राणी मे है। यह बात अलग है कि किसी मे कम और किसी मे अधिक। निर्णायक के साथ विशेषण जुडा हुआ है। 'सम्यक् निर्णायकम्'। सम्यक् का दूसरा अर्थ है मल रहित। स्फटिक की तरह स्वच्छ। सम्यक् यह निर्णायक शब्द का विशेषण है और वह सस्कारित जीवन की परिभाषा मे जुडा हुआ है अत. हमे सस्कारित जीवन को समझना है।

उसको स्पष्ट करने के लिये यह सम्यक् विशेषण लगाया गया है। जिसके साथ यह विशेषण लग जाता है वह मल दोष से रहित हो जाता है। सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक दृष्टि से जिस "ज्ञान' शब्द के साथ सम्यग् विशेषण लग जाता है वह ज्ञान सद्ज्ञान अथवा सम्यग् सुन्दर ज्ञान कहलाता है और जिसके साथ सम्यग् विशेषण नही उसे मिथ्या ज्ञान कहा जाता है। चाहे वह मति-श्रुत या अवधि ही क्यो न हो उक्त विशेषण के अभाव मे उसे अज्ञान किंवा मिथ्या ज्ञान ही कहा जाएगा।

विपरीत या मिथ्या का तात्पर्य यह नही है कि मनुष्य इस ज्ञान मे उलटा ही देखे। मनुष्य के पैर और हाथ जसे हैं वैसा नही देखे, सिर नीचे की ओर देखे और पैर ऊपर की ओर देखे। इस विभग मिथ्या अवधि ज्ञान का तात्पर्य यह है कि जो तत्त्व जिस रूप मे है उस तत्त्व को उस रूप मे न देख उसके कारण स्वरूप तथा सम्बन्ध आदि को विपरीत रूप से देखना। ाहरण के लिए आत्मा को ही ले, मिथ्या ज्ञानी आत्मा को एकान्तिक

भिन्न-भिन्न रूपो मे मानता है। आत्मा सर्व व्यापक है। सारे ससार मे एक ही आत्मा है। यह ज्ञान आत्म सम्बन्धी है। इस ज्ञान मे विभंग ज्ञान एकातिक दृष्टि को मुख्य लेकर चलता है। आत्मा सर्व व्यापक है। ये जो आत्मा के भिन्न-भिन्न रूप दीख रहे हैं। जो भिन्न-भिन्न शरीर देखे जा रहे हैं यह सब मिथ्या है ऐसा विभग ज्ञानी को ज्ञान हो सकता है। किन्तु इस पर हमे थोडा चिन्तन करना है कि यदि आत्मा सर्व व्यापक ही है तो एक व्यक्ति के काटा लगने पर सब को काटा लगने की वेदना का अनुभव होना चाहिये। जैसे इस शरीर के किसी भी अवयव मे कष्ट होता है, काटा लगता है तो सारे शरीर के अन्दर उसकी वेदना का अनुभव होता है और आत्मा को अनुभूति हो जाती है, उसका ज्ञान हो जाता है। इसका कारण है कि हमारे शरीर मे एक ही आत्मा है। इसी तरह से सारे ससार मे एक ही आत्मा है और वह सभी मनुष्यो मे है। तो एक मनुष्य को दुख होता है तो सब को दुख होना चाहिए। एक मनुष्य को फोडे की वेदना होती है तो सभी मनुष्यो को होना चाहिए। एक मनुष्य की मृत्यु हो तो सब की मृत्यु होनी चाहिए। एक मनुष्य मोक्ष मे जावे तो सब को मोक्ष मे जाना चाहिए। पर ऐसा हम नही देख रहे हैं। यह अज्ञान का चिन्तन है विमल विज्ञान का नही। विमल विज्ञान सम्यक् निर्णायक ज्ञान के साथ प्राप्त होता है। सम्यक् निर्णायकत्व की स्थिति पाने की भावना मनुष्य मे कितनी है? जब तक मनुष्य की आत्मा सम्यक् निर्णायक समता मय च यत तत् जीवनम् की परिभाषा को नही जान ले तो वह विमल ज्ञान की स्थिति तक नही पहुँच सकती। सम्यक् विशेषण को लेकर ही जीवन की परिभाषाओ को परिमार्जित करना है। सम्यक् एक ऐसा शब्द है, जो वस्तु के स्वरूप का परिष्कार करता है अर्थात् वस्तु के तथ्यात्मक रूप की उपस्थिति करता है। किसी मनुष्य के कपडे मे मैल है, उस मैल को दूर करने के लिए या उस मैल को धोने के लिए इन्सान पानी के किनारे पर पहुँच कर मैल काटने के साधन को लेकर उसको धोकर उज्ज्वल बना देता है, फिर वह कपडा विमल दिखता है, निर्मल दिखता है। मैल युक्त वस्त्र और मैल रहित वस्त्र मे रात दिन का अन्तर है। वैसे ही सम्यग् विज्ञान-सम्यक् निर्णायक शक्ति और सम्यग् निर्णायकत्व से रहित शक्ति मे भी रात दिन का अन्तर है।

जीवन का परिमार्जन करिये

जगल मे लकडी का एक टुकडा वृक्ष से गिर गया है और शुष्क लकडी के रूप मे वहा पडा हुआ है। उसका कुछ उपयोग नही हो रहा है,

ग्रौर दूसरी उसी जाति की लकडी का यह पाटा वना हुग्रा है, इस लकडी को ग्राप इस स्थिति मे देख रहे हैं और वह लकडी उस स्थिति मे पडी हुई है। दोनो की स्थिति मे कितना ग्रन्तर है, यह ग्रन्तर आप देख रहे है। एक कुछ काम मे ग्राने वाला नही है लेकिन उसका परिमार्जन हो जाये तो वह मनुष्य के काम मे ग्राने वाली वन जाय। इसी तरह से निर्णायक शक्ति का प्रसग है। एक निर्णायक शक्ति शुष्क काष्ठ के समान है। तात्पर्य यह है कि जो रात दिन सुख और ऐश्वर्य मे मशगूल रहे, भव्य भवनो के अन्दर रहे ग्रौर उसे ही सब कुछ समझने लगे कि इससे बढकर ग्रौर कोई सुख नही है, यह जीवन मे नही मिला तो जीवन क्या ? जव उसको मोक्ष की वात कहते हैं, परमात्मा की बात कहते है। वह यह जानना चाहता है कि मोक्ष मे कैसा खाना मिलता है, कैसे मकान है, रहने की स्थिति क्या है, क्या वहा पर सुनने को मिलता है, क्या देखने को मिलता है। भद्र पुरुप ये प्रश्न करते है कि वहा खाने को क्या मिलता है, देखने को क्या मिलता है ? ग्रौर क्या वहा पर रहने आदि के लिए भव्य भवन है। यदि ऐसा है, तव तो मोक्ष अच्छा है, यह नही है तो वह मोक्ष नही है। भद्रिक व्यक्ति इस प्रकार सोचते है तो मैं कल्पना करता हूँ कि इनको कैसे इनके जीवन का लक्ष्य समझाया जाये ? मोक्षकी परिभाषा वे इसमे मानते हैं कि इन पाच इन्द्रियो का उपयोग, उपभोग के लिए वहा कितने विषय उपलब्ध हैं, कितना उसका उपभोग कर सकते हैं। यह दृष्टिकोण जीवन का वन गया है। इससे ऊपर उठकर त्याग और तपस्या थोडी सी बढ गई तो मेरा सुख छीन जायगा, मेरी मृत्यु हो जायगी, मैं इन सुखो से वचित रह जाऊगा। किन्तु सम्यग् निर्णायक शक्ति का यह निर्णय नही है। सम्यक् निर्णायक से रहित शक्ति का यह निर्णय है। मनुष्य जीवन के सही स्वरूप को समझने के लिए सम्यक् निर्णायक स्थिति का अवलोकन करे, सम्यक् शब्द के महत्त्व का प्रतिपादन करके यह बतलाया गया है कि सम्यक् धरातल की स्थिति नही है तो व्यक्ति अन्धकार मे है। व्यक्ति अपने जीवन मे तपश्चर्या करके कृश काय हो जाये, ग्राराधना मे शरीर को सुखाने वाला तपस्वी ग्रपने सारे जीवन के ग्रन्दर यदि सम्यक् विशेषण से रहित है, तो उसके जीवन मे वह निर्णायक शक्ति नहीं है। उसकी इतनी कठोर साधना वाछित फल देने वाली नही होगी उसका ज्ञान ग्रज्ञान रूप माना जायगा ग्रौर यदि वह सम्यग् विशेषण से युक्त है तो उसकी साधना गुण युक्त होगी। उसका मति ज्ञान ग्रौर श्रुत ज्ञान विमल रूप मे होगा। यहा सम्यक् निर्णायक शब्द के साथ सम्बन्ध जोडने की दृष्टि से मैं बता रहा हूँ कि यदि सही संस्कारित जीवन को लेना चाहे तो

इसका ध्यान रखना होगा "सम्यग् निर्णायक समतामयं च यत् तत् जीवन" जीवन की इस कसौटी के पीछे इतना विशेषण लगाना चाहिए। सम्यक् निर्णायकम् समतामय यत्। सम्यक् निर्णायक स्थिति यह बनेगी कि मैं अपने आपके अन्दर विश्वास रखता हूँ, मैं अपने आप मे पूर्णरूप से स्वतन्त्र हू, मैं अपने आपको सब शक्तियो से सम्पन्न हूँ, मैं किसी के अधीन नही हूँ, मैं अपने जीवन का पूर्णरूप से स्वामी हूँ। इस प्रकार निर्णायक स्थिति आती है वह आध्यात्मिक क्षेत्र मे शास्त्रीय दृष्टि से सम्यग्दृष्टि चतुर्थगुण-स्थानवर्ति कहलाता है और भगवती सूत्र के अनुसार चारित्र के क्षेत्र मे आगे बढता है तो अधिक से अधिक ७-८ भवो मे अरहनाथ भगवान विमल-विज्ञान विलास का अनुभव करने लग जाता है। किन्तु आज हम उस निर्णायक स्थिति को ही नही समझ पा रहे है। भगवान ने हमारे सामने विमल विज्ञान के साथ किस मार्ग को रखा है, और हम कैसे भटक रहे है। यदि इस जीवन की स्थिति ठीक बने, जीवन मे निर्णायक स्थिति को ठीक रखे, तो इसमे सम्यक् विशेषण अपने आप सयुक्त हो जाता है, इसका प्रकाश भूतकाल, भविष्य और वर्तमान मे भी पडता है और उससे वर्तमान भी प्रकाश युक्त हो जाता है। प्रकाश युक्त भावना से ही सम्यक्, निर्णायक है। प्रकाश युक्त स्थिति को लाना है, तो साधना के क्षेत्र मे आगे बढना होगा, जीवन मे, जिससे वह तीनो ओर प्रकाश डाले। यह सब सम्यग् निर्णायक स्थिति के अभाव मे नही हो सकती है। वर्तमान जीवन से हमारा पुरुषार्थ ठीक होता है और इसके साथ सम्यक् निर्णायक शक्ति है तो हम भूतकाल के मलिन कपडे को भी अच्छी तरह से साफ कर सकते हैं। निर्णायक शक्ति ठीक है तो आत्मिक शक्ति से कपडे को भविष्य के लिए उज्ज्वल बना सकते हैं तो वर्तमान का कपडा तो अपने आप ही स्वच्छ निर्मल हो जायगा।

आत्म-शक्ति जगाइये

इस वर्तमान जीवन मे भी ससार के पदार्थो को देखने के लिये ही प्रयास नही करेंगे, यथासभव जितनी शक्ति सपादित होगी उतनी ही आध्यात्मिक साधना मे लगाने का प्रयास करेंगे तो जीवन को मोड कर निर्णायक शक्ति के साथ सम्बद्ध कर पायेंगे। पांचो इन्द्रियो के विषयो मे उदासीन रहेंगे। चाहे कितना ही मनोहारी विषय हो, मनोहारी विषय को देख कर तटस्थ भाव से चिन्तन करेंगे और आत्मिक शक्तियो पर आवरण डालने वाले विषय पर न ललचायेंगे तो जीवन मे सम्यक् निर्णायक का

अलौकिक रूप सामने आएगा। जम्बू कुमार का जीवन आप सुनते है जिसकी ८ रमणिया प्रथम रात्रि के समय विवाह कर के पलग के चारो ओर खडी है और उस पलग पर एक तरुण बैठा है। ये ८ तरुणिया भिन्न-भिन्न तर्कों के साथ, उस तरुण को समझाने का प्रयास कर रही है, वे श्रृगार रस से परिपूर्ण थी, पाचो इन्द्रियो को उल्लसित करने वाला श्रृगार उन्होने कर रखा था और ऐसे-ऐसे प्रसग उपस्थित कर रही थी जो जीवन को लुभाने वाले होते है। परन्तु उनका उस तरुण पर जरा भी असर नही हुआ। जैसे स्फटिक मणि के पास कोई वस्त्र रखा जाये, स्फटिक मणि पर भले ही उसकी परछाया पड जाये परन्तु मणि के अन्दर उसके रग का असर नही होता है वैसे ही जम्बू कुमार का जीवन मणि के समान निर्मल और पवित्र बन गया था वह सम्यक् निर्णयक शक्ति को लेकर चल रहा था। अत श्रृगारिक रसो के प्रदर्शन का उस पर कोई असर नही हुआ। आप यह सोचेगे कि यह बात कुछ अधिक पुरानी हो गई है। आप अपनी पैनी दृष्टि से इसका अवलोकन करेगे तो आज के युग मे भी कई व्यक्ति ऐसे मिल सकते हैं। जो भोग की साधना सामग्री के उपलब्ध होते हुए भी उसका परित्याग करते हैं। आप जिन सन्तो को अपने समक्ष देख रहे हैं ये वर्तमान के उदाहरण है ये भी प्राप्त या प्राप्त होने वाली सामग्री का परित्याग करके आए है। इसी संदर्भ मे मैं एक तरुण कमल सेन की बात कह रहा हूँ। उसकी स्थिति किस तरह से सामने आ रही है—

वनस्पति और हमारा जीवन

कमलसेन राजकुमार का यह प्रसंग आ रहा है। किंसुक बगीचे मे वृक्षो की झुरमूट, और वसन्त ऋतु जहा अपना सर्वस्व उडेलती हुई खिल-कर बगीचे की शोभा बढा रही थी, ऐसा बगीचा हर व्यक्ति के मन को लुभायमान करने वाला होता है। उस बगीचे मे झूने लगे हुए है जहा व्यक्ति पहुँच-पहुँच कर उस बगीचे की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे।

यह वर्णन कथा मे किस प्रकार आया है। अधिकाश शास्त्रो मे मनुष्य के जीवन का जहां सम्बन्ध है वहाँ बगीचो की शोभा का वर्णन आता है। प्राय. सभी शास्त्रो मे यह वर्णन मिलता है। कथाओ मे तो है ही। उत्तराध्ययन सूत्र मे जहाँ अनाथी मुनि का वर्णन आया है वहाँ बगीचे का भी वर्णन आया है। जहाँ वैराग्य भावना का दिग्दर्शन कराया गया है वहाँ

वगीचो के सुन्दर और मनोहारी दृश्यो का भी वर्णन किया गया है। वनस्पति के साथ मनुष्य का जितना सम्बन्ध है शायद दूसरे तत्त्वो के साथ उतना नही हैं। मनुष्य के जीवन के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध और उपकार इसका रहा हुआ है। वगीचे का सम्बन्ध शास्त्र मे और कथा भाग मे आया है इसलिये इसका वर्णन किया गया है। मनुष्य का जीवन ओक्सिजन पर आधारित है यदि मनुष्य को ओक्सिजन न मिले तो मनुष्य जिन्दा नही रह सकता। इन वनस्पतियो से, वृक्षो से मनुष्य को ओक्सिजन मिलता है। यदि ओक्सिजन न मिले और कार्बनडाइ आक्साइड् हवा अधिक मिले तो मनुष्य खत्म हो जाय। अन्न और जल के विना तो मनुष्य कुछ दिनो तक जिन्दा रह सकता है लेकिन ओक्सिजन के विना वह अधिक समय नही निकाल सकता। इसको जरा वैज्ञानिक दृष्टि से सोचिये। इसका वैज्ञानिको ने किस प्रकार अन्वेषण किया इसे जरा समझने का प्रयास करे। किसी को फांसी के तख्ते पर मृत्यु दंड मिल रहा था। कुछ वैज्ञानिको ने प्रार्थना की कि यदि यह व्यक्ति हमको मिल जाय तो यह जिन्दा नही रहेगा लेकिन हम एक मानव विज्ञान का अन्वेषण पेश करेंगे और इसको खत्म भी कर देंगे। हमे विज्ञान की खोज उपस्थित कराना है। वैज्ञानिको को उस व्यक्ति को सौंप दिया गया। वे उस व्यक्ति को एक भव्य कमरे मे ले गये। उसको बडे आराम से वहाँ पर विठाया और कहा कि भाई, इष्ट देव का स्मरण करना हो तो करलो। हम फांसी का फन्दा नही डालेंगे। न ही छुरे और तलवार से मारेंगे। वह व्यक्ति कुछ आश्वस्त वहाँ उस भव्य कमरे मे बैठ जाता है। वे लोग उस कमरे से बाहर निकल जाते है। उसमे इस प्रकार के यन्त्र लगे हुए थे कि जिनके जरिये मे सारी ओक्सीजन हवा को बाहर खीच लेते है। वहाँ ओक्सीजन हवा नही रही तो वह व्यक्ति जल्दी ही तडफ कर मृत्यु के मुँह मे चला जाता है। देखिये, यह वैज्ञानिक प्रयोग है। वह व्यक्ति क्यो मरा? फांसी और दूसरे शस्त्रो से नही मरा। किन्तु ओक्सिजन हवा नही मिली इसलिये मर गया। इस सृष्टि मे ओक्सिजन हवा नही रहे तो प्राणी सुरक्षित नही रह सकते और सुरक्षित नही रहे तो ज्ञान दर्शन और चारित्र का आराधन कैसे कर सकते हैं। प्रकृति ने सारे साधन जुटा रखे हैं किन्तु मनुष्य इतना दिवाना वन जाता है कि वह अपने प्राणस्वरूप वनस्पति का संहार करने के लिये उपस्थित हो जाता है। सरकार की ओर से वडे-वडे जंगल नष्ट करने दिये जा रहे है। जनता और सरकार की ओर से वनस्पति का संहार हो रहा है। इसके पीछे देखा जाय तो पन्द्रह कर्मादान मे से एक कर्मादान का महा आरम्भ लगता है। 'वन कम्मे" वन को

काटना। यह कर्मादान महापाप की श्रेणी में माना गया है। दिखता छोटा है। जगल कट गये, ओक्सिजन हवा दूर-दूर तक समाप्त हो जाती है और उसके कारण मनुष्यो मे रोगो की उत्पत्ति होकर सहार का अवसर उपलब्ध हो जाता है। इस वन कम्मे का भगवान् ने तीन करण तीन योग से त्याग वतलाया है। इसका मानव जीवन के साथ गहरा सम्वन्ध है क्योकि यदि सारे वन कट गये तो मानव का इस धरातल पर जीवन सुरक्षित नही रह सकता। इसलिये इसको पन्द्रह कर्मादान मे लिया गया है और वनस्पति के सहार को इस दृष्टि से महापाप बताया है।

मैं आपके सामने बता रहा हूँ कि प्राचीन काल मे राजा महाराजाओ के ये बगीचे होते थे जिनका वर्णन शास्त्रो मे किया गया है। ये मनुष्य के जीवन के साथ जुडे हुए है तो उस बगीचे मे भो झूने लगे हुए थे जो उसकी शोभा बढा रहे थे। कमल सेन के मित्र भी कहने लगे, 'प्रिय मित्र, बसन्त के दिन हैं। एक शान्त भवन मे कैसे बैठे हो। बगीचे मे चल कर मनोहर दृश्यो का आनन्द लो और जीवन को विकसित करो। साथी लोग प्रायः ससार के विषयो मे रमण करने वाले थे इसलिये उन सब लोगो ने उसी ढग से प्रलोभन दिये लेकिन कमलसेन अपने निज गुणो का कामी था। उसने जीवन का सम्यक् निर्णय कर लिया था इसलिये वह सोचता है कि दुनिया की बसत ऋतु आती रहती है, मुझे तो जीवन की वसत ऋतु को प्राप्त करना है। वह आयेगी तभी मैं अलौकिक आनन्द को प्राप्त कर पाऊंगा और जीवन का निर्माण कर पाऊगा। इस रूप मे वह सोच रहा है लेकिन साथी लोग उसको छोडने वाले नही थे। मनुष्य जिन आदमियो के साथ रहता है उनका असर उस पर कभी किसी न किसी रूप मे पडे विना नही रहता है। जो बलवान आत्माये है उनके स्वच्छ जीवन पर उसका कोई असर नही होता है। कमलसेन के साथी पाच इन्द्रियो के विषयो पर जोर दे रहे थे और बगीचे मे अनेक साधन रखे हुए थे। साथी आग्रह करने लगे। वह साथियो के आग्रह को नही टाल सका। अपने साथियो के साथ-साथ वह भी उस बाग मे पहुंचा जिसके अन्दर काम का प्रदर्शन फैला हुआ था। सब तरह की भोग्य सामग्री वहा पर उपलब्ध थी। अगर सहसा कोई निर्विकारी व्यक्ति भी वहाँ पहुच जाये तो उसमे भी काम विकार उत्पन्न हो जाये, वह भी उन भावो मे बह सकता है, ऐसा रमणीय दृश्य वहाँ पर था। वहा यह कमलसेन राजकुमार पहुचा लेकिन वह इन सब दृश्यो को तटस्थ भाव से देखता रहा। यह पुद्गलो का स्वभाव है।

कभी अच्छा वनता है, कभी बुरा वनता है, कभी अधिक वढ जाता है,

कभी घट जाता है। वह इनकी स्थिति को देख कर भी अपने कार्य मे व्यस्त होजाता है। वहां पर एक चबूतरा देख कर उस पर बैठ जाता है और इन सबको देख कर जीवन के लिये प्रेरणा लेता है। वह क्या प्रेरणा लेता है और किस तरह का चिन्तन उस समय पर करता है। इसका विवेचन समय पर ही हो सकेगा। अब मैं इतना ही सकेत देना चाहता हूँ, कि आप भी उस कमलसेन की तरह जीवन की परिभाषा को समझने का प्रयास करे। यही लक्ष्य अपने अन्तरमन मे रखें। सम्यक् विशेषण को लगा कर आगे की परिभाषा का अर्थ समझने की कोशिश करें तो आपका जीवन वसन्त ऋतु के समान फैलेगा और शान्ति मे रमण करने लगेगा। फिर अरहनाथ भगवान की तरह विमल विज्ञान विलास बनने मे देरी नही हो सकेगी। ऐसे स्वरूप मे रमण करने के लिये हम सब को तैयारी करनी चाहिये। इतना ही कह कर समाप्त करता हूँ।

३-८-७२
लाल भवन



समाजवाद का शुद्ध रूप

प्रार्थना

(४) मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी,
कुम्भ पिता परभावती
मइया तिनकी कुमारी ।। मल्लि जिव० ।।
मा नी कूख कन्दरा,
माहि उपना अवतारी ।
मालती कुसुम मालानी वाछा,
जननी उर धारी ।। मल्लि जिन० ।। १ ।।

बन्धुओ,

आज मल्लिनाथ भगवान् की प्रार्थना का प्रसंग है। विनयचन्द चौबीसी की प्रार्थनाए, एक एक करके कुछ समय से आ रही है। प्रार्थना के अन्दर प्रभु के नाम का परिवर्तन है, और साथ ही साथ प्रार्थना की कडियो का भी। लेकिन आज का नाम कुछ आश्चर्यजनक है। जहा इतने समय तक तीर्थकर पद के अधिकारी (अवतारी) पुरुष रूप मे उपस्थित हुए वहा आज तीर्थकर पद के रूप मे एक महिला का प्रसग आ रहा है। अब तक जितने भी तीर्थकर महापुरुषो के नाम आपके सामने आये हैं। वे सब पुरुष के रूप मे ही आये है, किन्तु आज जिनका प्रसग आपके समक्ष रखा जा रहा है। वे महापुरुष शारीरिक दृष्टि से स्त्री लिङ्गी माने गये है। जैन दर्शन एक मौलिक दर्शन है। आत्मा का दर्शन है। आत्मिक दृष्टि से तीर्थकर पद प्राप्त करने का सभी को समान अधिकार है। जाति और लिग की बाधकता को जैन धर्म स्वीकार नही करता। आत्मीय समानता मे आप यहा वास्तविक समता का दर्शन कर सकते है।

जब कि मानव का मस्तिष्क कुछ शताब्दियो पूर्व महिलाओ को बहुत कर तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखता था। किन्तु जैसे जैसे

युग वीते, समय का परिवर्तन हुआ, वैसे वैसे विचारो का भी परिमार्जन होने लगा, तब ऐसा भी युग आया कि नारी जाति के प्रति सम्मान की भावना बढी और उसका सामाजिक रूप निखरने लगा। लेकिन आज जो कुछ भी देखने को मिल रहा है, वह गत प्राचीनकाल की स्थिति से बहुत ही स्वल्प है। बहनो के प्रति समभाव और समानता की स्थिति समता के धरातल पर अब भी पूर्णरूप से नही बन पाई है। आज जो कुछ भी वातावरण दृष्टिगत हो रहा है वह सिर्फ आर्थिक, वैतनिक और कला की समानता के रूप मे परिलक्षित हो रहा है। अर्थात् उक्त समस्याओ मे महिलाओ को पुरुषो के सदृश अधिकार दिये जाएं।

किन्तु जहा तीर्थंकर का प्रसग है, उन्होने जिस समता का उपदेश दिया, वह उपदेश केवल उपदेश तक ही सीमित नही था, पर वह उपदेश जीवन की प्रत्येक क्रिया मे व्यक्त था। सभी तीर्थंकरो की उद्घोषणा रही है कि यह मानव जीवन सब के लिये समान है। मानव शब्द से केवल पुरुष वर्ग को ही नही लिया जाय, किन्तु मानव शब्द के अन्तर्गत महिलाओ का भी समावेश है। सम्भवतया इसी आदर्श को प्रस्तुत करने के लिये प्रभु मल्लिनाथ का तीर्थंकर रूप मे अवतरण हुआ हो।

तीर्थंकर मल्लि नाथ ने भी पुरुष तीर्थंकरो की तरह भगवती मल्लि कुमारी का समता का चरम रूप अपने जीवन मे अभिव्यक्त किया और उस समता जीवन के सहारे साधु साध्वी, श्रावक और श्राविकाओ के रूप मे चार तीर्थो की स्थापना करके एक उत्तम मार्ग प्रस्तुत किया। यही कारण है कि आज हम प्रभु आदि नाथ और भगवान महावीर की तरह उस महिमा रत्न मल्लि नाथ नाम अत्यन्त आदर के साथ लेते हैं।

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी

बन्धुओ,

इस समय कडी का उच्चारण मुझे शांति व्यवस्था की दृष्टि से करना पड रहा है। स्वय सेवक लोग अपनी स्थिति से व्यवस्था करने की सोचते हैं। व्यवस्था का उत्तरदायित्व श्रोताओ पर नही है लेकिन फिर भी श्रोताओ के मन इस व्यवस्था की ओर आकर्षित हो जाते हैं और वे देखते हैं कि कैसे क्या हो रहा है। बन्धुओ, यह तो बाहर की व्यवस्था है, हमे अपने आन्तरिक जीवन की व्यवस्था को देखना है। यदि उस ओर हमारा ध्यान चला जाय तो हम कुछ वास्तविक रूप मे प्राप्ति कर सकेंगे।

सम्भव है कि कुछ बन्दरो का उत्पात हो रहा है। आपका ध्यान उधर ही चला गया है। वैसे ये कोई अपरिचित तो नही है। वे अपने जीवन के महत्व को कुछ भी नही समझते है। सिर्फ उन्होने जीवन का ध्येय, तोड फोड करना, इधर उधर कूदना फादना या वस्तुओ को लेजाकर विखेर देना ही समझ लिया है। यह उनके जीवन की दिनचर्या है। कदाचित् आपका ध्यान उधर केन्द्रित हो तो साथ ही आप चिन्तन करिये कि उनके जीवन की दिनचर्या के तुल्य ही आज के मानव की दिनचर्या तो नही है। आज के मानव अपने जीवन के महत्त्व को समझते हैं या बन्दरो की भाति ही इधर उधर लोगो को आपस मे लडा भिडा कर, कटुता फैलाकर कर, जीवन मे व्यवस्था पैदा करते हैं। यदि यह स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से किसी के जीवन मे व्याप्त हो तो समझना चाहिये कि अभी हमारे जीवन मे सुसस्कारो का कुछ भी प्रवेश नही हो पाया है।

समता के नाम पर विषमता

जो वीतराग वाणी अबाध रूप से लगभग ढाई हजार वर्ष से कर्णगोचर हो रही है और कुछ दिनो से आपके सामने भी उसकी व्याख्या आ रही है जिसमे प्रभु ने वार वार कहा है :—

असखय जीविय मा पमायए

प्रभु ने कहा है कि यह जीवन चिर काल से असंस्कारित दशा मे चल रहा है, इसे सस्कारित बनाने मे प्रमाद मत करो। इसी उद्घोषणा के अनुसार, उस सस्कारित जीवन को कुछ दिनो से आपके सामने रख रहा हूँ और उसको सरल बनाने की दृष्टि से कभी कभी दूसरे दूसरे रूपो मे भी आपका ध्यान ले जा रहा हूँ। पर उन सबके पीछे ध्येय यही है कि आप उस सुसस्कारित जीवन की परिपूर्ण परिभाषा को अपने मन मस्तिष्क मे लावे, अपने अपने वर्तमान जीवन मे उस समता के धरातल पर पहुँच कर, जीवन के वास्तविक आनन्द को ले सके, और उस आनन्द के झूले मे बैठकर सदा के लिये शाश्वत शान्ति का अनुभव कर सके।

जिस परिभाषा की व्याख्या आपके सामने चल रही है। उसे वैसे तो मैं कई वार उच्चारण आपके सामने कर गया हूँ। पर आज पुन: उच्चारण कर देता हूँ —

सम्यग् निर्णायक समतामय च यत् तज्जीवनम्

सम्यग् निर्णायक तत्त्व की वात कुछ शब्दो मे मैं पहिले रख गया हूँ, पर वह जीवन की सम्पूर्ण परिभाषा नही वनी है। इसलिये आगे के विशेषण पर आ रहा हूँ कि 'समतामय च यत्', अर्थात् जो समतामय है वह जीवन है, यह दूसरा विशेषण है। यह समतामय शब्द जो आपके सामने आ रहा है। लोग इस समता शब्द का अर्थ, भिन्न भिन्न रूपो मे लेते हैं। अधिकाशत समता से मनुष्य का दृष्टिकोण समान वय की तरफ चला जाता है। अथवा समता से वह समझने लगता है कि आजकल जो समाजवाद या साम्यवाद ससार के सामने चमक रहा है, जिस समाजवाद की बातें हो रही है और जिसमे यह आवाज बुलन्द हो रही है कि सवको समान अधिकार दिये जावे। गरीव और अमीर का भेद न रहे, मन्दबुद्धि और विद्वान् का भेद न रहे। सवके सव एक रूप हो आदि वह समता है। किन्तु समता की यह वास्तविक परिभाषा नही है आज का नारे के रूप मे प्रचलित समाजवाद "समतामय" जीवन से कुछ भिन्न है मै तो यहा तक कहने को तत्पर हूँ कि साम्यवाद नही विषमतावाद है अर्थात् विषमता उत्पन्न करने वाला है। डडे के वल पर समानता नही लाई जा सकती, प्रतिव्यक्ति को समानता के नाम पर समबुद्धि वाला नही बनाया जा सकता।

आज के इस वायुमण्डल पर आप भी थोडा सा चिन्तन करे। वहती हुई हवा मे नही वहे स्वय न वहे। आप केवल ध्वजा न वनें। ध्वजा के स्तम्भ वने। ध्वजा जिस स्तम्भ पर लगाई जाती है, वह ध्वजा जिधर की वायु होती है उधर ही उडती है। लेकिन स्तम्भ क्या उस ओर मुडता है? स्तम्भ अपने स्वरूप मे स्थिर रहता है। ध्वजा तो चारो दिशाओं मे हवा के रूप के साथ घूम जाती है लेकिन स्तम्भ किसी दिशा मे नही घूमता। जिस दिशा मे है उसी मे स्थिर रहता है। वैसे ही आज के इस वैचारिक युग मे प्राय मानव का मस्तिष्क ध्वजा के तुल्य वना हुआ है। एक विचार प्रवाह यदि पश्चिम से आया तो उसकी तरफ उनके विचारो का मोड हो गया और यदि पूर्व से आया हो तो पूर्व की ओर झुक गये। दक्षिण से आया तो दक्षिण की ओर और उत्तर से आया तो उसके प्रवाह में वह गया। मै पूछता हूँ कि उस ध्वजा की कीमत है या स्तूप की। यदि स्तम्भ नही है और केवल ध्वजा है तो उस ध्वजा का कहीं भी कोई महत्त्व नही है। फिर तो वह हवा मे उडती हुई इधर से उधर रेत के

सम्भव है कि कुछ बन्दरो का उत्पात हो रहा है। आपका ध्यान उधर ही चला गया है। वैसे ये कोई अपरिचित तो नही है। वे अपने जीवन के महत्व को कुछ भी नही समझते है। सिर्फ उन्होने जीवन का ध्येय, तोड फोड करना, इधर उधर कूदना फांदना या वस्तुओ को लेजाकर बिखेर देना ही समझ लिया है। यह उनके जीवन की दिनचर्या है। कदाचित् आपका ध्यान उधर केन्द्रित हो तो साथ ही आप चिन्तन करिये कि उनके जीवन की दिनचर्या के तुल्य ही आज के मानव की दिनचर्या तो नही है। आज के मानव अपने जीवन के महत्त्व को समझते है या बन्दरो की भाति ही इधर उधर लोगो को आपस मे लडा भिडा कर, कटुता फैलाकर कर, जीवन मे व्यवस्था पैदा करते हैं। यदि यह स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से किसी के जीवन मे व्याप्त हो तो समझना चाहिये कि अभी हमारे जीवन मे सुसस्कारो का कुछ भी प्रवेश नही हो पाया है।

समता के नाम पर विषमता

जो वीतराग वाणी अबाध रूप से लगभग ढाई हजार वर्ष से कर्णगोचर हो रही है और कुछ दिनो से आपके सामने भी उसकी व्याख्या आ रही है जिसमे प्रभु ने बार बार कहा है :—

असखय जीविय मा पमायए

प्रभु ने कहा है कि यह जीवन चिर काल से असंस्कारित दशा मे चल रहा है, इसे सस्कारित बनाने मे प्रमाद मत करो। इसी उद्घोषणा के अनुसार, उस संस्कारित जीवन को कुछ दिनो से आपके सामने रख रहा हूँ और उसको सरल बनाने की दृष्टि से कभी कभी दूसरे दूसरे रूपो मे भी आपका ध्यान ले जा रहा हूँ। पर उन सबके पीछे ध्येय यही है कि आप उस सुसस्कारित जीवन की परिपूर्ण परिभाषा को अपने मन मस्तिष्क मे लावें, अपने अपने वर्तमान जीवन मे उस समता के धरातल पर पहुँच कर, जीवन के वास्तविक आनन्द को ले सके, और उस आनन्द के झूले मे वैठकर सदा के लिये शाश्वत शान्ति का अनुभव कर सके।

जिस परिभापा की व्याख्या आपके सामने चल रही है। उसे वैसे तो मैं कई वार उच्चारण आपके सामने कर गया हूँ। पर आज न· उच्चारण कर देता हूँ —

सम्यग् निर्णायकं समतामयं च यत् तज्जीवनम्

सम्यग् निर्णायक तत्त्व की बात कुछ शब्दो मे मैं पहिले रख गया हूँ, पर वह जीवन की सम्पूर्ण परिभाषा नही बनी है। इसलिये आगे के विशेषण पर आ रहा हूँ कि 'समतामय च यत्', अर्थात् जो समतामय है वह जीवन है, यह दूसरा विशेषण है। यह समतामय शब्द जो आपके सामने आ रहा है। लोग इस समता शब्द का अर्थ, भिन्न भिन्न रूपो मे लेते हैं। अधिकाशत: समता से मनुष्य का दृष्टिकोण समान वय की तरफ चला जाता है। अथवा समता से वह समझने लगता है कि आजकल जो समाजवाद या साम्यवाद ससार के सामने चमक रहा है, जिस समाजवाद की बातें हो रही हैं और जिसमे यह आवाज बुलन्द हो रही है कि सबको समान अधिकार दिये जावे। गरीब और अमीर का भेद न रहे, मन्दबुद्धि और विद्वान् का भेद न रहे। सबके सब एक रूप हो आदि वह समता है। किन्तु समता की यह वास्तविक परिभाषा नही है आज का नारे के रूप मे प्रचलित समाजवाद "समतामय" जीवन से कुछ भिन्न है मै तो यहा तक करने को तत्पर हूँ कि साम्यवाद नही विषमतावाद है अर्थात् विषमता उत्पन्न करने वाला है। डडे के बल पर समानता नही लाई जा सकती, प्रतिव्यक्ति को समानता के नाम पर समबुद्धि वाला नही बनाया जा सकता।

आज के इस वायुमण्डल पर आप भी थोडा सा चिन्तन करें। बहती हुई हवा मे नही बहे स्वय न बहे। आप केवल ध्वजा न बनें। ध्वजा के स्तम्भ बने। ध्वजा जिस स्तम्भ पर लगाई जाती है, वह ध्वजा जिधर की वायु होती है उधर ही उडती है। लेकिन स्तम्भ क्या उस ओर मुडता है? स्तम्भ अपने स्वरूप मे स्थिर रहता है। ध्वजा तो चारो दिशाओ मे हवा के रुप के साथ घूम जाती है लेकिन स्तम्भ किसी दिशा मे नही घूमता। जिस दिशा मे है उसी मे स्थिर रहता है। वैसे ही आज के इस वैज्ञानिक युग मे प्राय मानव का मस्तिष्क ध्वजा के तुल्य बना हुआ है। एक विचार प्रवाह यदि पश्चिम से आया तो उसकी तरफ उनके विचारो का मोड हो गया और यदि पूर्व से आया हो तो पूर्व की ओर झुक गये। दक्षिण से आया तो दक्षिण की ओर और उत्तर से आया तो उसके प्रवाह मे बह गया। मै पूछता हूँ कि उस ध्वजा की कीमत है या स्तूप की। यदि स्तम्भ नही है और केवल ध्वजा है, तो उस ध्वजा का कही भी कोई महत्त्व नही है। फिर तो वह हवा मे उडती हुई इधर से उधर रेत के

कणो की तरह अपने आपको कही भी नही टिका पायेगी। इसी प्रकार मानव यदि विचारो मे ध्वजा की तरह बहता रहा और किसी स्थाई स्तूप का लक्ष्य रूप मे सहारा नही लिया तो वह समता के तथ्यात्मक रूप को नही देख पायेगा। यही स्थिति आज के समाजवाद के वायु मण्डल की हो रही है। मै उस वातारण का विरोधी नही हूँ, पर वस्तुस्थिति का सशोधन करना चाह रहा हूँ। आज का दृष्टिकोण कुछ एकागीण बनता जा रहा है। मैं यह चाहता हूँ कि समाजवाद के साथ समता का वास्तविक पुट भी हो, पर यह कैसे शक्य हो सकता है। इसे थोड़ा स्पष्ट कर दूँ।

यद्यपि वैज्ञानिक दौड इस ओर लग रही हैं लेकिन इस दौड में इस विषय पर परिपूर्ण सरलता प्राप्त हो सकेगी ऐसा शक्य प्रतीत नही होता है। जहाँ वैज्ञानिक क्षेत्र मे भी यह परिवर्तन नही लाया जा सकता कि सब की आकृति एक साँचे के समान हो तो भला समाजवाद के नाम से मनुष्य के शरीर की समानता कैसे लाई जा सकेगी ?

विचारों का संशोधन करिए

एक ही माता की कुक्षि से जन्म लेने वाली सन्तान की दशा को देखिये। उस माता की कुक्षि से जन्म लेने वाले पाच भाई लेकिन पाचो मे भी समानता नही है तो फिर सम्पूर्ण मानव जाति के शरीर की समानता कैसे लाई जायेगी ? यदि यह सोचा जाये कि हम आर्थिक समानता ले आयेंगे और अर्थ की दृष्टि से हम सब को एक सरीखा बना देगे, सब के पास मे सब तरह के साधन, सब तरह की सामग्री, और सब समान सम्पत्ति रहेगी किन्तु यह कल्पना मन को जितनी सुखद लगती है, क्या वस्तुत. वैसा करना शक्य है ? आप दूर न जाइये, आप एक परिवार का नक्शा ले लीजिए उस परिवार मे चार भाई हैं, चारो भाइयो मे पिताजी ने बिल्कुल समान रूप से अर्थ का विभाजन कर दिया, और समान साधन सब उनके लिए जुटा दिये। अब चारो भाई समान रूप से रहेगे या उनमे असमानता आ जायेगी ? आपका अनुभव क्या बतलाता है ? आप यदि उस अनुभव के सहारे सोचेगे तो यह पायेगे कि चारो को अर्थ और साधन सामग्री बराबर रूप मे सौंपी गई है, फिर भी एक भाई तो आज ही कष्टो का अनुभव कर रहा है, एक भाई ने उस सामग्री को और अधिक बढा लिया। एक दुखी और दूसरा सुखी के रूप मे, एक धनवान और दूसरा निर्धन के मे, एक विद्वान और दूसरा मूर्ख के रूप मे बन गया है। वे चारो भाई एक

परिवार में ही विभिन्न रूपो मे दृष्टिगत होने लगेगे जो साम्यवादी देश रूस और चीन हैं उनमे भी आप देख पायेंगे और कभी उनकी स्थिति को आपने सुना हो तो वहाँ पर भी सब के सब आर्थिक दृष्टि से एक रूप मे नही हैं। आप उनके कर्मचारियो के अन्दर देखिये-एक कर्मचारी अधिक वेतन पा रहा है और एक कम, एक हुकूमत कर रहा और एक हुकूमत नही कर रहा है। यह क्यो ? जब कि आर्थिक दृष्टि से और सब साधनो से वे सम्पन्न हैं, तो सब के सब समान क्यो नही ? मैं इस विषय मे स्वतन्त्र रूप से नही कह रहा हूँ, सिर्फ आपको उस वीतराग वाणी का रूप जो कि वर्तमान मे मनुष्यो के मस्तिष्क मे जिस रूप मे है उस विषय मे सशोधन दे रहा हूँ। आप उस ध्वज के कपडे की तरह उडे नही लेकिन उस उडती हुई स्थिति मे स्तम्भ की तरह रहे। यदि आप इस विषय मे विचार करेंगे तो पता लगेगा कि यह समाजवाद का वास्तविक रूप नही है। यदि कोई यह कहे कि हम विचारो की दृष्टि से मनुष्यो के अन्दर समानता ले आयें तो यह भी शक्य नही है ? विचारो की दृष्टि से इन्सान मे समानता नही बनेगी। एक ही स्कूल के अन्दर पढने वाले छात्र, उनको एक सरीखी शिक्षा दी जा रही है लेकिन परीक्षा मे क्या सब के सब तुल्य नम्बरो से पास होते है ? ऐसा नही है। वहाँ पर भी विचारो की भिन्नता रहेगी, उनके विचारो मे तारतम्यता नही रहेगी और जब तक मनुष्य छद्मस्थ है, अपूर्ण है, तब तक उसमे विषमता रहेगी। आप विचारो की दृष्टि से किसी भी क्षेत्र मे समानता नही ला सकते।

पहिले समता को समझिये

आप मानसिक दृष्टि से समानता की बात सोचेगे तो वह भी इस स्थिति मे शक्य नही हो सकती है। मन की स्थिति बडी विचित्र है। आप चाहे सामाजिक क्षेत्र मे चिन्तन करे, चाहे राष्ट्रीय क्षेत्र पर सोचे, और चाहे विश्व के रगमच से सोचें। ये सब बाते समानता के रूप मे आने की स्थिति मे नही हैं। हां, इनमे समता लाई जा सकती है। यदि समाजवाद का दृष्टिकोण समता के रूप मे परिणत हो जाता है तो वह समता शरीर की असमानता रहने पर भी लाई जा सकती हैं। एक सरीखे शरीर नही हैं लेकिन समता एक सरीखी बन सकती है। आप उसी परिवार को लीजिए कि पिता के जितने पुत्र हैं उन पुत्रो के ऊपर पिता की समता दृष्टि रह सकती है, एक बडा है एक छोटा है, एक गरीब है, एक धनवान है, एक विद्वान है, एक मूर्ख है लेकिन पिता उन पर समता रख सकता है, और

समता आने पर समानता आयेगी, समता तो शक्य हो सकती है। लेकिन समानता शक्य नही है। इस दृष्टिकोण से मानव के मस्तिष्क मे यह संशोधन आये कि हमको उस समता के पीछे जाना है, समानता के पीछे नही। यदि समता का जीवन अपना लिया तो चाहे वह किसी भी परिस्थिति मे क्यो न हो आनन्द का अनुभव करेगा। जीवन मे यदि समता है, अथवा दूसरे शब्दो मे अगर सन्तोष है—और इसी परिभाषा को विस्तार से ले तो यदि हमारा समभाव का सिद्धान्त है, हम अपने आत्मिक शक्ति के तुल्य प्रति प्राणी को देखने की भावना रखते हैं और सुख दु.ख मे समता का बर्ताव करते हैं तो हम समता सिद्धान्तवादी हैं। यह सोचे कि यदि पडोस के अन्दर कोई दु खी है, पडौसी कराह रहा है तो वह दु ख और कराहट उसकी नही है, मेरी है, मैं उसका दुःख देख नही सकता, मैं उसको सुखी वनाने के लिए प्रयत्न करू, उसका दु ख मेरा दु.ख है, जब इस प्रकार का चिन्तन होगा उस दिन उसके मस्तिष्क मे समता भाव की मगल बेला का उदय होगा। पर जब तक वह इस बात पर ध्यान नही देता है और सोचता है कि पडोस मे चाहे कोई कुछ चिल्लाये मुझे इसकी परवाह नही है मुझे तो अपने परिवार के सदस्यो की सुरक्षा करनी है। मेरे परिवार के सदस्य प्रसन्न हैं तो मैं भी प्रसन्न हूँ यदि पडोसी दुखी है तो मैं दु.ख क्यो मनाऊं। यदि इस प्रकार की भावना है तो वह चाहे कितना समाजवाद का नारा लगाये कहना चाहिए कि वास्तव मे यह समाजवाद नही है क्योकि उसके अन्दर समता का अभाव है। अगर एक पिता के मन मे एक पुत्र के प्रति राग है और एक के प्रति द्वेष है तो वह समता जीवन का द्योतक नही है। आज का मानव जीवन जिस विषमता के धरातल पर चल रहा है उसमे समता का प्रादुर्भाव होना जरूरी है। इसलिए समता का स्वरूप इस जीवन मे लाने के लिए जीवन की परिभाषा को समग्र रूप से समझने का प्रयास करे। और समता की भावना जैसी अपने जीवन के लिए है वैसी ही दूसरो के जीवन के लिए रहे। मै सब की आंखो मे प्रफुल्लता देखना चाहूँ, मै किसी की आख मे आँसू नही देखना चाहूँ—इस प्रकार की समता का भाव इन्सान के जीवन मे लाने के लिए आप समता शब्द की व्याख्या को थोडा गहराई से समझने का प्रयास करें। समता और समानता मे वहुत बडा अन्तर है। समानता के धरातल पर जो कुछ वायुमण्डल वनाया जायेगा, वह स्थाई रूप से कामयाव नही होगा लेकिन क्षमता के धरातल पर थोडा भी कार्य प्रारम्भ किया जायेगा तो वह अपने परिवार मे समता का फैलाव करता हुआ राष्ट्र और विश्व तक व्यापक हो सकता है। आप जिन वातो

को लेकर चल रहे हैं, जिन परिस्थितियों में चल रहे हैं उन परिस्थितियों में अनेक उतार चढ़ाव आ रहे हैं। एक नारा बुलन्द हो रहा है कि इन व्यापारियों ने यह कर दिया, वह कर दिया। ठीक है व्यापारियों ने कुछ किया हो लेकिन आज दूसरे-वर्ग के व्यापारी भी किस धरातल पर आ रहे हैं। चाहे वे व्यापारी नही हो, चाहे तनख्वाह पाते हो, चाहे किसी रूप मे रहते हो लेकिन वे भी दूसरे दर्जे के व्यापारी ही है। वे प्रचलित व्यापार नही करते है लेकिन उनका व्यापार का तरीका दूसरा है। वे आज इस ससार मे समता के आधार पर चल रहे है या विषमता के आधार पर? क्या उनके मन मे लूटपाट नही मची हुई है? क्या वे समाज विरोधी नही है? अगर ये प्रवृत्तियाँ उनके मस्तिष्क मे बनी हुई हैं और वे दूसरो को लूटने की स्थिति मे हैं तो यहाँ पर यही कहना होगा कि उनके मन मे नाम तो समाजवाद का है लेकिन अन्तर मे विषमता है, समता नही है। बन्धुओ, बातें थोडी गहरी बन जाती हैं और मेरी आदत भी गहराई मे पहुँचने की है। मैं गहराई की बात इसलिए कह रहा हूँ कि आप जीवन के अन्दर उस ध्वजा के स्तूप का रूप धारण करे, आप समता के धरातल पर आरूढ रहे। यह स्थिति नही होगी, तो आप कभी-कभी निज सन्तान के साथ भी विषम भाव का दृश्य उपस्थित कर सकते है।

समता एक कसौटी

प्राचीन काल मे भी कभी-कभी विदेश जाने का प्रसग आता था। जैसे आजकल एक देश से दूसरे देश मे व्यापार करने की दृष्टि से पहुँचते है। आज का वातावरण उनके लिए बहुत अनुकूल है। यातायात के साधन अधिक हो गये है जिससे मीलो की लम्बाई निकट मे बदल गई है और एक दृष्टि से शहर का रूपक सा बन गया है इसलिए शीघ्र जा आ सकते है, अपने समाचार अपनी सन्तान को जल्दी से पहुँचा सकते है। लेकिन प्राचीन काल मे ये साधन नही थे। उस समय एक व्यापारी विदेश कमाने के लिए निकला। जिस समय वह घर से रवाना होता है उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। वह विदेश व्यापार के लिए चला गया और कुछ महीनो के बाद उसके घर मे पुत्र रत्न का जन्म हुआ। बच्चा भाग्यशाली था, पुण्यवानी को सचित करके लाया था लेकिन पूर्व के पापो का भी उनके साथ सम्बन्ध जुडा हुआ था। बच्चा बडा हुआ और वह १५ वर्ष पूरे कर गया। १६वे वर्ष मे उसने प्रवेश किया। परन्तु उसने अभी पिता का मुँह नही देखा था। घर पर पिता के समाचार पहुँचे कि अब मैं आ रहा

हैं। उस समाचार पहुँचने मे भी महीनो लग जाते। जव वह वहां से रवाना हुआ तब समाचार नही आये, घर से कुछ नजदीक पहुँचता है तब उसके समाचार घर पर पहुँचते है। नजदीक आने के समाचार सुनकर माता अपने पुत्र से कहती है : पुत्र, तुम्हारे पिताजी विदेश से आ रहे है। वे अमुक रास्ते से आवेगे, तुम उनके स्वागत के लिये आगे तक जाओ।

पुत्र ने कहा—माता, मैं पिता श्री को पहचानता नही हूँ।

इस पर माता ने कहा—पुत्र, यह तुम्हारे पिता श्री का फोटो है। इसे तुम अपने पास में रख लो और तुम्हारी आकृति का फोटो भी रख लो। मैं कुछ पूडियाँ भी बना देती हूँ। उनको तुम साथ में रख लेना, सवारी का साधन तो है नहीं। पैदल ही जाना होगा। रास्ते मे जहा भूख लगे खा लेना। ये पूडिया तुम्हारे लिए बहुत होगी। तब तक तो रास्ते मे तुम्हारे पिता श्री मिल ही जायेगे। उनको इन चिन्हो से पहचान लेना और साथ-साथ घर ले आना।

पुत्र बडी उमंग के साथ पिता श्री के स्वागत के लिए घर से चल पडा। दिन अस्त होने को आया। थोडी दूर पर ही रास्ते मे एक धर्मशाला उसे मिल गई। वहा वह पहुँचा और वही विश्राम करने के लिए ठहर गया। धर्मशाला मे उसे एक कमरा ठहरने के लिए मिल गया। शाम का खाना खाकर वह रात को सो गया। उसने अपनी जिन्दगी मे कभी ठण्डी पूडिये खाई नही थी। आज जब उसने ठण्डी पूडिया खाई तो रात को सोने के थोडी देर वाद ही उसके पेट मे तीव्र वेदना प्रारम्भ हो गई। पेट मे जोरो से दर्द होने लगा। दर्द के मारे वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

धर्मशाला का रक्षक दयालु व्यक्ति था। धनवान तो था नही लेकिन उसके मन मे समता की भावना थी। वह वालक उसका कोई सगासबधी नही लगता था फिर भी उसमे एक मानवता के नाते सहज दया भाव जगा और उस वच्चे का दर्द देखकर बडी चिन्ता मे पड गया। सोचने लगा कि इसको कितना दर्द हो रहा है। अगर मेरे पास इसकी कोई औषधि या चूर्ण आदि होता तो इसका दर्द समाप्त कर देता पर मेरे पास कुछ भी तो नही है। विचारा वह धर्मशाला का रक्षक उसके लिए चिन्तित हो उठा। उसने सब काम काज छोडकर उस वच्चे के उपचार के प्रयत्न का निर्णय लिया। उसके मन मे तीव्र भावना जगी कि किसी तरह से इस वच्चे का दुख दर्द दूर करूं।

वन्धुओ, यह भावना किसके मन मे जगी ? धर्मशाला के रक्षक के

मन मे। जितनी उसकी शक्ति थी, उसने प्रयत्न किया। पर वह गाव छोटा था, जहा चूर्ण की पुडिया भी नही मिलती। यकायक उस रक्षक के ध्यान मे आया कि इस धर्मशाला मे एक सेठ विदेश से आया हुआ विश्राम के लिए रुका है और विदेशो से जो सेठ साहुकार आते हैं तो सामान्य तौर से वे कुछ औषधिया साथ रखते है। चलो, उससे कुछ मागनी करू।

वह पहुंचा उस सेठ के पास और कहा– सेठ साहब, इस धर्मशाला मे कोई अबोध बच्चा भी आप की तरह ही आकर रात्रि विश्राम के लिए ठहरा है, वह कहा से आया है कहा का और कौन है यह पता नही लग रहा है वह इतना बेचैन हो रहा है कि जिसकी सीमा नहीं। उसको भान तक नही है। वह अपना स्वरूप और परिचय नही बता पा रहा है। उसके पेट मे दर्द उठा है। आप विदेश से आ रहे हैं, आपके पास अगर कोई पेट दर्द के लिए चूर्ण या दवा हो तो दीजिये ताकि दवा देकर उस बच्चे को शान्त कर सकू।

सेठ कहने लगा– मैं विदेश से आया हूँ और धन कमाकर भी आया हूँ। दवा मे भी मैंने पैसा खर्च किया है, परन्तु यह सब इस तरह से मुफ्त देने के लिए नही। मार्ग मे अनेको मिलते हैं। चिल्लाते हैं मैं इनका क्या करू। मैं ऐसे मुफ्त देने वाला नही हूँ।

धर्मशाला के उस गरीब रक्षक ने कहा—सेठ साहब, मेरी शक्ति के अनुसार जितना पैसा मैं दे सकू गा, दिया दू गा। आप थोटी सी दवा या चूर्ण दीजिये तो सही ताकि उसका दर्द मिट सके।

नही नही, तू क्या मुझे पैसा देगा। कगाल कही का! मेरी दवाइया यो मुफ्त मे देने के लिए नही है। चल हट यहा से।

अब कदाचित् ऐसा व्यक्ति समाजवाद का नारा लगावे और समता की बाते बढचढ कर करे। ऊचे-ऊचे नारे लगावे। पर क्या यह समता जीवन वाला हो सकता है।

समता जीवन का कुछ भी अश उसमे आया है ?

कुछ देर तक यह किस्सा चलता रहा। रात्रि बढने लगी। सोने का समय हो गया। सब यात्री सो गये। पर इधर बच्चा अधिक दर्द से कराहता रहा। रात्रि ज्यो-ज्यो बढी उस वच्चे की वेदना बढने लगी। बढते-बढते वह वेदना इतनी उग्र हो गई कि वह वच्चा दर्द के मारे छटपटाता मछली की तरह तडफने लगा।

इससे उस सेठ की निद्रा भंग हो गई। निद्रा भग का कारण उस बच्चे की चिल्लाहट को जानकर वह चिल्लाया – अरे यह कौन है ? यहा पडा चिल्लाने वाला। मेरी नीद भग कर रहा है। यदि इस तरह से यह किसी शहर मे चिल्लाता तो उसे मैं पुलिस के हवाले करके थाने मे बन्द करवा देता। यह थके मादे यात्रियो की नीद भंग करने का अपराध कर रहा है।

सेठ ने धर्मशाला के रक्षक को बुलाकर डाटा और जोर से कहने लगा कि या तो इस बच्चे को इस धर्मशाला से हटा दे वरना तुम्हारे पर मैं मुकद्दमा चलाकर यात्रियो की इस तरह से नीद भंग करवाने के अपराध मे तुम्हे सजा दिलवा दू गा। तुम्हारी नौकरी छुडवा दू गा। इस तरह से हमारा स्वास्थ्य खराब होने के लिये नही है।

बेचारा रक्षक भी गरीव था। डरा। तडपते कराहते रोते चिल्लाते उस वच्चे को उसने वहा से उठाया और धर्मशाला के किसी एकान्त कोने के कमरे मे ले जाकर लिटा दिया ताकि वहाँ से उसका रोना चिल्लाना सेठ साहव के कानो मे नही पडे और उनकी निद्रा भग न हो।

वह धर्मशाला का रक्षक अत्यन्त दुःख अनुभव कर रहा था कि वह वच्चे के लिये कुछ भी नही कर पा रहा है और इस तरह से उसके दु ख मे अपनी सहानुभूति व्यक्त करके अपने स्थान पर बैठा है। उसे भी चैन नही पड रही थी, नीद नही आ रही थी। बच्चे के उस दु:ख दर्द को वह सहन नही कर पा रहा था।

इधर ये सेठ साहब आनन्द से नीद मे खुर्राटे ले रहे हैं। प्रात काल हुआ। उस धर्मशाला के रक्षक को तो विशेष नीद आई नही थी। फिर भी

जैसे ही उसकी झपकी मिटी उसने सोचा कि चलूँ देखूँ बच्चे की क्या हालत है। लगता है उसे रात में कुछ निद्रा आई है। सूर्योदय होते-होते वह उस बालक के कमरे में पहुँचा। तो देखा कि बच्चे के प्राण पखेरू उड़ चुके हैं। उसको अत्यन्त दुःख हुआ। दुःख के मारे उसके मुँह से हाय निकल पड़ी। हाय-हाय, इस धर्मशाला के अन्दर और यह अबोध बच्चा कितना कोमल शरीर और वय वाला है, चला गया। क्या करूँ। मैं इसके लिये इतना चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सका। काफी प्रयत्न करने पर भी मैं उसके लिए औषधि का साधन नहीं जुटा पाया। मैं इस पाप का भागी होऊँगा। लेकिन फिर भी वह साहस नहीं कर पाया कि उसके हाथ लगाकर देखूँ तो सही। गरीब था। अगर इसके हाथ लगाया और किसी ने देख लिया तो कहेगा कि इसके पास अमुक-अमुक सम्पत्ति थी। उसने निकाल ली या इसके लालच में इसने ही कुछ पिला खिला दिया होगा और इसे मार दिया होगा।

इस शंका से आशंकित होकर वह गाँव में पहुँचा। गाँव थोड़ा दूर था। पाँच पंचों को वहाँ से बुला लाया और कहने लगा यह कमरा है। इसमें एक बच्चा मृत अवस्था में पड़ा है। रात को दर्द हुआ था, इलाज करने का बहुत प्रयत्न किया पर कुछ कर नहीं सका और उस दर्द के मारे यह मर गया है। यह किसका बच्चा है कहाँ से आया है, यह कुछ पता नहीं।

बच्चे की मृत्यु की खबर से लोगों में हलचल मची। बहुत लोग एकत्रित हो गये। हो हल्ला हुआ। लोग कहने लगे अरे इतना कोमल और सुन्दर बच्चा। इसको इतनी वेदना थी तो हमें खबर ना करते। हम ही दवा-दारू करते।

ज्ञात हुआ कि यह तो मेरी ही फोटो है, अरे क्या यह मेरा बेटा था ? हाय रात्रि भर यह तडफ-तडफ कर मर गया और मै अपनी नीद मे सोया रहा। वह मूर्छित होता है और चिल्लाता है लेकिन अब क्या हाथ मे आने वाला है। वह उसी का पुत्र था, उसके स्वागत के लिए आया था लेकिन जन्मते समय पिता को नही देखने की वजह से अपना कुछ भी परिचय आगे नही दे सका और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। लेकिन अब वह सेठ कितना ही चिल्लाये क्या होने वाला है ?

यह तेरे मेरे की दीवार

बन्धुओ ! अभी अभी मैंने आपके सम्मुख एक लघु कथानक रक्खा है। आपने समझा होगा समता किसी व्यक्ति विशेष की बपौती नही है। वह प्राणी मात्र के अपनाने का तत्त्व है। मानव जीवन का निचोड है। उसे यदि एक गरीब व्यक्ति अपनाता है तो वह श्लाघ्य है, इसके विपरीत यदि कोई लाखो की सम्पत्ति का स्वामी क्यो न हो, समता के बिना वह किसी भी क्षेत्र मे वास्तविकता का आदर नही पा सकता। वह समाजवाद की डीग हाक सकता है, पर जीवन निर्माण के क्षेत्र मे खरा नही उतर सकता है। वह अपने परिवार के लिए सब कुछ करना चाहता हैं लेकिन पडौसी के साथ हमदर्दी रखना नही चाहता। पडौसी क्या मोहल्ले शहर और सारे देश के साथ विद्रोह की भावना रखता है और जितना दुनिया का धन सचय किया जाये वह इकट्ठा करने को सोचता है लेकिन समता का प्रचार और समता का प्रसार नही करता है, तो क्या वह अपने जीवन मे वास्तविक शाति का अनुभव कर सकता है ? बन्धुओ आप इस दृष्टिकोण से भी अपने जीवन का थोडा चिन्तन कीजिये और सोचिये कि हम किस धरातल पर है और किधर उड रहे है हमारा जीवन प्रवाह किस ओर जा रहा है। आज मैं तो यही कहूँगा कि प्रत्येक मानव को शांति के साथ समता के स्तम्भ पर आरूढ होकर ठीक तरह से सारे वायुमण्डल का अवलोकन करना चाहिए और दिल दिमाग से सही माने मे जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास होना चाहिए। 'किं जीवनम्" की परिभाषा जिसका कि स्वरूप आपके समक्ष आ रहा है 'सम्यक् निर्णायकम् समता मय च यत् तज्जीवनम्' इसके अन्तर्गत जो समता का स्वरूप है उसका थोडा सा [illegible] जीवन मे आजाय तो समता का स्वरूप सम[illegible] भी कठिनता [illegible]गी। जब तक दूसरे का दुख [illegible] स्वय [illegible] नही करेगा, अपने जीवन के [illegible] नही

अन्तर-आलोक

प्रार्थना

समुद्र विजय सुत श्री नेमीश्वर जादव कुलनो टीको ।
रत्न कुक्ष धारिणी "शिवादे" तेहनो नन्दन नीको ॥
श्री जिन मोहन गारो छै, जीवन प्राण हमारो छै ॥ ...

यह प्रभु अरिष्ट नेमि भगवान् की प्रार्थना है। प्रभु की प्रार्थना भक्त गण भिन्न २ शब्दो मे भिन्न २ प्रकार से व्यक्त करते है। इस प्रक्रिया के द्वारा वे अपने आन्तरिक भावो को परमात्मा के चरणो मे रखने का प्रयास करते है। आध्यात्मिक कवि आनन्दनजी भी आज, प्रभु के चरणो मे अपने भाव स्पष्ट करते हुए कह रहे है कि प्रभो ? आप मोहन गारे हैं। प्राणो के सहारे है। जो प्रभु जीवन के सहारे होते है, आधार होते है, वे मन मोहक ही नही अपितु आत्मानुमोहक भी होते हैं। जीवन का स्वरूप, जीवन की व्याख्या और जीवन की परिभाषा जो मनुष्य समझ लेता है, और प्रभु का तथा अपना तुलनात्मक चिन्तन करता है तो उसे अपना स्वरूप प्रभु के तुल्य ही दीखने लगता है। प्रभु की प्रार्थना प्रभु के लिए नही होती, वह तो स्वय स्तुतिकर्ता के अपने लिए होती है। प्रत्येक भक्त का भक्ति भाव पूर्ण गुण गान उसके अपने लिए ही हितकारी होता है। ईश्वर तो कृत कृत्य है, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। उनके लिए अब कुछ भी करना शेष नही है। वे किसी से अपनी स्तुति भी करवाना नही चाहते है। वे तो अपने वास्तविक स्वरूप सत्-चित् और आनन्द मे रमण करते है। उनका इन स्तुतियो, प्रार्थनाओ तथा सम्मान सस्कारो से कोई सम्बन्ध नही है। भक्त जन प्रार्थना आदि जो भी क्रियाऐं ते हैं, वे सबकी सब अपने लिए ही करते हैं। अपने आत्मिक विकास ए करते है। सच्चा मानव सदा आत्म जागरण की भावना से ही ना करता है। इसके विपरीत जो यह सोचते है कि हमारी प्रार्थना

से भगवान प्रसन्न हो जायेंगे, हमें स्वर्गादि के सुख प्रदान कर देंगे, उनकी वह भावना स्वार्थपरक होती है। वे रिश्वत देकर भगवान से कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। वे अपनी भक्ति भावना को एक व्यापार के रूप मे प्रयोग करते हैं। मुझे यहा उर्दू के कवि गालिब की एक कविता याद आ गई जो ऐसे लोगो पर पूरी घटित होती है —

इबादत करते है जो लोग जन्नत की तमन्ना से,
इबादत तो नही है इक तरह की वह तिजारत है ॥

हा, तो इस प्रकार की प्रार्थना से पुण्य का बन्ध भले ही हो जाय, परन्तु वह आत्म प्रगति और जीवन की सिद्धि मे सहायक नही बन सकती। इसीलिए भक्ति के पीछे विवेक का दीपक, नितान्त आवश्यक माना गया है। विवेक के प्रकाश मे चलता हुआ भक्त मार्ग मे भटकने नही पाता। उसे अपना लक्ष्य सीधा दिखता रहता है। एक दिन प्रयत्न करते करते वह अपने आत्मिक स्थान पर पहुँच ही जाता है।

जीवन की दो धाराएँ

यद्यपि पृथ्वी मे प्रत्यक्ष हरियाली नही दिखती है। फिर भी जड मिट्टी मे से ही रस ग्रहण करके सारे वृक्ष को हराभरा रखती है। ऊपर से कितनी ही गरमी पडती रहे फिर भी वृक्ष सूखता नहीं है। उस की जड सुदृढ और गहरी है। धरती मे से रस खीचकर टहनियो तक पहुँचाने की उसमे समता विद्यमान है। उसे शाखाओ की चिन्ता नही होती, वह तो सदा मूल को सुधारने मे अपना ध्यान लगाये रखता है।

माली खाद पानी कहाँ देता हैं ? मूल मे, जड मे।

तो, यही बात मैं आप लोगो से कह रहा हूँ कि अपने जीवन की सुरक्षा के लिए उसके मूल को सुरक्षित करिये। मूल को सुधारिये। तभी आपको अपने जीवन का सुखमय फल प्राप्त होगा। आप अपनी जीवन की बगिया के माली है। इसकी रक्षा करना आपका सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। अपने जीवन के वृक्ष को आप माली की तरह देखिये।

मनुष्य अपने शरीर को ऊपर से देखता है। अपनी सुन्दर काया को देख कर फूला नही समाता है। मनमे सोचता है कि मेरा शरीर कितना सुन्दर है ? कितना सुदृढ है ? घण्टो घण्टो दर्पण के सामने उसे देखता रहता है। उसे सवारता रहता है। उसका यह सारा प्रयास टहनियो को सीचने के समान है। वह यह नही सोचता कि शरीर पर यह तेज, यह चमक, कहाँ से आ रही है ? अभी तक मूल के महत्त्व को उसने नही समझा है। इसी कारण वह बाहरी टीपटाप मे उलझ रहा है। वह इस बात को भूल गया है कि जिस दिन शरीर से मूल अलग हो जायेगा, इसकी सारी सुन्दरता मुरझा जायेगी। वह मूल तत्त्व "आत्मा" है। इस आत्म तत्त्व की सुरक्षा करने से ही जीवन की सुरक्षा होती है। इसकी शक्ति से ही शरीर सुन्दर शरीर है। इसके बिना वह केवल ' शव मात्र" है।

जीवन से खिलवाड़ मत करिये ?

आज का मानव इन्द्रिय पोषण की ओर अधिक लगा हुआ है। शरीर के अग प्रत्यगो के बनाव शृगार मे ही उसका सारा समय बीत रहा है। कभी बालो मे तेल डालता है, कभी आखो मे सुरमा लगाता है। अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनता है। परतु फिर भी उसका जीवन दिनो दिन मुरझा रहा है। उसमे तेज नही है, ओज नही है। तनिक सी धूप लगते ही उसकी चमक फीकी पड जाती है। क्यो ?

इसलिए कि उसकी जीवन शक्ति प्रत्येक क्षण क्षीण हो रही है। मूल को

भोजन नहीं मिल रहा है। जीवन की जड़ें सूखती जा रही हैं। सबके शरीर का नियामक आत्मा, विकारों से घिर गया है। उसकी आन्तरिक खुराक उसे नहीं मिल पा रही है। उसकी ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। शरीर रूप से बाहरी तत्वों की ओर ध्यान रखने से जीवन का आन्तरिक मूल तत्व उपेक्षित रह जाता है। जीवन के प्रत्येक भाग में विकृति आ जाती है। अतः बाह्य सुधार के साथ-साथ आन्तरिक शक्तियों की ओर भी ध्यान दो। कर्त्तव्य पालन के द्वारा मन को निर्मल करो। तभी आपको सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा। अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूल कर केवल बाहरी रूप रंग का बनाव सुधार किसी भी स्थिति में लाभदायक नहीं है।

मन की ओर ध्यान रखने से जीवन का विकास होगा। मानसिक भावना में निखार आयेगा। धर्म शास्त्र और धर्म गुरुओं के प्रति सच्ची श्रद्धा जागेगी। ऐसा विचार मन में कभी नहीं आयेगा कि—"धर्म स्थान केवल परलोक सुधारने के लिए ही है। इस लोक से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।" पौष्टिक आहार से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है ठीक उसी प्रकार धर्म स्थान में आकर उपदेश श्रवण करने से आत्मा को पौष्टिक विचार मिलते हैं। इन विचारों से आध्यात्मिक चेतना पुष्ट होती है। जीवन का उत्थान होता है। दिन रात के चौबीस घण्टों में से यदि एक घण्टा भी इस ओर लगा दिया तो जीवन की सुप्त शक्ति को जगा देगा। उसका सुधार होगा। एक दिन कल्याण के मार्ग पर अग्रसर देखा जा सकेगा।

यद्यपि पृथ्वी मे प्रत्यक्ष हरियाली नही दिखती है। फिर भी जड मिट्टी में से ही रस ग्रहण करके सारे वृक्ष को हराभरा रखती है। ऊपर से कितनी ही गरमी पड़ती रहे फिर भी वृक्ष सूखता नहीं है। उस की जड सुदृढ और गहरी हैं। धरती मे से रस खीचकर टहनियो तक पहुँचाने की उसमे समता विद्यमान है। उसे शाखाओ की चिन्ता नही होती, वह तो सदा मूल को सुधारने में अपना ध्यान लगाये रखता है।

माली खाद पानी कहाँ देता हैं ? मूल मे, जड मे।

तो, यही बात मैं आप लोगो से कह रहा हूँ कि अपने जीवन की सुरक्षा के लिए उसके मूल को सुरक्षित करिये। मूल को सुधारिये। तभी आपको अपने जीवन का सुखमय फल प्राप्त होगा। आप अपनी जीवन की बगिया के माली है। इसकी रक्षा करना आपका सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। अपने जीवन के वृक्ष को आप माली की तरह देखिये।

मनुष्य अपने शरीर को ऊपर से देखता है। अपनी सुन्दर काया को देख कर फूला नही समाता है। मनमे सोचता है कि मेरा शरीर कितना सुन्दर है ? कितना सुदृढ है ? घण्टो घण्टो दर्पण के सामने उसे देखता रहता है। उसे संवारता रहता है। उसका यह सारा प्रयास टहनियो को सीचने के समान है। वह यह नही सोचता कि शरीर पर यह तेज, यह चमक, कहाँ से आ रही है ? अभी तक मूल के महत्त्व को उसने नही समझा है। इसी कारण वह बाहरी टीपटाप मे उलझ रहा है। वह इस बात को भूल गया है कि जिस दिन शरीर से मूल अलग हो जायेगा, इसकी सारी सुन्दरता मुरझा जायेगी। वह मूल तत्त्व "आत्मा" है। इस आत्म तत्त्व की सुरक्षा करने से ही जीवन की सुरक्षा होती है। इसकी शक्ति से ही शरीर सुन्दर शरीर है। इसके बिना वह केवल 'शव मात्र" है।

जीवन से खिलवाड़ मत करिये ?

आज का मानव इन्द्रिय पोषण की ओर अधिक लगा हुआ है। शरीर के अग प्रत्यगो के बनाव शृगार मे ही उसका सारा समय बीत रहा है। कभी बालो मे तेल डालता है, कभी आखो मे सुरमा लगाता है। अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनता है। परतु फिर भी उसका जीवन दिनो दिन मुरझा रहा है। उसमे तेज नही है, ओज नही है। तनिक सी धूप लगते ही उसकी चमक फीकी पड जाती है। क्यो ?

इसलिए कि उसकी जीवन शक्ति प्रत्येक क्षण क्षीण हो रही है। मूल को

पोषण नहीं मिल रहा है। जीवन की जड़ें सूखती जा रही हैं। समूचे शरीर का नियामक आत्मा, विकारों से घिर गया है। उसकी वास्तविक खुराक उसे नहीं मिल पा रही है। इसकी ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। एकान्त रूप से बाहरी तत्त्वों की ओर ध्यान रखने से जीवन का आन्तरिक मूल तत्त्व अनुरक्षित रह जाता है। जीवन के प्रत्येक भाग में विकृति आने लग जाती है। अतः बाह्य सुधार के साथ-साथ आन्तरिक शुद्धि की ओर भी ध्यान दो। कर्तव्य पालन के द्वारा मूल का सिंचन करो। तभी आपको सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा। अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूल कर केवल बाहरी रूप रंग का बनाव सुधार किसी भी स्थिति में लाभदायक नहीं है।

मूल की ओर ध्यान रखने से जीवन का विकास होगा। मानसिक भावना में निखार आयेगा। धर्म शास्त्र और धर्म गुरुओं के प्रति सच्ची श्रद्धा जागेगी। ऐसा विचार मनमें कभी नहीं आयेगा कि—“धर्म स्थान तो परलोक सुधारने के लिए ही है। इस लोक से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।” पौष्टिक आहार से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है ठीक उसी प्रकार धर्म स्थान में आकर उपदेश श्रवण करने से आत्मा को पौष्टिक विचार मिलते हैं। इन विचारों से आध्यात्मिक चेतना पुष्ट होती है। जीवन का संरक्षण होता है। दिन रात के चौबीस घण्टों में से यदि एक घण्टा भी इस ओर लगा दिया तो जीवन की मूल शक्ति को बड़ा बल मिलेगा। उसका सुधार होगा। वह दिनों दिन कल्याण के मार्ग पर प्रगति करता चला जायेगा।

आपको जीवन दिख भी नही सकता है। यदि जीवन को देखना है तो आत्मा की ज्ञानमयी आंखो से देखिये ! तभी आप अपने सही स्वरूप को पहचान पायेंगे। इसके लिए जीवन को समझना परम आवश्यक है।

आपके सामने प्रश्न चल रहा था कि :—"किंजीवनम्" अर्थात् जीवन क्या है ? आप जीवन को और उसके मूल को समझना चाहते हैं। मै भी वही जीवन के मूल की बात आपके सामने रख रहा हूँ। अब तक आपने जीवन की अनेक परिभाषाये देखी है। उनका चिंतन भी किया होगा ? किन्तु उन परिभाषाओ से आप जीवन के समग्र रूप को नही पहचान पाये है। किसी भी वस्तु के पूर्ण रूप को समझने के लिए, उसकी परिभाषा को समझना आवश्यक होता है। यदि परिभाषा अपने आप मे पूर्ण होती है, सर्वागीण होती है, तो वस्तु का वास्तविक ज्ञान पूर्ण रूप से हो जाता है, अन्यथा अधूरी परिभाषा के कारण स्वरूप का ज्ञान अधूरा ही रह जाता है। जीवन के समग्र रूप को समझने के लिए परिभाषा भी समग्र होनी चाहिये। इसी दृष्टिकोण से आपके सामने एक विशिष्ट परिभाषा रखी गई थी कि :—

"सम्यग् निर्णायक समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्"

इस परिभाषा मे समता शब्द आया है। पहिले उसके भावार्थ को समझ लेना आवश्यक है।

समता क्या है ? इस शब्द का भावार्थ क्या है ?

इस विषय मे जब-जब मानव ने कुछ सोचा है, उसे एक नया ही प्रकाश मिला है। समता एक तुलनात्मक शब्द भी है। शाति का प्रतीक भी है। इसका सही चिंतन करने से जीवन को गति मिलती है। जब इसके समझने मे भूल हो जाती है तो जीवन की प्रगति, जीवन का विकास रुक जाता है। समता हमारे जीवन का मूल तत्त्व है। जीवन को विषमताओ से हटाकर—समता की ओर अग्रसर करना ही मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। आप जो भी कुछ करे देखकर, सोच विचार कर, और विवेकपूर्वक करे। यहा देखने की बात जो कही गई है, उसमे चमडे की आखो का सकेत नही है, यहा तो समता की आखो का सकेत दिया गया है। "समता दर्शन" से देखना ही सही अर्थों मे देखना है। आपका दर्शन यदि समतापूर्वक है तो जीवन के लिए सहायक है। इसके विपरीत ना, हेय माना गया है। मैं इसी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आपके

आपको जीवन दिख भी नही सकता है। यदि जीवन को देखना है तो आत्मा की ज्ञानमयी आंखो से देखिये ! तभी आप अपने सही स्वरूप को पहचान पायेगे। इसके लिए जीवन को समझना परम आवश्यक है।

आपके सामने प्रश्न चल रहा था कि :—"किंजीवनम्" अर्थात् जीवन क्या है ? आप जीवन को और उसके मूल को समझना चाहते है। मैं भी वही जीवन के मूल की बात आपके सामने रख रहा हूँ। अब तक आपने जीवन की अनेक परिभाषाये देखी है! उनका चिंतन भी किया होगा ? किन्तु उन परिभाषाओ से आप जीवन के समग्र रूप को नही पहचान पाये है। किसी भी वस्तु के पूर्ण रूप को समझने के लिए, उसकी परिभाषा को समझना आवश्यक होता है। यदि परिभाषा अपने आप मे पूर्ण होती है, सर्वांगीण होती है, तो वस्तु का वास्तविक ज्ञान पूर्ण रूप से हो जाता है, अन्यथा अधूरी परिभाषा के कारण स्वरूप का ज्ञान अधूरा ही रह जाता है। जीवन के समग्र रूप को समझने के लिए परिभाषा भी समग्र होनी चाहिये। इसी दृष्टिकोण से आपके सामने एक विशिष्ट परिभाषा रखी गई थी कि :—

"सम्यग् निर्णायक समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्"

इस परिभाषा मे समता शब्द आया है। पहिले उसके भावार्थ को समझ लेना आवश्यक है।

समता क्या है ? इस शब्द का भावार्थ क्या है ?

इस विषय मे जब-जब मानव ने कुछ सोचा है, उसे एक नया ही प्रकाश मिला है। समता एक तुलनात्मक शब्द भी है। शांति का प्रतीक भी है। इसका सही चिंतन करने से जीवन को गति मिलती है। जब इसके समझने मे भूल हो जाती है तो जीवन की प्रगति, जीवन का विकास रुक जाता है। समता हमारे जीवन का मूल तत्त्व है। जीवन को विषमताओ से हटाकर—समता की ओर अग्रसर करना ही मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। आप जो भी कुछ करे देखकर, सोच विचार कर, और विवेकपूर्वक करे। यहा देखने की बात जो कही गई है, उसमे चमड़े की आखो का सकेत नही है, यहा तो समता की आखो का सकेत दिया गया है। "समता दर्शन" से देखना ही सही अर्थों मे देखना है। आपका दर्शन यदि समतापूर्वक है तो जीवन के लिए सहायक है। इसके विपरीत खना, हेय माना गया है। मैं इसी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आपके

सामने कुछ कह रहा हू । समता और समता दर्शन दो विचार है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। आध्यात्मिक नेत्रो से देखकर जीवन मे गति करना "समता दर्शन" का मुख्य भाव है। बाह्य दृष्टि और आन्तरिक दृष्टि, दोनो दृष्टियो से समता पूर्वक जीवन का दर्शन करना ही "समता दर्शन" का सही उपयोग है। दर्शन की गति जब एक ओर होकर चलती है तो जीवन मे एकरूपता नही रहती है। उसमे विपमता आ जाती है। क्योकि बाह्य दृष्टि पौद्गलिक होती है, और पुद्गल का स्वभाव भिन्न-भिन्न रूपो में उपस्थित होता है इसी कारण जीवन की एक-रूपता क्षत विक्षत हो जाती है।

आप इस मकान को देख रहे है। इसमे कही पत्थर है, कही चूना है, और कही सीमेण्ट और लोहा है। इस सम्पूर्ण मकान मे कही कुछ है, और कही कुछ है? यहा बैठने वालो की स्थिति भी एक जैसी नही है। कोई पगडी धारी हैं, कोई टोपी पहिने हुए है। कुछ के सिर नगे है। कुछ बधुओ ने मुख वस्त्रिका बाध कर सामायिक ले रखी है। आकृति भी सबकी एक समान नही है! महिलाओ की ओर देखे तो वहा भी रग बिरगी स्थिति है। यह सब बाह्य स्थिति है! केवल इसी मे उलझे रहने से "समता दर्शन" का वास्तविक लाभ प्राप्त नही होगा। बाह्य दृष्टि सदा विषमता उत्पन्न करती है! यह ठीक है, यह गलत है, यह मेरा मित्र है और यह मेरा शत्रु है। ये सभी विचार विषमता के है! इनमे बाहरी दृष्टि मुख्य रूप से काम कर रही है। कौन मित्र है? कौन शत्रु है? इसे समझने के लिए भीतर भी झांकना होगा! कौन किस दृष्टि से शत्रु है और कौन किस दृष्टि से मित्र है? इसे समझना नितान्त आवश्यक है। एक व्यक्ति हमे राजद्रोही दीखता है, दूसरा राष्ट्रभक्त लगता है। ऐसा क्यो है? यहा हमारा दृष्टि का भेद ही मुख्य कारण है! जीवन का स्वामी जब अपनी अन्तर्दृष्टि से अपना सही निरीक्षण करता है, तब उसे बाहर का कोई पदार्थ अपना शत्रु अथवा मित्र नही दीखता! शत्रुता और मित्रता यह उसका अपना विचार है। विचारो की शुद्धि करना ही समताजल का प्रमुख कार्य है! शुद्ध विचारो से आचार शुद्ध होता है, और फिर सारा जीवन पवित्र, मगलमय हो जाता है।

जिनकी दृष्टि सदा बाहर की ओर ही रहती है, वे बाहर क्या देख रहे हैं? अमुक धनवान है। उसने अपनी लडकी का विवाह सम्बन्ध किया है। लाखो रुपयो का सामान दहेज मे दिया है। चारो ओर उसकी वाह-

आपको जीवन दिख भी नही सकता है। यदि जीवन को देखना है तो आत्मा की ज्ञानमयी आंखो से देखिये ! तभी आप अपने सही स्वरूप को पहचान पायेगे। इसके लिए जीवन को समझना परम आवश्यक है।

आपके सामने प्रश्न चल रहा था कि :—"किंजीवनम्" अर्थात् जीवन क्या है ? आप जीवन को और उसके मूल को समझना चाहते है। मै भी वही जीवन के मूल की बात आपके सामने रख रहा हूँ। अब तक आपने जीवन की अनेक परिभाषाये देखी है! उनका चिंतन भी किया होगा ? किन्तु उन परिभाषाओ से आप जीवन के समग्र रूप को नही पहचान पाये है। किसी भी वस्तु के पूर्ण रूप को समझने के लिए, उसकी परिभाषा को समझना आवश्यक होता है। यदि परिभाषा अपने आप मे पूर्ण होती है, सर्वांगीण होती है, तो वस्तु का वास्तविक ज्ञान पूर्ण रूप से हो जाता है, अन्यथा अधूरी परिभाषा के कारण स्वरूप का ज्ञान अधूरा ही रह जाता है। जीवन के समग्र रूप को समझने के लिए परिभाषा भी समग्र होनी चाहिये। इसी दृष्टिकोण से आपके सामने एक विशिष्ट परिभाषा रखी गई थी कि :—

"सम्यग् निर्णायक समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्"

इस परिभाषा मे समता शब्द आया है। पहिले उसके भावार्थ को समझ लेना आवश्यक है।

समता क्या है ? इस शब्द का भावार्थ क्या है ?

इस विषय मे जब-जब मानव ने कुछ सोचा है, उसे एक नया ही प्रकाश मिला है। समता एक तुलनात्मक शब्द भी है। शाति का प्रतीक भी है। इसका सही चिंतन करने से जीवन को गति मिलती है। जब इसके समझने मे भूल हो जाती है तो जीवन की प्रगति, जीवन का विकास रुक जाता है। समता हमारे जीवन का मूल तत्त्व है। जीवन को विषमताओ से हटाकर—समता की ओर अग्रसर करना ही मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। आप जो भी कुछ करे देखकर, सोच विचार कर, और विवेकपूर्वक करे। यहा देखने की बात जो कही गई है, उसमे चमड़े की आखो का सकेत नही है, यहा तो समता की आखो का सकेत दिया गया है। "समता दर्शन" से देखना ही सही अर्थों मे देखना है। आपका दर्शन यदि समतापूर्वक है तो जीवन के लिए सहायक है। इसके विपरीत देखना, हेय माना गया है। मै इसी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आपके

सामने कुछ कह रहा हू । समता और समता दर्शन दो विचार है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। आध्यात्मिक नेत्रो से देखकर जीवन मे गति करना "समता दर्शन" का मुख्य भाव है। बाह्य दृष्टि और आन्तरिक दृष्टि, दोनो दृष्टियो से समता पूर्वक जीवन का दर्शन करना ही "समता दर्शन" का सही उपयोग है। दर्शन की गति जब एक ओर होकर चलती है तो जीवन मे एकरूपता नही रहती है। उसमे विपमता आ जाती है। क्योकि बाह्य दृष्टि पौद्गलिक होती है, और पुद्गल का स्वभाव भिन्न-भिन्न रूपो में उपस्थित होता है इसी कारण जीवन की एक-रूपता क्षत विक्षत हो जाती है।

आप इस मकान को देख रहे हैं। इसमे कही पत्थर है, कही चूना है, और कही सीमेण्ट और लोहा है। इस सम्पूर्ण मकान मे कही कुछ है, और कही कुछ है? यहा बैठने वालो की स्थिति भी एक जैसी नही है। कोई पगडी धारी हैं, कोई टोपी पहिने हुए है। कुछ के सिर नगे है। कुछ बधुओ ने मुख वस्त्रिका वाध कर सामायिक ले रखी है। आकृति भी सबकी एक समान नही है। महिलाओ की ओर देखे तो वहा भी रग विरगी स्थिति है। यह सब बाह्य स्थिति है। केवल इमी मे उलझे रहने से "समता दर्शन" का वास्तविक लाभ प्राप्त नही होगा। बाह्य दृष्टि सदा विषमता उत्पन्न करती है। यह ठीक है, यह गलत है, यह मेरा मित्र है और यह मेरा शत्रु है। ये सभी विचार विषमता के है। इनमे बाहरी दृष्टि मुख्य रूप से काम कर रही है। कौन मित्र है? कौन शत्रु है? इसे समझने के लिए भीतर भी झाँकना होगा। कौन किस दृष्टि से शत्रु है और कौन किस दृष्टि से मित्र है? इसे समझना नितान्त आवश्यक है। एक व्यक्ति हमे राजद्रोही दीखता है, दूसरा राष्ट्रभक्त लगता है। ऐसा क्यो है? यहा हमारा दृष्टि का भेद ही मुख्य कारण है। जीवन का स्वामी जब अपनी अन्तर्दृष्टि से अपना सही निरीक्षण करता है, तब उसे बाहर का कोई पदार्थ अपना शत्रु अथवा मित्र नही दीखता। शत्रुता और मित्रता यह उसका अपना विचार है। विचारो की शुद्धि करना ही समताजल का प्रमुख कार्य है। शुद्ध विचारो से आचार शुद्ध होता है, और फिर सारा जीवन पवित्र, मंगलमय हो जाता है।

जिनकी दृष्टि सदा बाहर की ओर ही रहती है, वे बाहर क्या देख रहे हैं? अमुक धनवान है। उसने अपनी लडकी का विवाह सम्बन्ध किया है। लाखो रुपयो का सामान दहेज मे दिया है। चारो ओर उसकी वाह-

वाही, हो रही है। एक निर्धन व्यक्ति इस सारी स्थिति को देखता है तो सोचता है कि मेरे पास तो इतना धन वैभव नही है। मै अपनी कन्या का विवाह सम्बन्ध कैसे कर पाऊँगा ? समाज मे रहना है तो उसके अनुरूप चलना ही पडेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह चोरी करता है, काला-बाजारी अपनाता है। चोरी करता हुआ भी वह अपने आपको साहूकार मानता है। सभी दु खो को सहता है। देश विदेशो मे भ्रमरण करता है। किस लिए ? केवल धनवानो के साथ टक्कर लेने के लिए। मेरी कन्या का विवाह सस्कार उससे बढकर ही होना चाहिए। इसी भावना की पूर्ति के लिए वह अनेक ताने-बाने बुनता है। किन्तु ऐसा करने से क्या होगा ? क्या उसका जीवन सुखी बन जायेगा ? क्या वह अपनी स्थिति का सही अध्ययन कर सकेगा ? इन सभी प्रश्नो का उत्तर नकारात्मक ही मिलेगा। इस ओर विशेष रूप से चिंतन करने की आवश्यकता है। दूसरे लोगो के विस्तृत साधनो को देखकर उनकी ओर आकर्षिक होना, अशाति के बीज बोने के तुल्य है।

ये विषमताएँ क्यों ?

बन्धुओ, आप चितन करें। अपने वर्तमान जीवन का विकास करिये। जब भी आवकाश मिले सोचिये कि—हमे अपना जीवन किस प्रकार बिताना चाहिए ? हमारा दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए ? आज की ये विषयमताये किस प्रकार समाप्त की जा सकती हैं ? ये प्रश्न आपके मस्तिष्क मे उठते तो अवश्य होगे, किन्तु इन पर आपने पूरा ध्यान नही दिया है। आज तक आप इनका समाधान नही कर पाये हैं। क्षण भर के लिए भी आपके मन मे समता का उदय नही हुआ है। विषमताए चारो ओर फैलती जा रही हैं। जिनके पास धन है, वे तो किसी प्रकार इन सामाजिक रीति-रिवाजो का निर्वहन सुगमता पूर्वक कर सकते हैं। किन्तु जिनके पास धन नही है वे क्या करे ? उनकी स्थिति क्या होगी ? जो महनत मजदूरी करके जीवन-यापन करते हैं। जिनके घर मे सभी कमाने वाले है और सभी खाने वाले हैं, वे भी कुछ अपने बाहरी रूप को ठीक बना सकते है। किन्तु जो मध्यम वर्गीय हैं, जिनके परिवार में एक कमाने वाला है और दस खाने वाले हैं उनकी स्थिति बहुत ही विकृत है। दिनरात परिश्रम करने पर भी पेट भर भोजन नही मिलता। सामाजिक रीति-रिवाजो ने उनके जीवन को चारो ओर से जकड रखा है! अशाति, क्लेश और बेचैनी

जिनके जीवन को खाये जा रही है। उनके विषय मे कभी आपने कुछ सोचा है ? वे भी तो आपके ही भाई हैं। आपकी समाज के सदस्य है। प्रत्येक दुःख सुख मे आपके साथ रहते हैं। उनकी स्थिति का चिंतन करना भी आपका कर्त्तव्य हैं। यह तभी सभव हो सकेगा जब आप समता सिद्धान्त दर्शन का अध्ययन करेगे ? अपनी आत्मीयता को जागृत करेंगे।

बन्धुओ, थोडा सा ध्यान दीजिये। आज का मानव बाह्य दृश्यो की ओर विशेष प्रगति कर रहा है। बाह्य चिंतन के साथ साथ कुछ आपको आतरिक चिंतन भी करना चाहिये। मन की धाराओ को कुछ भीतर की ओर भी मोड दीजिये ! अपने पडौसी भाइयो की दशा सुधारने का प्रयत्न करिये। केवल व्याख्यान सुन लेने मात्र से काम बनने वाला नही है। जो सुना है उस पर आचरण करना भी आवश्यक है, तभी जीवन का कल्याण हो सकता है। अपने जीवन मे धार्मिक क्राति लाइये !

वर्तमान के सुन्दर निर्माण से ही भविष्य उज्ज्वल बन सकता है। अपने समाज मे अपने राष्ट्र मे समवेदना की स्फूर्ति भरिये। तभी इन मध्यम वर्गीय लोगो के जीवन मे कुछ सुख का सास आ सकेगा। आपको भी तब ही समता सिद्धान्त का वास्तविक लाभ प्राप्त होगा। मूल की दृष्टि से सभी प्राणी समान हैं ? सभी के जीवन मे समता गुण विद्यमान है। आप ससार मे भिन्न २ पोशाको और आकृतियो के मानवो को देखते हैं। उस पोशाक और आकृति के पीछे जो मूल शरीर है, वह सभी मे समान हैं। शरीर से हट कर जब आप मन और आत्मा की ओर देखेंगे तो आपकी वाहरी सभी विषमताएे समाप्त हो जायेगी। इस स्थिति मे आपको सभी जीव अपने जैसे ही दिखेंगे। आन्तरिक दृष्टि से मूल मे सब एक समान है। जब (हम) सव एक समान है तो (हमे) जीवन का आदर्श लेकर चलना चाहिए ? हमारी मूल स्थिति एक जैसी है, हमारी जडे एक समान हैं, तो हमारे कर्तव्य भी एक जैसे ही होने चाहिए, यह तब ही होगा जब हम समता का सम्बल लेकर चलें। समता दर्शन की परिभाषा कोई आज ही आपको नही सुनाई जा रही है। आज से ढाई हजार वर्ष पहिले भी भगवान् महावीर ने कहा था कि :—

सव्व भूयप्प-भूयस्स सम्म भूयाई पासओ।
पिहिया सस्स दन्तस्स पाव कम्म न बधई॥
दशवैकालिक सूत्र ४ अ०

जो मुझे प्रिय है, वही मैं दूसरो के लिए करूं, और जो मुझे अप्रिय है वह मैं किसी के लिए न करू। क्योकि ससार के सभी प्राणी मेरी आत्मा के समान हैं। मुझ मे और उनमे आत्मसत्ता की दृष्टि से कोई अन्तर नही है।

इस प्रकार की भावना रखने वाला मनुष्य सासारिक रीति रिवाजो मे अनावश्यक ढग से नही उलझेगा। वह यही समझेगा कि आज तो मेरे पास धन है, अत. मैंने सब कुछ कर लिया, परन्तु जिनके पास इतना धन नही है वे क्या करेंगे। मेरा उदाहरण उनके लिए एक अभिशाप वन जायेगा। मेरे इस व्यर्थ व्यय का पडौसी के जीवन पर वडा बुरा प्रभाव पडेगा। अत मुझे वही कार्य करना चाहिये जिससे मेरे पडोसी को कोई दुख न हो। आज जो ऊचा है वही कल नीचे भी गिर सकता है। धन वैभव के अभिमान मे मुझे अपनी मूल स्थिति को नही भूलना है। आत्मन. प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् अर्थात् जो कार्य अपनी आत्मा के प्रतिकूल है वह दूसरो के लिए नही करना चाहिये ?

आप कभी हीन्दे (झूले) मे तो बैठे ही होगे। इसमे चार पलडे होते हैं। जब चारो पलडो मे आदमी बैठ जाते है तो इसे घुमाया जाता है। एक पलडा ऊपर जाता है, एक नीचे, और दो पलडे आस पास से तिरछे रहते है। ऊपर के पलडे मे बैठा हुआ आदमी यदि नीचे के पलडे वालो को हीन दृष्टि से देखेगा तो क्या होगा ? पलडा घूमेगा और नीचे वाला ऊपर और ऊपर वाला नीचे आ जायेगा। आपने व्यर्थ ही अपने ऊचेपन का अभिमान किया। हीदे मे सभी पलडे समान है। यही स्थिति मानव की है। यहा सबकी स्थिति सदा एक जैसी नही रहती है। मैथिलीशरण गुप्त की ये पँक्तिया इसी भाव को लेकर लिखी गई हैं—

ससार मे किसका समय है एक सा रहता सदा।
है निशि दिवा सी घूमती सर्वत्र विपदा सम्पदा।
जो आज एक अनाथ है नरनाथ कल होता वही।
जो आज आनन्द मग्न है कल शोक से रोता वही।।

मूल में सब एक हैं—

आपको 'मूल' के विषय मे सोचना है। मूल मे आत्मा है। मूल तत्त्व आप सबका एक है। इस मूल तत्त्व को साथ लेकर यदि आप बाहर की ओर देख रहे हैं तो आप समता दर्शन के अनुगामी कहला सकते है। इसके

विपरीत मूल को भूल कर कुछ भी देखना विषम दर्शन कहलायेगा। इसीलिये जीवन की परिभाषा मे "समता" शब्द रखा गया है। उसे सामने रख कर ही आपको जीवन मे गति करनी है। समता गति मे बाधक नही है, सहायक है।

एक प्राचीन कथानक है। श्रावस्ती नगरी के जगलो मे एक महात्मा ध्यान कर रहे थे। उस दिन ध्यान से निवृत हो कर वे जगल के मार्ग पर चले जा रहे थे। उसी जगल मे उन दिनो एक डाकू रहता था। कथा साहित्य मे उसे "अँगुलिमाल" की सज्ञा दी गई है। वह अगुलियो की माला पहनता था। जगल मे जो भी मिलता वह उसकी अ गुलिया काट लेता और उन्हे माला मे डाल कर पहन लेता था। इसी कारण उसका नाम अ गुलिमाल पड गया था। राज्य तत्र के सभी प्रयत्न उसे पकडने मे असफल हो चुके थे। आज उसने महात्मा को देखा तो बोल उठा, ठहरो, ठहरो। महात्मा उसके शब्दो को सुन कर घबराये नही। वे चलते ही रहे और चलते चलते ही उन्होने कहा—भाई? तू ठहर। मैं तो ठहरा हुआ ही हूँ।

महात्मा का उत्तर सुन कर डाकू को वडा आश्चर्य हुआ वह सोचने लगा कि मेरे नाम से ही लोग थर थर कापते हैं। आज दिन तक किसी ने मेरी आज्ञा की अवहेलना नही की है। इस महात्मा को मेरा तनिक भी भय नही लग रहा है। बडी निर्भयता के साथ स्वय तो चलता जा रहा है, और मुझे कह रहा है कि तू ठहर, मैं तो ठहरा हुआ ही हूँ। इसकी बात में कोई रहस्य अवश्य है। डाकू उस महात्मा के उत्तर का सही तात्पर्य नही जान पाया। मैं तो खडा हूँ, ठहरा हुवा हूँ, फिर भी मुझे ठहरने के लिए क्यो कहा जा रहा है? उसने जिज्ञासा पूर्वक पूछ ही लिया कि—मैं तो ठहरा हुआ ही हूँ और आप चल रहे हो। किन्तु आप कह रहे हो तू ठहर, और मैं तो ठहरा हुआ ही हूँ। आपका यह कथन युक्ति सगत नही लग रहा है।

महात्मा ने कहा—भाई? तू शरीर से अवश्य खडा हुआ है, परन्तु तेरा मन तो दौड लगा रहा है। मैं इधर शरीर से अवश्य चल रहा हूँ किन्तु मेरा मन मेरे नियत्रण मे रुका हुवा है। मन से ठहरना ही वास्तविक ठहरना है। शरीर से ठहरना कोई महत्वपूर्ण नही है। मेरी स्थिति अहिंसा मे है और मैं सत्य मे ठहरा हुआ हूँ। समता सिद्धान्त की भूमिका पर मैं निश्चल खडा हुआ हूँ। तू हिंसा मे दौड रहा है। शरीर से भले ही तू

खडा हुवा है परन्तु हिंसा और असत्य के पथ पर दौड रहा है। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि तू ठहर। अपने मन की गति को बुरे कामो की ओर से रोक। इसे अच्छे कार्य मे लगा।

वे महात्मा, सचमुच ही सच्चे महात्मा थे। उनकी वाणी में अपूर्व प्रभाव था। उनके एक एक शब्द मे दया और करुणा का रस टपक रहा था। क्षमा का अक्षुण्ण प्रभाव उनके रोम रोम से झलक रहा था। उनके सच्चे प्रभावकारी शब्द डाकू के हृदय मे घर कर गये। क्षण भर मे उसका दृष्टिकोण बदल गया। आज तक वह पौद्‌गलिक जगत्‌ मे घूम रहा था। महात्मा के ससर्ग से आज उसे अपना अन्तर दिखने लगा। उसकी दृष्टि बाहर से हटकर भीतर की ओर मुड गई। उसके हृदय मे पश्चाताप की अग्नि सुलग उठी। वह सोचने लगा कि—मैंने अज्ञानता वश अब तक इतने पाप किये है। हिंसा, हत्या काण्ड ने मेरे जीवन को कितना कुरुप बना दिया है। मानव हो कर भी मैंने पशुता के काम ही किये हैं। कितने निरीह, और निर्दोष प्राणियो का वध करता रहा हूँ। आज इस महात्मा के एक वाक्य ने ही मेरी आखे खोल दी है। अब मैं कभी भी ऐसा दुष्कृत्य नही करू गा। आज से सभी जीवन की बुराइयो का परित्याग करता हूँ। इतना कह कर वह महात्मा के चरणो पर गिर पडा। महात्मा ने उसे उठाया, समझाया और समता सिद्धान्ता का निर्मल उपदेश देकर साधु धर्म मे दीक्षित कर दिया। वेश परिवर्तन के साथ साथ उसके जीवन का भी परिवर्तन हो गया। वह महात्मा के साथ वही जंगल मे ध्यान लगा कर बैठ गया।

उधर श्रावस्ती नरेश, डाकू से आतकित प्रजा की करुण पुकार सुन कर उसे पकडने के लिए जंगल मे आ पहुचे। जगल को चारो ओर से सैनिको ने घेर लिया। महाराजा स्वय डाकू को पकडने के लिये आगे बढे। थोडी दूर जाकर उन्होने देखा, एक महात्मा ध्यानस्थ खडे है। राजा ने समीप जाकर महात्मा के चरणो मे विधिपूर्वक वन्दना नमस्कार किया। ध्यान का काल समाप्त होने पर महात्मा ने राजा से जगल मे आने का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि—

महात्मन्! इस जगल मे "अंगुलिमाल" नामक एक भयकर डाकू रहता है। उसने मेरे सारे राज्य को आतकित कर रखा है। आज तक उसे कोई पकड नहीं पाया है। आज मैं प्रतिज्ञा वद्ध होकर उसे पकडने आया। उसके अन्याय-अत्याचार सीमा लाघ चुके है। अब मै उसे उसकी करनी का दण्ड अवश्य ही दू गा।

राजन् ! यदि वह डाकू अपना कुकृत्य छोडकर साधु बन जावे और प्रायश्चित लेकर समता मे स्थित हो जावे तो तुम क्या करोगे ? महात्मा ने राजा के विचारो को कुरेदते हुए कहा।

महामुनिराज ! आप जो कुछ कह रहे है, यह कदापि सम्भव नही है। वह दुर्दान्त दस्यु अपने पापो का प्रायश्चित लेकर साधु बन सकता है, ऐसा मुझे किंचित् भी विश्वास नही है। राजा ने कहा।

महात्मा ने कहा—राजन् ! इस ससार मे असम्भव कुछ भी नही है। मनुष्य को निराशावादी नही बनना चाहिए। प्रत्येक असम्भव, सम्भव बन सकता है। तुम कल्पना करो कि यदि ऐसा हो जाय तो तुम क्या करोगे ?

भगवन् ! यदि वह साधु बन गया होगा, तो मैं जिस प्रकार आपको वन्दना करता हूँ, ठीक उसी प्रकार उसके चरणो मे भी वन्दना, नमस्कार करूगा। राजा ने विस्मित होते हुए उत्तर दिया।

राजन् ! जिस डाकू को पकडने के लिए तुम जगल मे ससैन्य आये हो वह पकडा जा चुका है। उसे पकडने के लिए अब अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नही है।

महात्माजी के वचनो मे एक निश्चयात्म तथ्य था। राजा को अब भी निश्चय नही हो पा रहा था। यह विस्मित सा होकर बोला—भगवन् ! वह कहा है ? उसे किसने पकड लिया है ?

शरीर से नही वह मानसिक स्थिति से पकडा गया है। अब वह अपनी आत्म साधना मे तल्लीन है। यही मेरे पास बैठा है। महात्मा ने कहा।

राजा को विश्वास नही हो रहा था। प्रत्येक क्षण उसका आश्चर्य बढता जा रहा था। वह बदले हुए "अंगुलिमाल" को अपनी आखो से देखना चाहता था। महात्मा उसके विचारो की ऊहापोह को समझ गये। उन्होने कहा—राजन् ! मैं ठीक कह रहा हूँ। यह तुम्हारे सम्मुख जो साधु वेश मे बैठा हुआ है, यही "अगुलिमाल" है। अब यह डाकू नही रहा है, यह साधु हो चुका है। मेरे नियत्रण मे इसने आत्म समर्पण कर दिया है। अच्छा निमित्त पाकर इसके जीवन मे परिवर्तन आगया है। आज यह अपने अन्तरलोक मे रमण कर रहा है। अब तक बाहरी पौद्गालिक वैभव की ओर दौड रहा था किन्तु पुण्य का निमित्त मिलने से उसकी रुचि अपने "आत्मिकधन" की ओर हो गई है।

राजा चुपचाप सब कुछ सुनता रहा। आज उसने अपूर्व परिवर्तन देखा है। उसकी श्रद्धा जाग उठी। क्षण ही क्षण मे उसका मस्तिष्क मुनि "अगुलिमाल" के चरणो मे आगया। यह समता दर्शन का चमत्कार है। हमे पाप से घृणा अवश्य करनी चाहिए, परन्तु पापी से नही। इस सिद्धात को जीवन मे उतारेगे तो अपनी सभी विषमताओ को समता के रूप मे बदल सकते है। विषमता के कारणो को मिटायेगे तो समता का आदर्श अपने आप सम्मुख आजायेगा। इसके लिए आपको एक "सवेदनशील समाज" नये समाज का निर्माण करना होगा। तब ही आप सुख शाति का सास ले सकेंगे। अपनी इच्छानुसार चलने वाली समाज व्यवस्था ने मानव की शाति भंग करदी है। हमे इच्छाओ के अनुसार नही चलना है अपितु इच्छाओ को अपने अनुसार चलाना है। इसके लिए सगूचे समाज मे क्राति लानी है। सभी को समता दर्शन का महत्त्व समझाना है। विषमता का चश्मा अपनी आखो पर से उतार देना है। अपनी दृष्टि के अनुसार चश्मे का नम्बर लेना है। तभी सही स्थिति का दर्शन होगा। अन्यथा बिना नम्बर के चश्मे से धरती हिलती दीखती रहेगी। हमारी श्रद्धा कही टिक नही पावेगी। अश्रद्धा के जीवन को तो आप जानते ही है, वह इधर-उधर भटकता रहता है।

मानव और मांसाहार

बन्धुओ, मैं आपके सन्मुख जिन अरिष्टनेमि भगवान् की प्रार्थना रख गया हूँ। वे बाइसवे तीर्थङ्कर है। पूर्ण आत्मद्रष्टा है। यह वृतान्त उनके विवाह के समय का है। भोगावली कर्म बडा बलवान् होता है। कुछ कर्म बधन ऐसे होते हैं जो भुक्त होने पर ही मानव को मुक्त होने देते हैं। उन्हे भोग लेने पर ही छुटकारा होता है। इसी कर्म व्यवस्था के अन्तर्गत आज भगवान् को इच्छा न होते हुए भी दूल्हा बनना पड रहा है। यथा समय बारात सजी और जूनागढ की ओर चल पडी। कहते है कि बारात मे छप्पन करोड यादवो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। उनमे कुछ लोग मासाहारी भी थे। उनकी व्यवस्था के लिए महाराजा उग्रसैन ने कुछ पशुओ को बाडे मे बन्द करवा दिया था। आवश्यकता होने पर उन्हे मार कर काम मे ले लिया जावेगा। आप जानते ही है कि ससार मे जीवन सभी को प्यारा लगता है। मृत्यु से सभी घबराते हैं। मरना कोई भी नही चाहता। अपनी मृत्यु को सामने देखकर सारे पशु भाँय भाय चिल्ला रहे हैं। उधर प्रभु की वर यात्रा आ रही है। प्रभु ने दुख से आर्त पशु को

देखा। उनकी करुण पुकार सुनी। उनका हृदय दया से द्रवित हो उठा। सारी स्थिति का पता लगने पर उन्होने कहा—मेरे विवाह प्रसंग पर इतने पशुओ का वध, यह मुझे स्वीकार नही है। मनुष्य कितना जिह्वा लोलुप हो गया है। उसका कितना पतन हो रहा है। मनुष्य होकर वह मास खाये, यह कितना घृणित कार्य है। रक्षक ही आज भक्षक बन रहा हैं। इससे बढकर मानवता का और क्या अपमान हो सकता है। ससार मे जितने भी प्राणी हैं, सभी के आहार निश्चित हैं। उनमे मनुष्य की भी अपनी एक आहार संहिता है। उसमे मनुष्य के लिए मासाहार का कही निर्देश नही है। मास भक्षण तो एक राक्षसी काम है इसे करने वाला सचमुच ही राक्षस होता है। जिस प्रकार मनुष्य दूसरे जीवो को मारकर खाता है उसी प्रकार यदि कोई उसे मारकर खाये तो उसे कैसा लगेगा? क्या उसे इससे दु ख नही होगा। जो व्यवहार वह अपने लिए चाहता है वह दूसरो के लिए क्यो नही करता है? इन पशुओ ने किसी का क्या बिगाडा है? इन्हे व्यर्थ ही मृत्यु के मुख मे क्यो धकेला जा रहा है। यह तो बडा भारी पाप है। अपने नाम पर इस पाप को मैं कभी नही होने दू गा। सारथी उनकी भावना को समझ गया। उसने तुरन्त सभी पशुओ को बधन मुक्त कर दिया। सभी पशु बच गये। राजकुमार अरिष्टनेमि ने समता की दृष्टि से पशुओ को देखा। तभी तो उनकी रक्षा हो सकी। भगवान् ने पशुओ की आतमा को अपनी आतमा के समान समझा। यही से वे त्याग के मार्ग पर चल पडे। गिरनार पर्वत पर जाकर आध्यात्मिक साधना मे तल्लीन हो गए।

बन्धुओ, आप विचार करिये। यह सभी समागम कैसे मिला? यदि आप अन्तरग दृष्टि से चिन्तन करेंगे तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि यह सभी "समता दर्शन" का प्रभाव है। प्रभु ने आतम तुलना की दृष्टि से सभी जीवो को देखा तभी तो उनके हृदय मे पशुओ के प्रति करुणा के भाव जागृत हुए। बाहरी दृश्यमान् जगत् की वस्तुएँ एक निश्चित सीमा तक ही उपादेय रहती हैं। अन्त मे उन्हे छोडना ही पडता है। आपने देखा होगा—बहिने "गणगौर" बनाती हैं। उसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाती है। अपने सिर पर उठाकर उसे बाजारो मे गाती हुई निकलती हैं। किन्तु कब तक? केवल दो चार दिन ही तो उनकी यह प्रक्रिया चलती है। इसके बाद उस गणगौर को पानी आदि मे छोड़ दिया जाता है। आज इस मानव जीवन की भी यही स्थिति चल रही है। शारीरिक टीम टाम

राजा चुपचाप सब कुछ सुनता रहा। आज उसने अपूर्व परिवर्तन देखा है। उसकी श्रद्धा जाग उठी। क्षण ही क्षण मे उसका मस्तिष्क मुनि "अगुलिमाल" के चरणो मे आगया। यह समता दर्शन का चमत्कार है। हमे पाप से घृणा अवश्य करनी चाहिए, परन्तु पापी से नही। इस सिद्धात को जीवन मे उतारेगे तो अपनी सभी विषमताओ को समता के रूप मे बदल सकते है। विषमता के कारणो को मिटायेगे तो समता का आदर्श अपने आप सम्मुख आजायेगा। इसके लिए आपको एक "संवेदनशील समाज" नये समाज का निर्माण करना होगा। तब ही आप सुख शाति का सास ले सकेंगे। अपनी इच्छानुसार चलने वाली समाज व्यवस्था ने मानव की शाति भंग करदी है। हमे इच्छाओ के अनुसार नही चलना है अपितु इच्छाओ को अपने अनुसार चलाना है। इसके लिए समूचे समाज मे क्राति लानी है। सभी को समता दर्शन का महत्त्व समझाना है। विषमता का चश्मा अपनी आखो पर से उतार देना है। अपनी दृष्टि के अनुसार चश्मे का नम्बर लेना है। तभी सही स्थिति का दर्शन होगा। अन्यथा बिना नम्बर के चश्मे से धरती हिलती दीखती रहेगी। हमारी श्रद्धा कही टिक नही पावेगी। अश्रद्धा के जीवन को तो आप जानते ही हैं, वह इधर-उधर भटकता रहता है।

मानव और मांसाहार

बन्धुओ, मैं आपके सन्मुख जिन अरिष्टनेमि भगवान् की प्रार्थना रख गया हूँ। वे बाइसवे तीर्थङ्कर है। पूर्ण आत्मदृष्टा है। यह वृतान्त उनके विवाह के समय का है। भोगावली कर्म बडा बलवान् होता है। कुछ कर्म बधन ऐसे होते हैं जो भुक्त होने पर ही मानव को मुक्त होने देते हैं। उन्हे भोग लेने पर ही छुटकारा होता है। इसी कर्म व्यवस्था के अन्तर्गत आज भगवान् को इच्छा न होते हुए भी दूल्हा बनना पड रहा है। यथा समय बारात सजी और जूनागढ की ओर चल पडी। कहते है कि बारात मे छप्पन करोड यादवो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। उनमे कुछ लोग मासाहारी भी थे। उनकी व्यवस्था के लिए महाराजा उग्रसैन ने कुछ पशुओ को बाडे मे बन्द करवा दिया था। आवश्यकता होने पर उन्हे मार कर काम मे ले लिया जावेगा। आप जानते ही है कि ससार मे जीवन सभी को प्यारा लगता है। मृत्यु से सभी घबराते हैं। मरना कोई भी नही चाहता। अपनी मृत्यु को सामने देखकर सारे पशु भाँय भाय चिल्ला रहे है। उधर प्रभु की वर यात्रा आ रही है। प्रभु ने दुख से आर्त पशुओ को

देखा। उनकी करुण पुकार सुनी। उनका हृदय दया से द्रवित हो उठा। सारी स्थिति का पता लगने पर उन्होने कहा—मेरे विवाह प्रसंग पर इतने पशुओ का वध, यह मुझे स्वीकार नही है। मनुष्य कितना जिह्वा लोलुप हो गया है। उसका कितना पतन हो रहा है। मनुष्य होकर वह मास खाये, यह कितना घृणित कार्य है। रक्षक ही आज भक्षक बन रहा हैं। इससे बढकर मानवता का और क्या अपमान हो सकता है। ससार मे जितने भी प्राणी है, सभी के आहार निश्चित है। उनमे मनुष्य की भी अपनी एक आहार संहिता है। उसमे मनुष्य के लिए मासाहार का कही निर्देश नही है। मास भक्षण तो एक राक्षसी काम है इसे करने वाला सचमुच ही राक्षस होता है। जिस प्रकार मनुष्य दूसरे जीवो को मारकर खाता है उसी प्रकार यदि कोई उसे मारकर खाये तो उसे कैसा लगेगा? क्या उसे इससे दु ख नही होगा। जो व्यवहार वह अपने लिए चाहता है वह दूसरो के लिए क्यो नही करता है? इन पशुओ ने किसी का क्या बिगाडा है? इन्हे व्यर्थ ही मृत्यु के मुख मे क्यो धकेला जा रहा है। यह तो बडा भारी पाप है। अपने नाम पर इस पाप को मैं कभी नही होने दू गा। सारथी उनकी भावना को समझ गया। उसने तुरन्त सभी पशुओ को बधन मुक्त कर दिया। सभी पशु बच गये। राजकुमार अरिष्टनेमि ने समता की दृष्टि से पशुओ को देखा। तभी तो उनकी रक्षा हो सकी। भगवान् ने पशुओ की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझा। यही से वे त्याग के मार्ग पर चल पडे। गिरनार पर्वत पर जाकर आध्यात्मिक साधना मे तल्लीन हो गए।

बन्धुओ, आप विचार करिये। यह सभी समागम कैसे मिला? यदि आप अन्तरग दृष्टि से चिन्तन करेंगे तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि यह सभी "समता दर्शन" का प्रभाव है। प्रभु ने आत्म तुलना की दृष्टि से सभी जीवो को देखा तभी तो उनके हृदय मे पशुओ के प्रति करुणा के भाव जागृत हुए। बाहरी दृश्यमान् जगत् की वस्तुएँ एक निश्चित सीमा तक ही उपादेय रहती हैं। अन्त मे उन्हे छोडना ही पडता है। आपने देखा होगा—बहिनें "गणगौर" बनाती हैं। उसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाती है। अपने सिर पर उठाकर उसे बाजारो मे गाती हुई निकलती हैं। किन्तु कब तक? केवल दो चार दिन ही तो उनकी यह प्रक्रिया चलती है। इसके बाद उस गणगौर को पानी आदि मे छोड़ दिया जाता है। आज इस मानव जीवन की भी यही स्थिति चल रही है। शारीरिक टीम टाम

मे पूरा ध्यान दिया जाता है, परन्तु समय आने पर वह साज-सज्जा की सामग्री छोड देनी पडती है। इस बाह्य सामग्री के सग्रह से कोई आत्मिक सुख प्राप्त नही होता, हा, उसे छोडते समय दु ख अवश्य होता है। अतः यदि आप सच्ची शाति प्राप्त करना चाहते है तो आध्यात्मिक गुणो की ओर विशेष रूप से लक्ष्य दीजिये। तभी आपकी आत्म साधना सफल होगी।

कथानक से प्रेरणा लो

बन्धुओ, आपके सामने कमल सैन का कथानक चल रहा है। एक राजकुमार होकर भी वह समता सिद्धान्त की स्थिति मे चल रहा है। किसी नारी के क्रन्दन-स्वरो ने उसके हृदय को द्रवित कर दिया है। यह कौन पुकार रहा है ? और क्यो पुकार रहा है ? कुछ ऐसे ही प्रश्न उसके मन मे समाधान के लिए उभर रहे है। अपनी शंका की शान्ति के लिए वह उस अज्ञात स्वर के पीछे चल पडा। कुछ ही क्षणो के पश्चात् उसने आर्तनाद करती हुई एक तरुणी को देखा। वह उसके पीछे-पीछे चला जा रहा है। थोडी देर चलने के बाद वह तरुणी एक भव्य भवन मे प्रवेश करती हुई दीख पडी। कुमार यह सब कुछ देख कर बडे असमजस मे पड गया। यह कौन स्त्री है ? जगल मे यह भव्य भवन कहाँ से आगया ? इस सभी रहस्य को वह जानना चाहता है। उसका संकल्प है कि यदि इस नारी पर कोई संकट आया है तो मैं उसका निवारण अवश्य ही करूंगा। आत्मिक तुलना मे यह मेरी बहिन के समान है। संकट के समय इसकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। सकट के समय कर्त्तव्य से मु ह मोड लेना कायरता है। मैं वीर पुत्र हूँ। समता मेरे जीवन का आदर्श है। अतः शक्ति भर मैं इसकी सहायता करूंगा।

राजकुमार किस प्रकार उस तरुणी से वार्तालाप आरम्भ करेगा, और तरुणी प्रत्येक प्रश्न का क्या उत्तर देगी ? इसका विवेचन यथा समय आपके सम्मुख रखा जायगा। यहाँ तो इतना ही समझ लेना आवश्यक है कि—समता ही जीवन है और विषमता मृत्यु है। यदि सचमुच ही आप लोग मृत्यु से जीवन को बचाना चाहते है तो समता दर्शन का आराधन कीजिये। तभी आपका जीवन मगलमय बन सकेगा।

लाल भवन
१३ अगस्त



अपना स्वरूप

प्रार्थना

जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द
जड़ चेतन मिश्रित—निश्चित पखे रे
कर्म शुभाशुभ थाय—
ते विभ्रम जग कल्पना रे
आतम, अनुभव न्याय ॥
जीवरे पार्श्व जिनेश्वर वन्द ॥

आज प्रभु पार्श्वनाथ भगवान की प्रार्थना की गई है। प्रार्थना की कड़ियों में पार्श्वनाथ भगवान को अनेक नामो से पुकारा गया है जिनमें चिन्तामणि पार्श्वनाथ के नाम से प्रभु को विशेष रूप से पुकारा जाता है। इस प्रसिद्ध नाम से मानव प्रभु को अधिक स्मरण करता है। कारण क्या है? चिन्तामणि पारसनाथ भगवन् चिन्ता के तमाम अंगो को नष्ट करने वाले हैं। चिन्ता, के जितने अंग हैं, चिन्ता की जितनी शाखाएं हैं उन सब को मिटाने वाले हैं। इसीलिये चिन्तामणि के रूप में पारसनाथ को अधिक याद किया जाता है। चिन्तामणि एक रत्न है। इस चिन्तामणि रत्न के पास बैठकर मानव जैसी जैसी कल्पनाएं करता है उस उस कल्पना के अनुरूप फल की उपलब्धि होती है। यदि वह उनके पास बैठकर धन की कामना करता है तो धन प्राप्त होता है। यदि वह अन्य पदार्थों की याचना करता है, उनकी कामना करता है तो वैसा फल उपस्थित हो जाता है। कामना मनुष्य के मन के भीतर रहने वाली भावना है उस भावना मे अनेक तरह की तरंगें हैं और अनेक तरह की चिताएं हैं। उन चिन्ताओ से मनुष्य चिन्तित रहता है और उन चिन्ताओ के जाल में इस प्रकार उलझ जाता है कि उसके लिये उस जाल को तोड़कर बाहर निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इन समस्त चिन्ताओ से मुक्ति पाने के लिए ही वह भगवान

चिन्तामणि पार्श्वनाथ की शरण मे जाना चाहता है, किन्तु उसके जीवन की निर्बलता उसे प्रभु के चरणो मे नही आने देती। वह विवशता की इन घडियो मे भगवान चिन्तामणि का स्मरण कर रहा है और कह रहा है कि हे प्रभो! मुझे चारो ओर से चिन्ताओ ने घेर लिया है आपका नाम चिन्ता हरण है, फिर मेरी चिन्ताएँ मुझे दु खी क्यो कर रही है? मैं इनसे छुटकारा चाहता हूँ।

उसकी यह प्रार्थना फलवती नही हो रही हैं। क्योकि वह अपने स्वलम्बन से भटक गया है जब तक वह अपनी चिन्ताओ के कारणो को नही मिटा पायेगा तब तक उसकी समस्त कामनाऐ, समस्त कल्पनाऐ "अभ्र पुष्प विडम्बना वत्" असफल ही रहेगी। मानव की इस विवश स्थिति मे कवि उद्बोधन देता हुआ कहता है कि—

"जड चेतन मिश्रित पणे रे
कर्म शुभाशुभ थाय"

जड और चेतन की मिश्रित अवस्था मे ही, शुभ-अशुभ सकल्प विकल्प जन्म लेते है। जब तक चेतन जड के जाल मे फसा रहेगा तब तक उसे सच्चा आत्मिक सुख प्राप्त नही हो सकता। जड एक आवरण है जो चेतन के वास्तविक प्रकाश को रोक रहा है। वर्ण, गध, रस, स्पर्श आदि से सयुक्त जड पुद्गलो मे फँसा हुआ हो वह दुःख पा रहा है। जब समता सिद्धान्त दर्शन की आन्तरिक चक्षुओ से वह अपने इन दु ख के कारणो को जान जायेगा, तभी इनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न कर सकता है। आत्मिक अनुभव की सही स्थिति के बिना उसे वास्तविक सुख प्राप्त नही हो सकता। उसकी चिन्ताऐ समाप्त नही हो सकती। अपने दु ख को घटाने के लिए वह अनेक पदार्थों का आश्रय लेता है, अनेक प्रयास करता है। वह सोचता है कि यह मेरा दु ख और दुर्भाग्य कैसे दूर हो? कैसे हटे? कैसे मै अपने जीवन को सदा सुख की स्थिति मे पहुँचा कर, निर्मल और पावन करूँ। मेरा यह जीवन सुखो से ओत प्रोत बना रहे। इस प्रकार वह प्रभु के चरणो मे बैठकर चिन्तामणि के रूप मे उन्हे याद करता है। भगवान का बतलाया हुआ जो स्वरूप है वह आपकी स्थिति से थोडा परे है। मानव कहता है—हे प्रभो, आप प्रार्थना करने वाले को कुछ देते हो, प्रार्थी व्यक्ति की इच्छाओ की पूर्ति करते हो लेकिन यदि प्रभु के उपदेश उस प्रार्थना करने वाले मानव के मन और मस्तिष्क मे ठीक तरह से उतर जाय, और वह प्राथी प्रार्थना करते-करते अपने जीवन के स्वरूप का ठीक तरह से अवलोकन कर ले तथा

इस जीवन के अन्दर जड तत्त्व का कितना सम्वन्ध है और चैतन्य का कितना प्रकाश है, जड और चेतन की मिश्रित अवस्था मे इस जीवन की घडियाँ कैसे गुजर रही है ? इस प्रकार का अवलोकन यदि वह जीवन की परिभाषा के अन्तर्गत समता दर्शन के साथ कर लेता है तो उसके जीवन मे अशुभ वृतियो का अभाव होकर ही शुभ का प्रादुर्भाव होगा। जब आत्मा शुभ कर्मों का उपार्जन करेगी जब शुभ ही शुभ की स्थिति बनेगी। तब शुभ ही शुभ का शुभफल प्राप्त होगा। जिससे कामनाओ की पूर्ति होगी, भावनाएँ तीव्र बनेगी, और पवित्र भावो के माध्यम से आत्मा ही चिन्तामणि के रूप मे प्रगट होगी यही अन्तर्मन का स्वरूप जीवन का स्वरूप है। जीवन की घडियो मे मनुष्य उसका ठीक अवलोकन करे और समता दर्शन से उसे देखे। उस समय अपने अन्दर ही चिन्तामणि का दृश्य उपस्थित हो जायेगा। चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रार्थना को अपने हृदय मे रख कर वह उसमे लीन हो जाये तो उसका अपना वास्तविक स्वरूप प्रकाशमान हो उठेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जो चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान के तुल्य यह मानव जीवन है उस मानव के जीवन मे जो एक दिव्य स्वरूप है, उस दिव्य स्वरूप का अवलोकन, मानव, आन्तरिक दृष्टि से परे होने के कारण नही कर पा रहा है। जीवन का समग्र रूप यदि देख ले तो उसका प्रयास सफल हो जाये। अपना ही जीवन उसे चिन्तामणि के समान दिखने लगेगा। जैसे चिन्तामणि रत्न कुछ देने वाला नही है और न ही चैतन्य चिन्तामणि पार्श्वनाथ ही कुछ देते हैं।

आप अपने से भिन्न किसी चिन्तामणि से कामनाओ की पूर्ति चाहते हैं यह आपका भ्रम मात्र है। चिन्तामणि तो आप स्वय ही हैं अपने आपको सम्भालिये, अपने आप को पहचानिए, चिन्तामणि रत्न का प्रभाव हस्तामलकवत् आपके सम्मुख होगा। समता दर्शन की वास्तविक स्थिति के दर्शन से प्राप्त चैतन्य का स्वरूप ही चिन्तामणि है, उसे हाथ से मत जाने दीजिए इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार से आपको सफलता प्राप्त होने वाली नही है। आज का युग विज्ञान का युग है राष्ट्र मे नित नये आविष्कारो का उदय हो रहा है। आज का विज्ञान माइक्रोस्कोप—(दूरवीक्षण यन्त्र) तक पहुँच चुका है। यत्रो के प्रयोग ने आज भौतिक द्रव्यो की दूरी को अत्यन्त समीप लाकर रख दिया है। दूरवीक्षण यन्त्र या माइक्रोस्कोप से मानव वहुत दूर की चीज जैसी है वैसी ही देख सकता है। वस्तु का यह सामान्य स्वरूप भी दर्शन है। शास्त्रीय दृष्टि से हम अवलोकन करते हैं तो आत्मा के साथ जड कर्म वर्गणा का सम्बन्ध जुडा हुआ है। जैसे ज्ञाना-

वरणीय कर्म ने ज्ञान को ग्राच्छादित किया है वैसे ही दर्शन की शक्ति को दर्शनावरणीय कर्म ने ग्राच्छादित किया है। सामान्य ज्ञान को भी दर्शन की स्थिति मे माना है। चाहे माइक्रोस्कोप से देखा जाये या हमारे इन चर्म चक्षुग्रो से देखा जाये, वस्तु को चश्मा लगाकर देखा जाये, या बिना चश्मे के। आँखो की जितनी देखने की क्षमता है उतना तो दिखेगा ही। इस दिखने से सामान्य स्वरूप ही प्रत्यक्ष होता है। यह सामान्य स्वरूप दर्शन है।

ग्राप तत्वार्थ सूत्र की दृष्टि से देखिये। कहा है कि—

"तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग् दर्शनम्"

वस्तु के सामान्य स्वरूप को देखना दर्शन है। तत्त्व के ऊपर श्रद्धा करना उसे भी दर्शन माना गया है। तीसरी दृष्टि से भी ग्रवलोकन करे और ज्ञान की दृष्टि से भी मनुष्य देखे तो वह भी एक ग्रपेक्षा से, दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति से, दर्शन है। तीनो दर्शन मनुष्य के पास है। तीनो सम भी बन सकते है और विषम भी बन सकते है। माइक्रोस्कोप से दूर की वस्तु को सामान्य रूप से देखे तो आभास होता है कि यह वस्तु ऐसी है ग्रौर उसका वह निर्णय करके आगे चल पडता है लेकिन यदि उसकी विशेष खोज होती है तो वह निर्णय करता है कि उसने जो पहले देखा था वह सामान्य रूप से था ग्रौर वह गलत है।

भौतिकता की घुड़दौड़

चन्द्रमा के विषय मे मै कुछ कहना चाहता हूँ। चन्द्रमा पर जब अपोलो ११ नही पहुँचा था तो वैज्ञानिको का सिद्धान्त था कि हम यह जो चन्द्र का पिण्ड देख रहे हैं यह ग्राकाश का तत्त्व नही है। किन्तु यह हमारा ही पडोसी है और पृथ्वी का टुकडा है। पृथ्वी को वैज्ञानिको ने ग्रह माना है और इसी पृथ्वी का टुकडा टूटकर चन्द्रमा के रूप मे आ गया। प्रशान्त महासागर जहाँ कि पानी ही पानी भरा हुआ है, इसी स्थल का पृथ्वी खण्ड टूटकर आकाश मे चला गया वहाँ जाकर सूर्य से प्रकाशित होने लगा ग्रौर जिस प्रकार पृथ्वी चमकती है उसी प्रकार यह भी चमकने लगा। इसी को दुनिया ने चान्द का नाम दे दिया। यह स्थिति ग्रपोलो ११ के चान्द पर उतरने से पहले की है, ऐसा वैज्ञानिको ने सामान्य दृष्टि से एक प्रकार का निर्णय किया था। लेकिन जब अपोलो ११ वहाँ पहुँच गया, वहाँ से जब पत्थर ग्रौर ग्रन्य सामग्री लेकर वैज्ञानिको की प्रयोग-

शाला मे आया, और वैज्ञानिको ने उसका परीक्षण किया तो उनको एक विशेष दर्शन का ज्ञान हुआ। तब उन्होने आगे का अनुसन्धान किया। नही, नही हम सोचते थे कि चान्द पृथ्वी का टुकडा नही है। यह तो आकाश से सूर्य का टूटा हुआ टुकडा है अत सूर्य का पिण्ड है। यह अपोलो ११ की रिपोर्ट आने और परीक्षण करने के बाद का कथन है। पहले दूरवीक्षण यन्त्र से देखा हुआ ज्ञान गलत हुआ और बाद मे अपोलो की रिपोर्ट और वहाँ से लायी हुई सामग्री के परीक्षण से यह ज्ञान ठीक प्रतीत होने लगा। लेकिन दूसरे वैज्ञानिको का कहना है कि यह सूर्य का टुकडा नही है यह तो बादलो का घनीभूत पिण्ड है। कहने का मतलब यह है कि दूर से देखी हुई चीज कभी-कभी भ्रान्ति भी उत्पन्न कर देती हैं। दूर की चीज चाहे उप-नेत्र चश्मे से देखे, चाहे दूरवीक्षण यन्त्र से और चाहे सामान्य आँखो से देखे हमारे उस देखने मे भी भ्रान्ति हो सकती है। और विषम रूप आ सकता है।

आज विश्व मे चारो ओर भौतिकता की घुडदौड हो रही है। धरती से आकाश तक वैज्ञानिक खोजो का ताता लग रहा है। पृथ्वी का पुत्र आज आकाश निवास की बाते कर रहा है। उसने धरती का कोना-कोना छान मारा है। कभी-कभी उसे अपनी सफलता पर बडी प्रसन्नता हुई है। किंतु ज्योही उसके कानो मे किसी दूसरे वैज्ञानिक की नई खोज की ध्वनि पडी कि वह एकदम खिन्न चित्त हो जाता है। क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा क्यो हुआ ? उसका सुख एकदम दु ख मे परिणत क्यो हो गया ? इसका उत्तर सीधा सा है। उसकी सफलता अधूरी रही है। उसमे पूर्णता नही है। मनुष्य का जीवन पूरा हो जाता है पर भौतिक सफलता कभी पूर्ण नही होता। बाहर की सफलताओ का सम्बन्ध इच्छाओ से होता है, और इच्छायें कभी पूर्ण नही होती। शास्त्र मे कहा है कि —

"इच्छाहु आगास समा अ णतिया,"

इच्छाये आकाश के समान अनन्त होती हैं, उनका कभी अन्त नही होता एक इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करिये दूसरी इच्छा मु ह उभार लेगी। यह इच्छाओ का ताता ही जाल बनकर जीवन के लिए जजाल बन जाता है। यह जजाल किसी और का बनाया हुआ नही है, यह तो अपनी ही भूलो का परिणाम है, अनात्म तत्त्वो की अभिलाषा ने मानव को पीछे की ओर धकेल दिया है, अपना वास्तविक स्वरूप हमसे पिछड गया है। हम और हमारी पौद्गलिक इच्छायें भिन्न-भिन्न दो अवस्थायें हैं, इन्हे समझना

हो समता सिद्धान्त दर्शन का मुख्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य तक वही पहुँच सकता है, जिसका आत्मिक ज्ञान कुछ मात्रा मे जागृत हो गया हो।

हा तो मैं कह रहा था कि अपने सुप्त ज्ञान को जगाइए । अज्ञान का अवरण हटेगा तभी ज्ञान जागेगा । इसके जागते ही आपका चैतन्य स्वरूप निखर उठेगा। तब आप अन्धकार से मुक्त हो जायेगे। आध्यात्मिक प्रकाश मे आपको अपना हित अहित सब कुछ दिखने लगेगा। यहा आकर आप विवेक के मुख्य द्वार पर आ खडे होगे । यह ससार और इसके सुख आपको अपनी ओर नही खीच पायेगे। बात ठीक भी है—असली दूध, घी लेने पर आटे का धोवन कौन पीयेगा।

बन्धुओ! इस जड चेतन निर्मित अवस्था मे ही आतम अनुभव के न्याय को देखे और उस न्याय को देखने के लिए समता के उस दूरवीक्षण यन्त्र की व्यवस्था यथा स्थान जमा ले। उसकी व्यवस्था यदि ठीक नही बिठायी गयी तो आप जीवन के स्वरूप को सही रूप मे ठीक से नही देख पावेगे। जिसके बिना आप चैतन्य का ज्ञान-विज्ञान कुछ भी प्राप्त नही कर सकेगे। आप अपने लक्ष्य से भटक चुके है अतः सर्वप्रथम आपको दृढता के साथ अपना लक्ष्य निर्धारित करना है।

विद्यार्थी अध्ययन की दृष्टि से शाला मे पहु चता है और शाला मे पहुँच कर लक्ष्य बनाता है कि मुझे एम० ए० का अध्ययन करना है, इसके लिए वह अध्यापक के पास जाता है। वह कहता है कि मैं एम० ए० के लक्ष्य से उपस्थित होना चाहता हूँ। वह यह नही कहता है कि मास्टर साहब मैं आपके स्कूल मे आया हूँ मेरे लिए एम० ए० का प्रश्न बहुत बडा है। इसलिए आप अपने एम० ए० के रूप मे मुझे वह निकाल कर दे दे। छात्र ऐसी माग क्यो नही करता? वह तो यह कहता है कि एम० ए० का स्वरूप कैसे प्राप्त हो। वह यह सोचता है कि मास्टर साहब के बताये हुए मार्ग पर चलकर प्रयत्न करने से ही एम० ए० की शक्ति अपने मे प्राप्त कर पाऊंगा। इस दृष्टि से छात्र प्रथम कक्षा मे प्रवेश करता है। आतम विश्वास रखता है कि यह वर्णमाला है जिसको मैं सीख रहा हूँ वही एम० ए० के लक्ष्य तक पहूँचा देगा। वर्णमाला को हृदय मे स्थान देकर अपनी आत्मा मे एक लक्ष्य स्थिर कर लेता है। एक धुन रहती है उसकी कि मै एम० ए० मे पहुँचूँ और डिग्री प्राप्त करूँ। जिसके सामने यह लक्ष्य बन जाता है वह छात्र एक दिन एम० ए० तक पहुँच कर एम० ए० की डिग्री प्राप्त कर लेता है। उस छात्र के लिए रात और दिन एक समान

रहते हैं। रात दिन एक ही धुन रहती है। कभी-कभी स्वप्न मे भी दिन मे पढे पाठ का उच्चारण करने लग जाता है। यदि लक्ष्य पर पहुँचने के लिए लक्ष्य का निर्धारण किये बिना ही वह इधर-उधर मन को डोलायमान करके खेल कूद आदि मे लग जाता हैं तथा उसे जो भी अध्ययन कार्य दिया जाता है उसको भली प्रकार ग्रहण नही कर पाता तो वह अपनी कक्षा मे अनुत्तीर्ण हो जाता है। अपने निर्धारित एम० ए० के लक्ष्य तक पहुँचना उसके लिए कठिन हो जाता है। व्यवहारिक जीवन मे छात्र का उदाहरण है। छात्र के समान हमे भी सर्वप्रथम अपना लक्ष्य निर्धारित करना है हमारा अध्ययन समता सिद्धात दर्शन के धरातल पर होना चाहिये।

सौन्दर्य का मोह

आपको अपने हृदय मे यह बात पूर्ण विश्वास पूर्वक जमा लेनी चाहिये कि हम जैसा सकल्प करेंगे, जैसा विचार करेगे, जिस प्रकार समता दर्शन का सहारा लेगे, जिस ढग से सोचेंगे वैसे ही बन जायेगे। ऐसी स्थिति मे हमे सन्देह से दूर रहना आवश्यक है। मनुष्य का सकल्प जब इतना दृढ बन जाता है तब वह अपने जीवन मे जो भी पाना चाहता है वही उसे मिल पाता है। जम्बू चरित्र मे एक गृहस्थ के जीवन का प्रसग आया है। वह अपना गृहस्थ जीवन बीता रहा था। उसमे रहते हुए उसने अपने जीवन मे दर्शन के कुछ सिद्धात तो बना लिये परन्तु वह समता दर्शन को प्राप्त नही कर पाया। उसने यह समझा कि जीवन के लिए विवाह होना आवश्यक है। पत्नी की प्राप्ति की ओर उसकी भावना बढी, उसके विचारो का झुकाव उसी ओर चल पडा। उसे आसक्ति ने जकड लिया और उसके सकल्प विकल्पो का ताता उसी ओर बढने लगा। पत्नी का रूप सौन्दर्य उसकी आँखो मे झलकने लगा। इस समय वह अपने चैतन्य स्वरूप से पिछड गया है। परिणामत यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवतित।दृशी" के अनुसार उसे पत्नी प्राप्त हो गई अपनी पत्नी के रूप में उसकी आसक्ति इतनी बढ गई कि वह सदा यही सोचता रहता था कि मेरी पत्नी का रूप सौन्दर्य सदा सर्वदा इसी प्रकार का आकर्षक बना रहे। ऐसी परिस्थिति और भावनाओ मे उलझा हुआ, वह एक दिन बीमार हो गया, और धीरे-धीरे उसका रोग असाध्य रोग की स्थिति ग्रहण कर गया। उस समय भी उसका ध्यान प्रभु की ओर नही था और न उसका ध्यान अपने आत्मीय चिन्तामणि की ओर था। उसका ध्यान न जीवन के वास्तविक स्वरूप की ओर था। वह तो सर्वतो भावेन यह देख रहा था कि मेरी पत्नी कितनी रूप-

वान है, उसका रूप कितना अनुपम है। सयोगवश उन्ही दिनो उसकी पत्नि के सिर मे फोडा हो गया। जिसके सिर मे फोडा हो जाता है उसका रूप सौन्दर्य बिगड जाता है। यहा यह समझ लेना आवश्यक है कि जिस मनुष्य की दृष्टि जिसका दर्शन मृत्यु पर्यन्त बुरा बना रहता है, समता के साथ नही रहता है, वही व्यक्ति पत्नी के रूप को ही अपने जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान देता है। यही दशा उसकी हो गई। अन्तिम घडिया चल रही हैं, आयुष्य समाप्त होने वाला है, अगले जन्म का प्रसग सन्मुख है। आयुष्य-बध के समय पर भी उसकी यही भावना थी, यही सकल्प था कि मेरी पत्नी का रूप ही सब कुछ है। उस समय उसके जीवन दर्शन का मोड विपरीत था। उसके जीवन को विषमताओ ने घेर लिया था। परिणाम-स्वरूप आयुष्यबध हुआ और मनुष्य जीवन को समाप्त कर वह अपनी पत्नी के फोडे मे, कीडे के रूप मे जाकर उत्पन्न हो गया। आप सोचिए उसने क्या फल प्राप्त किया, वह कहा से कहाँ पहुच गया। उसने अपने जीवन के लिये क्या परिणाम प्राप्त किया ? उसे अपनी करनी का यह फल प्राप्त हुआ। आप समता के साथ सोचिये। दुनिया के पदार्थो के पीछे मनुष्य को दीवाना नही बनना चाहिए। उनके पीछे लगकर उसे हाय-हाय नही करनी चाहिये। मनुष्य को इन पदार्थों के साथ सम भाव से चलना चाहिये। यदि आप अपने वर्तमान मे समभाव से चलेगे तो इसी जीवन मे आपको आनद और उल्लास का अनुभव होगा। जीवन को सर्वागीण सुखी बनाने के लिए उसकी महत्वपूर्ण स्थिति का सरक्षण करना आवश्यक है। प्रसंगवश आपके सम्मुख एक शास्त्रीय रूपक रख रहा हूँ।

एक महाराजा थे। सासारिक पदार्थों की शुभ-अशुभ प्रवृत्तियो के कारण उनका मन सदा अव्यवस्थित रहता था। अच्छे पदार्थ प्राप्त होने पर उन्हे जितना सुख का अनुभव होता था, बुरे पदार्थो को पाकर वे उतने ही खिन्न हो जाते थे। शुभ-अशुभ का सघर्ष उन्हे सदा डावाडोल बनाये रखता था। जहा कुछ अच्छे पदार्थ सामने आये, वे प्रसन्न हो उठते। इसके विपरीत बुरे पदाथ पाकर उन्हे रोना आ जाता था। शुभ की प्रशसा और अशुभ की निन्दा यही उनके जीवन मे सुख और दुख के कारण थे। वे "क्षणे रुष्टा. क्षणे तुष्टाः" वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे थे। उनके एक दीवानजी थे। वे बडे ही चतुर और पदार्थो की वस्तु स्थिति के ज्ञाता थे। उन्हे सत्य और असत्य दोनो का ज्ञान था। जब कभी वार्तालाप का प्रसग आता तो महाराज दीवानजी से प्रश्न करते, देखिये यह कैसी हवेली है ? कैसा सुन्दर भवन है ? दीवानजी कहते राजन ? यह पदार्थो का

स्वभाव है, वस्तु का स्वरूप है। अच्छे से बुरा और बुरे से अच्छा सदा बनता रहता है। इनकी उलझन मे हमे अपना सकल्प नही बिगाडना चाहिये। इनके आकार प्रकार को देखकर जो अपने सकल्प को बिगाडता है वह दुःख पाता है। पदार्थ को जैसा है वैसा ही स्वभाव से देखो। महाराज इस समाधान से सतुष्ट नही थे। वे कहते दीवानजी तुम नास्तिक हो, जो बुरा है वह बुरा ही रहेगा और जो अच्छा है वह अच्छा ही रहेगा। बुरा कभी अच्छा नही हो सकता है और अच्छा बुरा नही बन सकता है। पदार्थ को लक्ष्य करके जो जैसा सकल्प करता है वह वैसा ही बन जाता है। दीवानजी ने फिर समझाते हुए कहा राजन्, यह आपके देखने और सोचने का ढग है। मेरे सोचने का यह ढग नही है। ससार मे जितने पदार्थ है वे अपने २ स्वभाव और स्वरूप मे है। अच्छाई और बुराई आपके अपने विचारो से जन्म लेती है। एक दिन भोज का प्रसग आया। सभी कर्मचारी और राजा भोजन करने बैठ गये। जब भोजन समाप्त हो गया तो सभी कर्मचारियो को सम्बोधित करते हुए महाराज बोले देखिये आज भोजन कैसा बढिया बना है। जो साधारण स्थिति के कर्मचारी थे उन सब ने महाराज की हाँ मे हाँ कर दी। वे कहने लगे कि सच, आज का भोजन बढिया ही था। आज भोजन करके बडा ही आनन्द आ गया। वही दीवानजी भी पक्ति मे बैठे हुए थे। महाराज ने उनसे पूछा कहिए आज का भोजन कैसा रहा? दीवानजी कहने लगे, राजन् अच्छे से बुरा और बुरे से अच्छा होता ही रहता है। आप भोजन जैसी तुच्छ वस्तु के विषय को लेकर सकल्प बिगाड रहे हैं। यह अच्छा है इस विचार से अच्छे पर आसक्त होना उपयुक्त नही है, पदार्थो की आसक्ति कभी अच्छी नही होती। महाराज ने कहा—दीवानजी? तुम्हारी बात हमे पसन्द नही है। महाराज यह चाहते थे कि इस व्यक्ति को दीवानजी पद से हटा दिया जाय परन्तु उनके समान उनके राज्य मे कोई बुद्धिमान नही था। एक दिन महाराजा शहर से बाहर की ओर भ्रमण के लिए जा रहे थे। रास्ते मे गटर की दुर्गन्ध इतनी व्याप्त थी कि महाराज उसको सहन नही कर सके उन्होने कपडे से अपनी नाक को ढाक लिया। उनके साथ जितने भी व्यक्ति थे उन्होने भी ऐसा ही किया लेकिन दीवानजी ने कुछ नही किया और वे वहा मस्ती के साथ समभाव से चलते रहे। महाराज की दृष्टि दीवानजी की ओर मुडी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पूछ बैठे दीवानजी क्या आपको गटर की दुर्गन्ध नही आ रही है। क्या आपकी घ्राणेन्द्रिय नष्ट हो गई है? दीवानजी का उत्तर था कि राजन्, इन पदार्थो मे दुर्गन्ध है और

दुर्गन्ध का स्वभाव घ्राणेन्द्रिय मे प्रवेश करना है। प्रत्येक पदार्थ का अपना निजी स्वभाव होता है। जब वह अपने स्वभाव को नही छोडता तो हम अपने समता स्वभाव को क्यो छोडे। हमे भी सभी स्थितियो मे समभाव पूर्वक रहना चाहिए। इन्द्रियो के विषय मे फसकर अपनी भावनाओ को चचल नही करना चाहिए। उनमे राग द्वेष की परिणति नही लानी चाहिए।

एक उलझन जो सुलझ गई

राजा और दीवान का विचार-सघर्ष अभी समाप्त नही हो पाया था। मनुष्य के हृदय मे जब कोई विपरीत भाव घर कर लेता है तो उसका निकलना बडा कठिन हो जाता है। राजा और दीवानजी के विचारो मे पूर्व और पश्चिम का अन्तर था। राजा की तो एक रट थी कि गदा सदा गदा ही रहता है। वह अच्छा नही हो सकता। दीवानजी इस विचार से सहमत नही थे। वे मानते थे कि अच्छा बुरा हो सकता है और बुरे को प्रयत्नो के द्वारा अच्छा भी बनाया जा सकता है। उनका निर्णय युक्ति सगत था। युक्ति से मुक्ति होती है। यह एक न्याय सम्मत उक्ति है। महाराज को समझाने के लिए उन्होने एक दिन फिर प्रयत्न किया। विश्वस्त नौकरो के द्वारा एक घडा गटर का पानी मगवाया गया। अनेक प्रयत्नो द्वारा उसे शुद्ध किया गया। अब वह सुगधित, स्वादिष्ट और पेय बन गया। इस प्रक्रिया का महाराज को कोई ज्ञान नही हो सका। इस तथ्य को दो चार विश्वस्त लोग ही जानते थे। दीवानजी ने उन लोगो से कहा कि महाराज जब भोजन करने बैठे तो उस समय पीने के लिए पानी की व्यवस्था मे इस पानी का प्रयोग किया जावे। इस प्रकार सभी व्यवस्था होने पर ज्योही महाराज भोजन करने बैठे और उनको पानी की आवश्यकता हुई तो उन्होने उस पानी को पिया। उस पानी के स्वाद और सुगधि से मन प्रफुल्लित हो गया। वे आश्चर्य पूर्वक रसोइये की तरफ देखने लगे और कहने लगे कि यह किस कुए का पानी है? रसोइये चौक गये। उन्होने देखा कि कही कोई गडबड तो नही हो गई। पानी मे कही कोई खराबी तो नही है। उन्होने डरते हुए कहा हूजूर यह पानी हमने नही मंगाया है। यह तो दीवानजी के घर से आया है। महाराज मन मे सोचने लगे कि दीवानजी बडे स्वार्थी है। वे रोजाना ऐसा सुगधित और स्वादिष्ट पानी पीते है। और मुझे जिस कुऐं का पानी मिलता है वह तो

ऐसा स्वादिष्ट नही है। दीवानजी को बुलाने की आज्ञा दी गई। रसोइये थर-थर काप रहे थे। उधर दीवानजी सोच ही रहे थे कि बुलावा आने ही वाला है। दीवानजी पहले ही तैयार थे। राजा की आज्ञा प्राप्त होते ही वे उपस्थित हो गए और बोले कि हुजूर क्या आज्ञा है सेवक को ? महाराज कहने लगे तुम बडे स्वार्थी हो। जब भी मैं कोई प्रश्न करता हूँ तो एक ही रट लगाते रहते हो कि पुद्गलो का स्वभाव है, समभाव से देखिये और समतादर्शन मे देखिये। इन बातो से मुझे चकमा देते रहते हो और ऐसा सुगधित और स्वादिष्ट पानी अकेले पीते रहते हो। यह चकमा देने की वृत्ति मुझे अच्छी नही लगी। किस कुए का पानी मगाते हो ? क्या उस कुए मे पानी कम है ? रोजाना हमारे लिए भी यही पानी क्यो नही भेजते ? दीवानजी ने उस समय भी उसी समतादर्शन से जवाब दिया कि राजन् यह तो पुद्गलो का स्वभाव है, अच्छे और बुरे होते ही रहते है। इनके पीछे अपने सकल्प को न बिगाडें। अच्छे पदार्थ के प्रति आसक्ति होती है तो सकल्प बिगडता है और इससे ज्ञानकी पर्याये धुधली हो जाती है। वस्तु से द्वेष का परिणाम शुभ नही होता है। यदि हम समभाव रखते हैं तो सकल्प नही बिगडता। दीवानजी ने कहा—राजन् मैं उसी कुए का पानी पीता हूँ जिस कुए का पानी आप पीते हैं।

फिर आज का पानी कहाँ से आया, महाराज ने प्रश्न किया।

दीवानजी ने कहा राजन् आगे का विज्ञान मत पूछिये। यदि पूछेगें और समतादर्शन मे नही रहेगें तो दुख होगा।

नही नही, बतलाओ कहा से आया ?

हुजूर, जिस गटर के सम्मुख आपने नाक बन्द किया था और मैंने नाक खुला रक्खा था. यह उसी गटर का पानी है।

क्या ? गटर का पानी। कभी नही हो सकता तीन काल मे भी नही हो सकता। क्या खराब पानी कभी अच्छा हो सकता है ?

'हुजूर, प्रत्यक्षे किम् प्रमाणम्"। मैं ठीक तरह से बतलाये देता हूँ विश्वस्त आदमियो को मेरे साथ भेजिये। महाराजा ने अपने विश्वस्त आदमियो को भेजा और उस गटर का पानी लाया गया अनेक प्रक्रियाओ द्वारा साफ सुथरा बना कर कहा कि राजन् ? अब पान करिये नृप ने कहा कि मैं गटर का पानी कैसे पीऊँ ?

राजन् ! आप स्वादिष्ट और सुगन्धित पानी पी चुके हैं। यह अब गटर का पानी नही रहा। प्रयोग से शुद्ध हो गया है। विज्ञान पर द्वेष नही करना चाहिए। इस पानी की शद्धि से यही सिद्ध होता है कि प्रयत्न से बुरा भी अच्छा हो सकता है। श्रेष्ठ मनुष्य की सगति से बडे-बडे अश्रेष्ठ मानुष (पापी) धर्मात्मा हो गये।

बात राजा की समझ मे आगई। उन्होने जब उस पानी को पिया तो उन्हे उसका वही स्वाद आया। वे मन ही मन कहने लगे कि दीवानजी का कथन सत्य है। अब तक मै भाव विकृति मे फसा हुआ था, इसी कारण मेरा जीवन अशात था। समता दर्शन पर चलने के कारण ही दीवान सुखी है, तथा सत्य के अत्यन्त निकट है। मुझे भी इसका अनुकरण करना चाहिए तभी मै सुख प्राप्त कर सकू गा। अन्त मे ऐसा ही हुआ। महाराजा ने भी समता दर्शन को अपनाया। अब उन्हे प्रत्येक क्षण आनन्द का अनुभव होने लगा।

कितनी ही विपरीत परिस्थितिया क्यो न आजाय किन्तु जो समता भाव मे रहने वाले हैं तथा समता भाव से पदार्थों को देखने वाले है उनको कभी कठिनाई नही आती है। यह एक एक रूपक है, समता दर्शन को समझाने की दृष्टि से। उसे आपके सम्मुख रखा गया है। इसी दृष्टि से अब आपके सामने कमलसेन का चरित्र रख रहा हूँ। वह राजकुमार है लेकिन उसके जीवन मे समता दर्शन है। वह अटवी मे पहुँचता है। वहा वह सोच रहा है कि जिस माता की दुख भरी आवाज मैने सुनी थी, उसमे कौनसा तथ्य छिपा हुआ है। उस माता को इतना दुख क्यो हुआ ? ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी सकट मे फसी हुई है। उसको कोई सता रहा है। इसी कारण वह हाय हाय कर रही है। जिस माता को ज्ञान न हो वह घर मे भी रोने लग जाती है और किसी चूहे का भय आ जाय तो चिल्लाने लग जाती है। धारणी राणी और चन्दन बाला सारथी के साथ जगल मे खडी थी पर वह वहा रोई नही। उसने चन्दन बाला के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया और वही चन्दन बाला एक महासती के रूप मे प्रकट हुई। इसी प्रकार क्या यह भी कोई महासती है ? सामने भव्य भवन है और सुन्दरी भवन पर चढ रही है। यह व्यर्थ ही चिल्लाने वाली नही हो सकती। इस रहस्य को समझे बिना एक तरुणी का दुःख नही मिटाया जा सकता। यह सोचकर उसने अपने चरण आगे बढा दिये।

मैं मानव हूँ। दूसरे जीवो के दु:खो को दूर करना मेरा कर्त्तव्य है। यदि मै अपने जीवन मे ऐसा न कर सका तो फिर मेरा यह जीवन व्यर्थ है। इन्ही भावो को लेकर वह आगे वढ रहा है।

कमलसेन उस विराट जगल मे भी अपने जीवन के समभाव को नही छोडता। वह मस्ती के साथ आगे वढता चला जा रहा है। उसने निर्णय किया कि मैंने जो इस भवन को देखने का सकल्प किया हैं, मैं इसे अवश्य ही देखूगा और इस तरुणी के दु खो का निवारण करूगा। यह मेरे मानवीय कर्त्तव्य का परीक्षा काल है। किसी को दु ख मे देखकर उसकी यथा शक्ति सहायता न करना मानवता के कर्त्तव्यो की अवहेलना है।

उसको कुछ ऐसा भी भान हो रहा है कि जैसे-जैसे वह आगे वढता जा रहा है वैसे-वैसे ही वह भव्य भवन आगे भागता जा रहा है। अपने दृढ सकल्प के सहारे वह उस भव्य भवन के समीप पहुँच गया। अव भवन की सीढियाँ उसके चरणो के तले हैं। वह उन पर निर्भयता पूर्वक वढ़ता चला जा रहा है।

बन्धुओ! वह कन्या जो कि जगल मे चिल्ला रही थी और जोर-जोर से आवाज दे रही थी भवन मे प्रवेश करती है। कुमार के सामने आकर उसने अपनी सहज मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया, और भावपूर्ण मुद्रा मे उसका अभिनन्दन करते हुए बोली कि आज आपके आगमन से यह भवन पवित्र हो गया है। यह सुनकर राजकुमार कमलसेन को बडा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि मैं किसी रहस्यपूर्ण जगत मे आ गया हूँ मैं तो किसी स्त्री के दुख भरे शब्दो को सुनकर उसके दुख मिटाने के लिए यहा आया था किन्तु यह तरुणी तो क्रन्दन करने वाली स्त्री नही लगती है। उसमे और इसमे तो धरती आकाश का अन्तर है। वह तो कोई दुखी कन्या थी पर यह तो सव प्रकार से सम्पन्न और सुखी दीख रही है। इसके जीवन मे दुख कहा? खैर कुछ भी हो, इस रहस्य का निर्णय करना भी आवश्यक है, यही सोच कर उसने तरुणी से प्रश्न किया कि—

क्यो वहिन? थोडी देर पहले जगल मे आप ही रुदन कर रही थी? हा नाथ, हा नाथ क्या ये शब्द आप ही के थे?

हा राजकुमार मैं ही थी। तरुणी ने उत्तर दिया।

आपने ऐसा क्यो किया? आपके ऊपर कौनसी आपत्ति आ गयी थी, मैं इस जगल मे आपको खोजता हुआ आ रहा हूँ। मैंने कही पर भी कोई उपद्रव नही देखा।

फिर तुम्हारे जीवन मे यह स्थिति कैसे आई ? राजकुमार ने कहा।

राजकुमार तुम उस आवाज को भूल जाओ वह मेरी ही आवाज थी अब तुम उसकी तरफ ध्यान न दो, उसकी ओर का चिन्तन छोड दो । अभी वर्तमान की बात करो, भूतकाल की चिन्ता मत करो क्योकि जीवन का स्वरूप वर्तमान ही होता। उसीके विषय मे चिन्तन करना चाहिए। मेरे सकेत को समझने का प्रयत्न करिये। राजकुमार असमजस मे पड गया। वह सोचने लगा कि मेरे साथ कही कोई धोखा तो नही हो रहा है। परन्तु अब कुछ भी हो मैने बचपन से जो शिक्षा प्राप्त की है और जो कुछ धर्म की स्थिति का स्वरूप समझा है तथा जीवन के सम धरातल को देखा है उसके आधर पर मुझे इस विकट स्थिति मे भी विचलित नही होना चाहिए। ये पदार्थ मनुष्य के सामने अनेक रूप, अनेक आकृतियो मे उपस्थित होते रहते है, आज यह महल को ही अपने जीवन का सब कुछ समझ रही है, अपने सौन्दर्य पर अत्यधिक आसक्त हो रही परन्तु यह मेरे सामने कुछ भी नही है। यह पुद्गलो का स्वभाव है अच्छे से बुरा और बुरे से अच्छा हो सकता है। सुधरा व्यक्ति खराब बन जाता है और खराब व्यक्ति कभी प्रयास करने पर सुधर भी जाता है। मेरा दृष्टिकोण पदार्थ के पीछे नही है, मेरा दृष्टिकोण समभाव का है। वह पदार्थ को समभाव से देखने का प्रयत्न करता है इस प्रकार का चिन्तन करने से उसके मन मे किसी प्रकार का विकार भाव, अशुभ भाव उदय नही होगा । अशुभ सकल्प न आने से जीवन मे सदा चिन्तामणि भगवान के स्वरूप का ही चिन्तन चलेगा। इन्ही विचारो के चिन्तन मे वह यह सोच रहा है कि मेरा जीवन चिन्तामणि के समान है। "मै दूसरो की कामना पूर्ण करने वाला हूँ। मुझे दूसरो के पीछे भटकना नही है । जब इस प्रकार की स्थिति आजाती है और उसीके समान देव गुण आ जाते है तो मनुष्य अपने मार्ग से विचलित नही होता ।

बन्धुओ। इस जड चेतन की मिश्रित अवस्था मे ही यह जीवन है, राजकुमार का जीवन भी इसी मे है और आपका भी। जहा जैसे सकल्प होते हैं। वहा वैसा ही परिणाम सामने आ जाता है। यह केवल मै आपको सकेत दे रहा हूँ आप कोई बढिया पोशाक पहनकर उपस्थित होते है तो लोगो का ध्यान अनायास ही आपकी ओर आजाता है। राजकुमार का जीवन जड चेतन की मिश्रित अवस्था के चिन्तन मे चल रहा है। उसने

जो संकल्प किया है जो वह शुद्ध स्वरूप के साथ लगा हुआ है। शुद्ध स्वरूप का रूप आने पर जीवन मे राग द्वेष नही रहता। इस स्थिति मे वह तटस्थ भाव से चिन्तन कर रहा है।

कहने का आशय केवल यही है कि अपने स्वरूप का ज्ञान सव के लिए आवश्यक है इस ज्ञान के द्वारा ही समभावपूर्वक अशुभ को शभ मे वदला जा सकता हे समता दर्शन का यही रहस्य है। इसे समझने पर ही आपको यह ज्ञात होगा कि आपका यह जीवन भी चिन्तामणि भगवान के समान बन सकता है।

१३-८-७२
लाल भवन



आध्यात्मिक स्वतन्त्रता

प्रार्थना

श्री महावीर नमो वर नाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी ।
धन धन जनक 'सिद्धारथ' राजा, धन 'त्रिशलादे' मात रे प्राणी ॥
ज्या सुत जायो गोद खिलायो, 'वर्धमान' विख्यात रे प्राणी ।
श्री महावीर नमो वर नाणी शासन जेहनो जाण रे प्राणी ॥

यह भगवान् महावीर की प्रार्थना है । भारतीय धरातल पर आज उन्ही का आध्यात्मिक शासन चल रहा है । प्रवचन उनके शासन की बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है । उन्होने अपनी जीवन साधना में जो केवल ज्ञान, केवल दर्शन की असीम आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त की थी। उसी असीम आत्म ज्योति की प्रकाशमान ज्ञान किरणे द्वादशाङ्गी वाणी-प्रवचन रूप मे आज भी विद्यमान है । उन महत्वपूर्ण प्रवचनो का सर्वप्रथम सग्रह गणधर देवो ने किया था । भगवान् के इन उपदेशो से पहले भी असख्य जीव लाभान्वित हो चुके है, और आज भी हो रहे है । मानव यदि भगवद् वाणी के उन पवित्र भावो को हृदय मे उतारले तो उसका बडा भारी लाभ हो सकता है । केवल ज्ञानियो की वाणी मे एक विशेष प्रकार का प्रभाव होता है । सामान्य प्राणियो के वचनो मे और प्रभु के वचनो मे धरती आकाश का अन्तर होता है । अल्पज्ञो की वाणी मे जहा सीमित प्रभाव होता है जबकि सर्वज्ञो के प्रवचनो मे एक असीम आत्मिक आनन्द होता है । ये प्रवचन मानव हृदय को पवित्र करने वाले होते हैं । उनसे मानव हृदय मे एक विशेष प्रकार की आन्तरिक अनुभूति होती है । ये जीवन का दृढ सकल्प और पवित्रता का आदर्श उपस्थित करते है । वचन तो साधारणतया सभी बोल सकते हैं किन्तु प्रवचन देना सबके बूते की बात नही है । इसीलिए वचन और प्रवचन मे रात-दिन का अन्तर होता है ।

एक न्यायाधीश अपने बच्चो के सामने बैठकर बोलता हैं, बाते करता है तथा अपने साथियो के साथ वार्तालाप करता है । किन्तु उसके

उन वचनो का कोई विशेष महत्त्व नही होता। वही न्यायाधीश जब न्याय के सिंहासन पर बैठकर अपने मुह से कुछ भी कहता है, उस समय उसके एक एक वचन का विशिष्ठ महत्त्व होता है। यद्यपि न्यायाधीश का मुह वही है, वचन भी उसके अपने ही है फिर भी उन वचनो और इन वचनो मे बहुत बडा अन्तर है। न्याय के आसन पर बैठते हुए वह जो भी वचन निकालता है, उससे मानव के जीवन पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है।

वचनों का मूल्य

समाज व्यवस्था की दृष्टि से जहाँ विषम स्थिति मे विवेक के साथ, निर्णय का प्रसग आता है वहाँ उन वचनो मे मानव के हित और अहित दोनो ही निहित होते हैं। ऐसे वचनो को सभी लोग बडे ध्यान से सुनते है। यही नही अपितु उस फैसले को सुनने के लिए कभी-कभी, जन-समुदाय बडी मात्रा मे एकत्रित हो जाता है। उनका मूल्य सब समझते हैं। यह तो एक क्षेत्रीय दृष्टि से उदाहरण रूप न्यायाधीश की बात कही गई है। किन्तु जहा पर समस्त विश्व के न्यायाधीश के वचनो का प्रसङ्ग है, वे बडे ही महत्त्व के हैं। विश्व के न्यायाधीश का तात्पर्य यहा वीतरागदेव से लिया गया है। आप पूछ सकते हैं कि न्यायाधीश और वीतरागदेव इन दो परस्पर विरोधी शब्दो का क्या मेल ? जो वीतराग है वह न्यायाधीश कैसे हो सकता है ? आपकी इस शका के समाधान मे मैं कहना चाहता हूँ कि न्यायाधीश का शाब्दिक अर्थ न्याय का स्वामी होता है, जिसमे राग और द्वेष विद्यमान रहता है। वह न्याय का स्वामी कैसे हो सकता है। जहा एक के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष हो वहा स्वस्थ न्याय का दर्शन कैसे हो सकता है ? उसका न्याय एक पक्षीय होता है, अत कभी-कभी ऐसी स्थिति मे अन्याय को प्रोत्साहन मिलने की सभावना भी हो सकती है। न्यायाधीश का काम केवल दण्डित करना नही होता। उसका कार्य तो दोषी को दोषी और निर्दोषी को निर्दोष घोषित करना होता है। दोषी व्यक्ति को दण्ड देने के लिए पृथक अधिकारी नियुक्त होते हैं। भूल किसकी है ? इस बात का समाधान न्यायाधीश की सीमा मे आता है। सासारिक न्यायाधीश दण्ड का विधान भी करते हैं! किन्तु उनका निर्णय न्यायसङ्गत ही हो, ऐसी स्थिति कम ही देखने मे आती है।

वीतरागदेव किसी को दण्ड नही देते है। वे तो केवल इस सत्य को उजागर करते हैं कि किस-किस कर्म से क्या क्या फल मिलते है ? शुभ,

अशुभ, और शुद्ध का स्पष्ट सर्वांगीण प्रकटीकरण ही उनके न्याय में आता है। अपने कर्मों का फल प्रत्येक प्राणी को उसके कर्मानुसार स्वय ही प्राप्त होता है। उसमे प्रभु का कोई हस्तक्षेप नही होता। वीतरागदेव का प्रत्येक निर्णय सत्य पर आधारित होता है। उन्हे किसी प्रमाण या साक्षी की आवश्यकता नही होती। जिस औदारिक शरीर और पाचो इन्द्रियो के सहारे से उन्होने दिव्य ज्योति प्राप्त की है वे उस शरीर का पाचो इन्द्रियो का तथा मन का भी सहयोग नही लेते है। उन्हे अपने ज्ञान मे जो दिखता है, उसे ही वे प्रकट करते है। ससार की कोई भी बात उनसे छिपी नही रहती। वे अपने विकास की चरम स्थिति मे पहुँचकर, अपने आप आत्मिक पूर्णता को प्राप्त कर लेते है। अपने असीम विश्व वात्सल्य से प्रेरित होकर ही, वे प्रवचन करते है। उन प्रवचनो मे जो कुछ भी तथ्यो का विश्लेषण और आत्मिक स्वरूप होता है उसे गणधरदेव ग्रहण कर लेते है। गणधरो की वह धरोहर परम्परा से शासन की स्थिति पर्यन्त चलती रहती है। काल प्रभाव के कारण वह प्रवचन परम्परा भले ही कुछ न्यूनाधिक रूप मे रहे पर उसका पूर्णात्मिक तथ्य सदा सुरक्षित रहता है। लाखो मन जडी बूटियो से निर्मित औषधि मात्रा की दृष्टि से न जाने कितने वजन की हो सकती है? किन्तु उसकी एक रत्ती भर की मात्रा मे भी समस्त औषधियों का सार विद्यमान रहता है। आधी रत्ती मे भी कोई यह नही कह सकता कि इसमे उन लाखो औषधियो का सार नही है। जैसे उन औषधियो की छोटी से छोटी मात्रा भी शरीर को रोग मुक्त करने के लिए पर्याप्त हो सकती है ठीक उसी प्रकार प्रभु के प्रवचनो का सकलन जितना भी गणधरो ने किया था, वह आचार्य परम्परा से शास्त्र के रूप मे कितना भी कम क्यो न हो परन्तु आज उसमे सारे ससार को दुःख मुक्त करने की शक्ति विद्यमान है। उनकी यह मात्रा विश्व शाति के लिए एक अमोघ उपाय है! हमे उन प्रवचनो को समझने का प्रयास करना चाहिए। तभी हम आत्मा, महात्मा और परमात्म जीवन की समस्त परिभाषाओ को समझ सकते है। इसी विषय पर मैं कुछ दिनो से आपको उपदेश दे रहा हूँ। उसे समझने का प्रयत्न करिए और सोचिए कि जीवन की परिभाषा क्या है? इस जीवन को किस रूप मे समझा जाय? कल भी इसी विषय मे आपसे कुछ कहा गया था, और आज भी कुछ कहने का प्रयास कर रहा हूँ।

गंगा के किनारे भी प्यासे क्यों?

जीवन की परिभाषा जानने के लिए 'समतादर्शन को समझना

आवश्यक है। इसका विवेचन करने के लिए मेरी तुच्छ शक्ति तो क्या ? वडे-बडे ज्ञानी योगियो की शक्ति चाहिए। इस प्रकार के योगीजन आज हमारे सामने नही है। अत अपनी शक्ति के अनुसार हम ही कुछ प्रयत्न करे। यद्यपि प्रभु के समतादर्शन मय उन विशाल प्रवचनो का मन्थन करके मक्खन निकालना साधारण मनुष्य के बूते की वात नही है तथापि कोई साधारण व्यक्ति भी यदि अपनी पुरुषार्थ शक्ति के सहारे उन पर चलने का प्रयत्न करे तो वह व्यक्ति भी किसी सीमा तक अपनी शक्ति के अनुसार सफल हो सकता है।

गगा की धारा वह रही है। उसके किनारे पर खडा एक प्यासा व्यक्ति पानी-पानी चिल्ला रहा है। प्यास के मारे उसके प्राण कण्ठ मे आरहे हैं। पास ही खडे एक दूसरे व्यक्ति ने कहा—अरे भाई ? गगा के किनारे भी प्यासे क्यो खडे हो ? पानी क्यो नही पी लेते ? वह प्यासा व्यक्ति वोला—भाई ! पानी मैं कैसे पीऊँ ? गगा तो वहुत लम्बी चौडी है और मेरा मुह छोटा सा है। इतनी विशाल गंगा की धारा मेरे छोटे से मुंह मे कैसे आ सकती है ? मैं प्यासा खडा खडा यही सोच रहा हूँ।

भाई ! तुझे प्यास ही तो लग रही है। इसके लिए सारी गगा की धारा को मुँह मे डालना क्या कोई आवश्यक है ? तुम यह कर भी नही सकते, हा, जितनी तुम्हारी शक्ति है, और जितना जल तुम्हारे मुँह मे आ सकता है, पीलो। इससे तुम्हारी प्यास तो बुझ ही जायेगी। कम से कम तुम प्यासे तो नही रहोगे। उस प्यासे व्यक्ति के समान ही आज मेरी स्थिति हो रही है। जव मैं वीतराग वाणी के उन गहन तम रहस्यो की ओर चितन करता हूँ तो यही सोचता हूँ कि यदि सम्पूर्ण रूप से नही तो जितनी शक्ति है, उतना तो कार्य करना ही चाहिए। 'अकरणात् करणश्रेय ' कुछ भी न करने से तो जो कुछ वन सके करना अच्छा है। इसी दृष्टिकोण से कुछ वाते व्यक्त करने का साहस कर रहा हूँ। ये वातें मुख्य रूप से तो मेरे अपने जीवन के लिए हैं, किन्तु गौण रूप से उनसे आप भी लाभ ले सकते हैं। यदि आप भी उन्हे समझने का प्रयास करें और अपनी शक्ति के अनुसार जीवन मे समता रस का पान करना आरम्भ कर दें, तो आपकी भी युगो युगो की प्यास बुझ सकती है। आप अपने जीवन की परिभाषा को भली-भाति समझ सकते हैं।

"सम्यक् निर्णायक समतामय च यत् तज्जीवनम्'

यहाँ निर्णायक के बाद जो समता शब्द आया है उसी मे समस्त समता दर्शन का रहस्य छिपा हुआ है। व्याकरण की दृष्टि से यहाँ समतामय दर्शन के बीच मे जीवन की परिभाषा लुप्त (अव्यक्त) है। किन्तु जब भी व्याख्या की जाती है तो दर्शन शब्द का प्रयोग करने पर ही भावार्थ स्पष्ट होता है।

हाँ तो समता दर्शन की दृष्टि से जीवन को देखना है। जीवन की समग्र स्थितियो पर दृष्टिपात करना है। वर्तमान जीवन जिन परिस्थितियो मे बीत रहा है ? भूतकाल मे कैसा था ? तथा भविष्य का जीवन कैसा रहेगा ? यदि इन तीनो दृष्टियो से आप अपनी ओर देखे तो अपने जीवन मे ही जीवन की परिभाषा को साकार रूप दे सकते है। वर्तमान का चिंतन, भूतकाल का सहारा लेकर भावीकाल का प्रेरणास्रोत बन जाता है। मनमे दृढता आ जाती है। यह दृढता सारे जीवन को प्रभावित करती है। जिस क्षण मानव का जैसा भी सकल्प होता है उस समय उसका तत्क्षण जीवन पर प्रभाव अकित हो जाता है।

कल्प और उसका प्रभाव

यदि एक व्यक्ति दो क्षण के लिए भी पवित्रता का संकल्प करता है तो आप देखेगे कि उसकी आकृति पर उस संकल्प का प्रभाव आये बिना नही रहेगा। आप इसका अनुभव करके देख सकते है। व्यक्ति के जीवन सूत्र का सूक्ष्मरूप से अध्ययन करने का प्रयत्न करिए, उसे समता दर्शन के साथ जोडिये, तभी आप समता दर्शन का पूरा स्वरूप समझ पायेगे। ऐसा करने वाले ही इस विशाल मानव जीवन को समझने में सफल हो पायेगे। मनुष्य अनेक पुस्तके पढता है, क्योकि आजकल पुस्तको की कोई कमी नही है। आज तर्क शक्ति के साथ बुद्धि का विकास यत्रतत्र परिलक्षित हो ही रहा है। उसी के आधार पर बहुत सी पुस्तके लिखी गई है, और लिखी जा रही है, तथा भविष्य मे भी यह प्रयास सम्भवतया चलता रहेगा। समस्त विश्व के पुस्तकालयो का यदि चिंतन किया जाय तो उसकी गिनती एक लम्बी सख्या तक पहुँच सकती है। इन पुस्तको का अनेक व्यक्ति अध्ययन करते हैं। इससे वे अपने वर्तमान जीवन के जानकार तो हो जाते हैं, किन्तु जीवन के वास्तविक तथ्यो तक नही पहुँच पाते। यही कारण है कि आज यत्र तत्र सर्वत्र विषमता की ज्वालाएँ भडक रही है। बुद्धि जीवी वर्ग हो, या छात्र वर्ग, अधिकारी वर्ग हो या व्यापारी वर्ग, मजदूर हो या कोई और सभी वर्गों मे आज विषमता घर किये बैठी है।

इस बात को सभी अनुभव कर रहे हैं कि अनेक सघर्षो के बाद भी उन्हे शान्ति प्राप्त नही हो पाई है। चारो ओर अशान्ति ही अशान्ति दीख पड रही है। सबकी अशाति के रूप अलग-अलग हैं। इतना विशाल और गहन अध्ययन करने पर भी मनुष्य की यह स्थिति क्यो है? चाहने पर भी उसे सत्य का दर्शन क्यो नही हो रहा है? हमारी विषमता एक भयकर समस्या है जो जीवन को चारो ओर से हताश कर रही है। उसे सुलझाना है। अपने मूल की भूल को मिटाना है, तभी शान्ति मिल पायेगी।

कारण सुन्दर होता है तो कार्य भी सुन्दर हो जाता है। यदि रसोई की सामग्री व्यवस्थित है, बनाने वाला भी अच्छा है तो रसोई अच्छी अवश्य बनेगी। सामग्री तो ठीक है पर बनाने वाला चतुर नही हैं तो गड-बड हो सकती है। उसमे कही न कही त्रुटि रह सकती है। ऐसी स्थिति मे रसोई का कार्य बिगड सकता है। उसी प्रकार जीवन की स्थिति का जो भी कार्य आज बिगड रहा है उसमे कोई मूल कारण अवश्य है। या तो हम सामग्री ठीक तरह से नही जुटा पाये हैं या बनाने की कला से अनभिज्ञ हैं, कुछ भी हो, कोई न कोई कमी तो अवश्य रही है। इस ओर का अध्ययन करने से आपको कुछ मूल तथ्य अवश्य मिलेगे। तब आप शीघ्र ही निर्णय कर लेगे कि सब कुछ पढ लेने और देख लेने पर भी यदि आपने अपने जीवन को नही देखा है, नही परखा है और समता सिद्धान्त दर्शन के द्वारा उसकी वास्तविकता को नही निखारा है तो अशाति से छुटकारा नही मिलना है।

जीवन निर्माण की कला

जीवन की अशाति भी एक समस्या है, इसका समाधान आवश्यक है। इसके लिए एक ही प्रारम्भिक मार्ग है कि अन्य पुस्तको के साथ-साथ जीवन की पुस्तक पढना आरम्भ कर दीजिये। उन पुस्तको के लिए तो आपको पुस्तकालय मे जाना पडेगा किन्तु जीवन की पुस्तक के लिए कही जाने की आवश्यकता नही है। जिन्होने प्रत्येक क्षण अपने जीवन को देखा है, पढा है और परखा है, वे जीवन के तथ्यो को पालते हैं। उन्हे जीवन निर्माण की कला आती है। समता के द्वारा उनकी विषमता मिट सकती है, उनकी भावनाओ एव विचारो मे एक पवित्रता आजाती है। वे आधी तूफान आदि सभी सकटो को सुगमता से पार कर जाते हैं।

आज १५ अगस्त है। यह भारतीय इतिहास का स्वर्णिम दिन।

हमारी स्वतन्त्रता का प्रतीक है। आज के दिन हम विदेशी सत्ता से मुक्त हुए थे। अब सभी भारतीय स्वतन्त्र हैं, इसी कारण इसे स्वतन्त्रता दिवस के रूप मे मनाते है। आज के दिन सभी लोग एक विशेष प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, किन्तु वह प्रसन्नता अन्तःकरण मे और उससे भी आगे आत्मा में घर नही कर पाई है। बाहर ही बाहर के प्रकाश मे हम आनन्द मना रहे है, अभी अतरग के उल्लास को प्राप्त करना शेष है। तभी इस दिन का वास्तविक महत्त्व प्रकट होगा। अभी तो एकागी महत्त्व ही प्राप्त हुआ है। इस दिन का इतिहास हमे भूत, भविष्य और वर्तमान की स्थितियो का अध्ययन चिंता और मनन करने को बाध्य करता है। क्या सचमुच हम स्वतन्त्र हो गए है ? यह प्रश्न अभी भी हमारे सम्मुख मुँह बाये खडा है। हम बाह्य रूप से किसी अंश मे परकीय शासन से मुक्त हुए हैं—प्राप्त स्वतत्रता मे कुछ प्रगति तो अवश्य हुई है गत २५ वर्षो की उपलब्धिया इसके प्रमाण हैं। किन्तु कुछ भूले भी हुई है अपने तत्र का दुरुपयोग भी हुआ है, यही कारण है कि क्षेत्रीय रूप से भी हम स्वतन्त्रता का पूरा लाभ नही ले पाये है। पन्द्रह अगस्त का पुण्य पर्व मनाते समय हम कभी-कभी उद्विग्न हो उठते है, हमारी बेचैनी बढ जाती है और बढती ही जा रही है। यह सब कुछ क्यो ? स्वतन्त्रता मे बेचैनी कैसी ? इसमे भी कुछ कारण हैं, उन्हे खोजना है। उन्हे समाप्त करना है। जब तक हम अपने बढते हुए स्वार्थो की परतंत्रता से मुक्त नही होगे, तब-तक स्वतन्त्रता का सही रूप हमारे सामने नही आ सकता है। वैधानिक दृष्टि से न्याय सब के लिए समान है, किन्तु उसका आज खुल कर दुरुपयोग हो रहा है। गणतन्त्र की सफलता के लिए जीवन तत्र का अध्ययन अत्यत आवश्यक है। हमे जीवन की स्वतत्रता को लक्ष्य वना कर चलना है, इसी मे सब का हित निहित है। इसके लिए प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी को अपना मन मानस पवित्र बनाना होगा और दृढता के साथ प्रण करना होगा कि मैं सदा न्याय पूर्वक जीवन जीऊँगा। कोई भी अनैतिक व्यापार नही करूँगा। दूसरो पर नियत्रण करने की अपेक्षा सदा अपने आप पर नियत्रण रखने का प्रयत्न करूँगा। समाज मे इस प्रकार की भावना प्रत्येक मनुष्य के मन मे जब तक नही आती तब तक पूर्ण स्वतन्त्रता का सर्वा गीण विकास सम्भव नही है। एकागीण स्थिति से मनुष्य स्वतन्त्र होकर यदि बैठ जाय तो उस स्थिति मे वह कभी भी धोखा खा सकता है, क्योकि उसने अपनी मूल की भूल को नही पहचाना है। यदि मूल स्थिति को पकड कर उस का समाधान नही करता है तो स्वतन्त्रता ठीक तरह से सुरक्षित नही रह सकती। स्वतत्रता

बाहरी रूप से तो सभी को मिल जाती है, लेकिन इस समय भारत की जो दशा है भारत मे जिन लोगो के कन्धो पर उत्तरदायित्व है वे लोग जो कुछ भी करके दिखायें उसका हमे चिंतन करना चाहिए। आज बाहरी दृष्टि से तो हम आज स्वतन्त्र हैं पर मानसिक दृष्टि से देखते हैं तो मानव आज भी परतन्त्र बना हुआ है। यदि हम उस समता दर्शन की दृष्टि से अपने जीवन का अवलोकन करें तो मानसिक परतन्त्रता से मुक्त, हो सकते हैं। आप आज अन्धी नकल तो नही किये जा रहे है ? नकल के पीछे यदि अकल हो तो वह नकल भी ठीक हो सकती है। परन्तु यदि अकल नही हो तो बात विचारणीय बन जाती है।

गरीबी कैसे मिटेगी ?

मैं आपके सामने कुछ बाते ऐसी बोल जाता हूँ कि जिससे आप कुछ और ही चिन्तन करने लग जाते हैं। लेकिन आप चिन्तन करे। मैं कहूगा कि समता दर्शन के साथ चिन्तन करे, और यदि दृढ सकल्प के साथ चिन्तन करेगे तो सही दर्शन प्राप्त होगा। आज आप वस्तुत जीवन मे भले ही स्वतन्त्र हो लेकिन आप की आत्मा परतन्त्र बनी हुई है। इस परतन्त्रता की बेडी मे जकडे रह कर भी भले ही अपने आप को स्वतन्त्र समझले किन्तु वास्तविक स्वतन्त्रता अभी बहुत दूर है। "गरीबी हटाओ" का नारा आज हमारे देश के नेताओ का एक सूत्र बन गया है। किन्तु यदि अपने जीवन मे समता दर्शन की दृष्टि रहेगी तभी हम गरीबी का प्रश्न सहज ही मे हल कर सकेगे। मैं कभी-कभी अखबार देख लेता हूँ। उसमे कभी-कभी देश के नेता अपने आन्दोलनो को सफल बनाने के लिए जनता का आह्वान करते हैं। उनके ये आह्वान तभी सफल होगे जब उनकी भावना मे यह चिन्तन आयेगा कि—मैं भूखा बैठा हुआ हूँ इससे मुझे जो कष्ट हो रहा है ऐसा ही कष्ट मेरे समस्त साथियो को होता होगा। इसलिए मेरे पास जितनी चीज है उसे उनमे विभक्त करके अपने साथियो की क्षुधा निवारण करु। इस प्रकार की भावना से, समता-दर्शन के दृष्टिकोण से जब अपने साथियो को देखने लग जायगा और सोचेगा कि मैं भव्य बगले मे बैठा हुआ हूँ किन्तु कितने ही भाई आज फुट-पाथ पर रह रहे हैं उनको कितना कष्ट होता होगा। यदि इस प्रकार अपनी दृष्टि को विशाल बनालें और यह सोचे कि मेरे पास जो कुछ भी साधन हैं उनको अपनी आवश्यकता के अनुपात से अपने पास रखूगा और शेष जो आवश्यकता के अतिरिक्त हैं उसका वितरण

करदूं। यदि यह भावना समता दर्शन की दृष्टि से जीवन में घर कर गई तो मैं समझता हूँ कि इस पच्चीसवे स्वतन्त्रता दिवस के नारो की चुनौती का पेट भर जायगा। आज हमे दृढ सकल्पी बनना है, इसके बिना कितने ही नारे लगाये, कितने ही आन्दोलन "गरीबी हटाओ" के चलाये, इस स्थिति मे अन्तर नही आ पायेगा। और यह केवल आन्दोलन ही चलता रहेगा। जब समता दर्शन के दृष्टिकोण को मनुष्य के मस्तिष्क मे जमायेगे उसके अनुसार उसके जीवन का निर्माण करने का प्रयत्न करेगे तब मनुष्य समता दर्शन के दृष्टिकोण से न केवल अपने आपको देखेगा, अपने पडोसी को देखेगा, अपने गाव व राज्य को देखेगा, राष्ट्र को देखेगा और उसके साथ मे समूचे विश्व को उसी दृष्टिकोण से देखने की स्थिति मे आ जायेगा। यह समता दर्शन की परिभाषा का विषय है उस परिभाषा के साथ कुछ पक्तिया है। उन पक्तियो का कुछ विश्लेषण करने को सोच रहा हूँ। जैसा कि प्रारम्भ मे स्वतन्त्रता–दिवस के उपलक्ष मे कुछ विचार आप के सामने रख चुका हूँ ! आज १५ अगस्त के प्रसग से आपको सबसे पहिले समता दर्शन के दृष्टिकोण को अपनाना है। समग्र आत्मीय शक्ति से सम्यक्, सर्वागीण सम्पूर्ण आत्मीय निर्णायक विकास को दृढता पूर्वक सदा सर्वदा ध्यान मे रखना है।

यहा शब्दो का सकलन अधिक हो गया है किन्तु उनके बिना जीवन का समग्र रूप और समता दर्शन का लक्ष्य सामने नही आ सकता इसलिए सबसे पहले समग्र आत्मीय शक्तियो को लिया गया है। मैं उन्ही शक्तियो को उभारने के लिए आपके सामने समता दर्शन पर कुछ विचार रख रहा हूँ। आत्मीय शक्ति को समग्र रूप मे इसलिए ले रहा हूँ कि एक–एक शक्ति को लेकर तो मानव विकास कर रहा है। इससे एक अग भरता है और अन्य दूसरे अग उससे गौण रह जाते हैं। आप उदाहरण के लिए ले लीजिए मनुष्य यदि अपने मस्तिष्क का विकास करता है तो मस्तिष्क बढता है लेकिन शेष शरीर के अग पगु बन जाते हैं। यहा पंगु का तात्पर्य निर्बलता से है। यदि वह हाथो की दृष्टि से आगे बढता है तो हाथो की शक्ति बढ जायगी परन्तु अन्य अगो के विषय मे सोचा जा सकता है। आप जानते ही हैं कि एक मनुष्य जब अपने शरीर को बलवान बनाने की दृष्टि से अपने आपको पहलवान बनाता है। उस समय साथ ही साथ वह अपने आपको विद्वान् नही बना सकता। शारीरिक दृष्टि से पहलवान 'गामा' का नाम तो आप ने सुना ही है। उसके सामने जब कभी प्रसग आता तो चलती हुई गाड़ी को रोक सकता था। इतनी ताकत शारीरिक रूप से उसने प्राप्त

करली थी। उसका सकल्प था कि मैं इतना पहलवान दन जाऊँ कि यत्रो को भी रोक सकू, लेकिन वौद्धिक दृष्टि से उसका विकास उतना नही हुग्रा जितना दार्शनिक क्षेत्र मे एक विद्वान् का होता है या कहना चाहिए वह मस्तिष्क की दृष्टि से अशक्त रहा। मस्तिष्क की दृष्टि से पहलवान वनने वाले शारीरिक दृष्टि से निर्वल रहते हैं। एक ही ग्रग का विकास जहा होता है वहा दूसरे ग्रग निर्वल रह जाते हैं। मनुष्य की समस्त शक्तियो के विकास के लिए समग्र, शक्तियो को लेना ग्रावश्यक है। इसका तात्पर्य है कि हमारी मानसिक, वाचिक, वौद्धिक, ग्रौर शारीरिक शक्ति का समग्र, रूप से विकास हो। यदि मानव अपनी वाचिक शक्ति को वढाना चाहता है तो वह वक्ता (वाचाल) भी वन सकता है। आप देखेगे कि जिस व्यक्ति को "अ" की मात्रा का उच्चारण भी नही आता था, उसने दृढ सकल्प किया कि मुझे वक्ता वनना है। ग्रपनी दृढ लगन से चाहे वह वक्ता वन जाय किन्तु उसका जीवन अन्य तथ्यो से शून्य रह जाता है। उस व्यक्ति मे वाचिक शक्ति का विकास तो हुग्रा लेकिन ग्रन्य शक्तियां नही वढ पाईं। पाण्डित्य की दृष्टि से एक व्यक्ति वडी सुन्दर पुस्तक लिख सकता है, कठिन से कठिन रहस्य का विशद् विवेचन कर सकता है किन्तु यदि उसे भाषण देने खडा कर दिया जाय तो वह एक शब्द भी नही वोल पायेगा, क्योंकि उसमे भाषण देने की शक्ति का विकास नही हो पाया है।

जीवन की परतन्त्रता

एक वहुत वडे शिक्षक से कहा गया कि आप वडे-वडे गूढ रहस्यो को समझा सकते हैं, कुछ थोडी सी वाते जनता को भी समझा दीजिये। ग्रापके भाषण से सवको वडा लाभ पहुँचेगा। उत्तर मे वे वोले महाराज श्री यह मुझ से नही हो सकेगा। मैं क्लिष्ट से क्लिष्ट विषय को पढा तो सकता हूँ किन्तु भाषण नही दे सकता। उनकी मस्तिष्क शक्ति तो विकसित थी, पर वाचिक शक्ति का विकास नही हुआ था। इसी प्रकार मानसिक दृष्टि से किसी का विकास हो जाता है, तो वह वौद्धिक शक्ति के विकास से वचित रह जाता है। जीवन मे सभी शक्तियो का विकास होना चाहिये। मानव जीवन सभी शक्तियो के विकास का केन्द्र है। प्रत्येक मानव को सोचना चाहिए कि जो-जो शक्तिया मेरे भीतर छिपी हुई हैं जिन शक्तियों का मैं राजा हूँ, उनका मुझे अवश्य ही विकास करना है। इसके लिए दृढ सकल्प की आवश्यकता है। जीवन की परतन्त्रता तभी समाप्त हो सकती

है। आज भौतिक विकास तो चारो ओर हो रहा है किन्तु आध्यात्मिकता की ओर कुछ कम लोगो का ही ध्यान जा पाया है। आध्यात्मिक रूप से मानव अभी परतन्त्र ही बना हुआ है।

इस विषय मे मै तो अपनी साधु मर्यादा के अनुसार ही कुछ कह सकता हूँ। जो कुछ आपके सम्मुख रखा गया है उसे समझने का प्रयास करिये। व्यक्ति का विकास परिवार को प्रभावित करता है। उससे समाज मे चेतना आती है, वही चेतना समूचे राष्ट्र की काया पलट कर सकती है। किन्तु यह समता दर्शन के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। जिनके हाथ मे सत्ता है, राज्य है, उन्हे इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। आध्यात्मिक चिंतन भारत की सबसे प्राचीन परम्परा है। बडे से बडे राष्ट्र नायक से लेकर प्रत्येक सामान्य नागरिक के जीवन तक इसका अभिन्न सम्बन्ध है। आज यह सम्बन्ध कुछ टूट सा रहा है, इसे जोडना ही प्रत्येक भारतीय का लक्ष्य होना चाहिए।

कर्त्तव्यनिष्ठ कमलसेन

अब मैं अपने कल के छोडे हुए कथानक पर आता हूँ। वह कमलसेन कुमार अपने जीवन का राजा है। उसका जीवन उसके नियत्रण मे है। विपरीत परिस्थिति आने पर अपने जीवन को सम्हालना बहुत कठिन होता है। आप ही सोचिये—एक तरुणी रूप सौन्दर्य के जीवन मे प्रवेश कर रही है। उसे इस रूप मे देखकर धैर्य रखना सभी के वश की बात नही है। चाहे कितने ही नैतिक बल का व्यक्ति हो ऐसे समय मे मनुष्य के संयम का बाध टूट जाने की सम्भावना रहती है। कुमार का जीवन एक आदर्श को लेकर चल रहा है। उसका अपने मन पर पूरा नियत्रण है। वह इस स्थिति मे भी अपनी नैतिकता से विचलित नही हो रहा है। उस सर्वाङ्ग सुन्दर तरुणी को देखकर उसने पूछा—बहन! तुम कौन हो? आवाज क्यो लगा रही हो?

एकात स्थल है। राजकुमार और तरुणी है। जिसने अभी तक परिचयात्मक प्रश्न किया उसे आप जानते ही है। वह धार्मिक स्वभाव का व्यक्ति है दृढ प्रतिज्ञ और उदारमना है। उसका राज्य भी उसके अनुरूप था। वहा कोई अनाथ और दुखी नही था। किसी पर कोई अनाचार और अत्याचार नही होता था। सब सुखी थे, प्रसन्न थे। ऐसे प्रजावत्सल राज्य मे एक स्त्री की दुख भरी आवाज सुनकर किसका हृदय नही पसीजेगा।

दयालु राजकुमार का हृदय दया भाव ने खीच लिया। वह आवाज की ग्रोर चल पडा। उसके मन मे रक्षा की भावना हिलोरे ले रही थी। अरक्षा के कारणो को मिटाना ही तो रक्षा कहलाती है। रक्षक जव रक्ष्य के ग्रास पास कोई ग्ररक्षा के कारण नही देखता तो उसके मन मे आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। उसके हृदय मे सही स्थिति को पा लेने की भावना जागृत हो जाती है। उस समय कुछ परिचय पूछना उसका मुख्य लक्ष्य वन जाता है। जव प्रश्न होता है तो सामने वाले को उसका कोई न कोई उत्तर देना ही होता है। ऐसी स्थिति मोन नही रहने देती। प्रत्येक शका अपना समाधान चाहती है। तभी तो कमलसेन ने उस तरुणी से पूछा है कि—तुम कौन हो? क्या कहना चाहती हो?

उसने उत्तर दिया—जव किसी को कोई अपूर्व वस्तु मिल जाती है तो वह उसका उपयोग करना कभी नही भूलता। मुझे भी ग्रलौकिक रूप सौन्दर्य मिला है। मैं इसका फल प्राप्त करना चाहती हूँ। मुझे एक साथी की ग्रावश्यकता है। ग्रपनी ग्रावश्यता की पूर्ति के लिए मैने चारो ग्रोर दृष्टि दौडाई। ऐसा कोई भी व्यक्ति मेरी दृष्टि मे नही ग्राया जो मेरे रूप-लावण्य के ग्रनुरूप हो। ग्राज ग्रापको ग्रपने साथियो के साथ भ्रमण करते देखा तो ऐसा लगा मानो मेरी साध पूरी होने को आगई हो। ग्रापका रूप सौन्दर्य कुछ ऐसा ग्रनुपम है कि उससे मेरी सभी इच्छाये पूर्ण हो सकती हैं। सचमुच ग्राप मानवीय ग्राकर्षण की साकार मूर्ति हैं। ग्रापको देखकर मेरा मन मयूर नाच उठा है ग्रौर मन का नियत्रण टूटने लगा। आपको पाने का दृढ सकल्प जाग उठा। किन्तु आपको कैसे पाया जाय? इस प्रश्न ने सारे शरीर को झकझोर दिया मै जानती हूँ, ग्राप राजपुत्र हैं। सीधे सादे प्रयत्नो से ग्रापको प्राप्त करना कठिन हो नही ग्रसम्भव सा है। यही विचार कर मैंने सोचा कि—चू कि ये दीनो के प्रति वडे दयावान हैं। दीनो का करुण क्रन्दन सुनकर इनका हृदय सहज ही मे पिघल जाता है। ग्रन दीनता का दम्भ रचकर ही मैं इनके समीप ग्रा सकती हूँ। मेरे करुण क्रन्दन पूर्ण ग्रावाज लगाने का यही मूल कारण है। राजकुमार! मैं सचमुच ही ग्रनाथ हूँ। मुझे सनाथ वनाइये। यह तभी सम्भव हो सकता है जव आप मेरे नाथ वन जाय।

कानो का काम सुनने का है। वुद्धि वाद मे सोचती है। राजकुमार ने सव कुछ सुन लिया। उसने क्षण भर मे सारी स्थिति का अध्ययन कर लिया। ग्रव वह तरुणी के वासनापूर्ण विचारो से पूर्णत अवगत हो चुका

है। इस सारी स्थिति को सुनकर और देखकर भी उसका मन किंचित् भी डावाडोल नही हुआ। वह दृढ प्रतिज्ञ था। विवेक के साथ बोला—

मैंने तुम्हारा प्रस्ताव सुन लिया। तुमने यह जो छल कपट का मार्ग चुना है किसी भी प्रकार से उचित नही है। तुम अपने कर्त्तव्य से पिछड रही हो। इस प्रकार का प्रयास, नारी जीवन के लिए कलक है। तुम्हारे इस कार्य को कोई भी समझदार व्यक्ति अच्छा नही कह सकता। तुम अपने प्रभावहीन प्रयत्न से मुझे आकर्षित करना चाहती हो किन्तु मैं अपने कर्त्तव्य मे स्पष्ट हूँ। मेरा मन मेरे वश मे है। मेरी आज्ञा के बिना वह इधर-उधर कही भी नही भटक सकता है। इस उत्तर ने तरुणी के मस्तिष्क को हिला दिया। वह सोचने लगी कि—यह कैसा तरुण है, इस पर तो मेरी प्रक्रिया का कोई प्रभाव ही नही पडा। कही यह दिखावे के लिए ऊपर की बाते तो नही कर रहा है। किन्तु ऐसा भी प्रतीत नही होता अन्यथा वह ऐसे निर्जन एकान्त स्थान मे इतनी दृढता नही रख सकता था। सच तो यही दीखता है—यह बड़ा ही दृढ प्रतिज्ञ है। सासारिक विकारो के लिए इसके मन मे कोई स्थान नही है। अब मुझे कोई और ही मार्ग चुनना पडेगा। मैं नारी हूँ। अनेक कलाये जानती हूँ। यदि अवसर पर कला काम न आई तो फिर उस कला से क्या लाभ है? आज तो मुझे शक्ति भर प्रयत्न करके इस राजकुमार को अपनी ओर खीचना है। अपनी इच्छाये पूर्ण करनी है। उसका धैर्य उखड चुका था। एक बार जब मनुष्य अपने कर्त्तव्य से फिसलता है तो फिसलता ही जाता है। इसके विपरीत जो दृढ सकल्पी होते हैं वे सदा अपने हित, अहित का ध्यान रखते हैं। अपने विचारो पर, अपनी भावनाओ पर उनका पूरा नियत्रण होता है। राजकुमार कमलसेन इस आदर्श का प्रतीक था। सब को उसके जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। किसी भी विषम स्थिति मे अपना कर्त्तव्य नही भूलना चाहिए। प्रत्येक कार्य को समता दर्शन की तराजू पर तोलकर ही करना चाहिए। आप लोग स्वतन्त्र भारत के नागरिक हैं। भारतीय आदर्शों की रक्षा करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। इसी मे जीवन की सार्थकता है। कमलसेन के समान अपने जीवन के राजा बनो। इसी मे सर्वाङ्गीण विकास सन्निहित है।

॥ इति ॥

लाल भवन
१५ अगस्त, ७२

सत्प्रवृत्ति और दुष्प्रवृत्ति

प्रार्थना

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरोरे, और चाहुँ रे कत।
रीझियो साहिव सगन परिहरे रे भागे सादि अनत॥
प्रीत सगाई रे जगमा सहुकरे रे प्रीत सगाई न कोय।
प्रीत सगाई रे निरुपाधिक कही रे, सोपाधिक घन खोय॥

यह प्रभु ऋषभ देव भगवान् की प्रार्थना है। कवि की वाणी यहा एक विशेष प्रकार से मुखरित हुई है। जव भक्त अपने आन्तरिक भावो को परमात्मा के चरणो मे रखता है, तव वह रचना की ओर ध्यान नही रखता, अपितु अपने हृदय के भावो को प्रभु के चरणो मे अर्पित करने का प्रयत्न करता है। इस कविता मे भी वह अपने भावो को व्यक्त करता हुआ कह रहा है कि प्रभु, आप मेरे पति समान हैं। सामाजिक दृष्टि से सासारिक पति तो वहुत होते हैं, किन्तु आत्मिक दृष्टि से उनका क्या महत्व है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। यहा पर कवि प्रभु से अनादि सम्बन्ध जोडना चाहता है।

सम्बन्ध अनेक प्रकार के होते है। उनमे एक अनादि अनत सम्बन्ध होता है। इसे त्रिकालीय सम्बन्ध भी कहते है। पहिले था अव है, और भविष्य मे भी अखण्डरूप से विद्यमान रहेगा। इसका कभी न तो आरम्भ ही हुआ है और न अन्त ही होगा। आत्मा का परमात्मा के साथ कव सवध हुआ? इसका कोई भी पता नही लगा सकता है। इसी को अनादि सवध कहते है। इस अनादि सम्बन्ध का कभी अन्त न होना ही अनादि अनत कहलाता है। भगवान् ऋषभ देव से पूर्व अनत चौवीसिया हो चुकी है, अर्थात् अनत तीर्थंकर आत्माऐ सिद्ध रूप मे परिणत हो चुकी है। यही आत्मा का अनादि अनत सवध है। सवध का दूसरा प्रकार है अनादि सांत। किसी आत्मा ने परमात्मा के अनादि आत्मस्वरूप को समझ कर सम्बन्ध

जोडने का प्रयास किया, किन्तु वह सम्बन्ध शीघ्र ही अथवा कुछ काल के बाद टूट गया। एक दृष्टि से इसका अर्थ यह हुआ कि सबन्ध अनादि काल से चला आ रहा था, किन्तु उसका स्थायित्व खण्डित हो गया। उसे अनादि सात सम्बन्ध कहते है। तीसरी स्थिति सादि कांत सम्वन्ध की मानी गई है। इसमे सम्बन्ध होता है और टूट भी जाता है। चौथा सादि अनंत सम्बन्ध कहलाता है। यह एक बार जुडने के बाद टूटता नही है। प्रस्तुत कविता मे कवि आनन्दघन भगवान् को पति के रूप मे चुन रहे है। यह उनका भावात्मक निवेदन है। वे चाहते हैं कि प्रभु के साथ मेरा (आत्मा का) सदा सदा के लिए अटूट सम्बन्ध हो जाय। उसका कभी भी अन्त न हो। यहा यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि आत्मा और परमात्मा के बीच मे आई हुई पौद्गलिक दीवार को हटाने का नाम ही "सम्बन्ध" है।

गृहस्थ के सभी सम्बन्ध पौद्गलिक होते है। वे सर्वदा नही रहते। इन सभी सम्बन्धो मे शरीर प्रधान रहता है। यहा मै आप लोगो को ईश्वरीय सम्बन्ध के विषय मे बता रहा हूँ। भगवान् को तो किसी सम्बन्ध की आवश्यकता नही है। वे तो सर्वथा निर्लिप्त है। कवि ने जो सम्बन्ध की बात कही है, वह उसकी भावना है। भगवान् को पति के रूप में मान कर वह आत्म सिद्धि प्राप्त करना चाहता है। अपनी बौद्धिक शक्ति को आत्मा की शुद्धि की ओर लगाना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। शक्ति का शक्तिमान् के साथ अभिन्न सम्बन्ध होता है। निर्बलता शक्ति पर आया हुआ आवरण है। इसके हटते ही शक्ति प्रकट हो जाती है। शक्ति का यह प्रकटीकरण ही सम्बन्ध की परिभाषा मे आता है। प्रत्येक आत्मा मे अनत शक्ति रही हुई है। कर्मो के आवरण के कारण वह शक्ति प्रकट नही हो पा रही है। प्रार्थना के माध्यम से उस आवरण को हटाया जा सकता है। जो आत्मा की क्षायिक शक्ति के द्वारा काम, क्रोध, माया, लोभ, और मिथ्यात्व आदि मनोवेगो का नाश कर देता है। इससे आत्मा का अपने शुद्धस्वरूप मे विश्वास होने लगता है। इसी विश्वास को सम्बन्ध जोडने की संज्ञा दी जा सकती है। जिस व्यक्ति की क्षायिक शक्ति जाग्रत हो जाती है, उसकी श्रद्धा विचलित नही होती, अपितु बढती हुई श्रद्धा परम श्रद्धा के रूप मे परिणत हो जाती है। इसी भावना से आत्मा का सम्बन्ध ऋषभ देव भगवान् के साथ पति रूप मे जोडने की बात कही गई है।

लक्ष्य स्थिर कीजिये

इस स्थिति मे आकर आत्मा का श्रद्धामय लक्ष्य बन जाता है। जब लक्ष्य स्थिर हो जाता है तो ध्येय की प्राप्ति सुगमता से हो जाती है। उसकी समस्त आत्मिक शक्तियो का विकास हो जाता है। समता सिद्धान्त दर्शन का विवेचन करते हुए कल मैने लक्ष्य का स्वरूप आपके सामने रखा था। जिसमे बताया था कि जब अपने लक्ष्य के प्रति भावना बलवती हो जाती है तो आत्मा की समग्र शक्तियो का विकास हो जाता है। आत्मिक जीवन निखर उठता है।यह भावना प्रधान प्रार्थना परमात्मा की एक लाक्षणिक परिभाषा है। यही गुण और गुणी की परिभाषा है। जब तक ऐसी स्थिति नही आती यह मानव अनेक प्रकार के सदेहो मे उलभा रहता है। कभी सोचता है कि मैं प्रभु को जानता तक भी नही हूँ फिर उनका दर्शन कैसे कर पाऊंगा? अनेक प्रश्न और उनके अनेक समाधान उसके सामने आते हैं। दिनो दिन उसकी उलझने बढती ही जाती है। उसके जीवन मे विचार भिन्नता का घुन लग जाता है। अपनी सही स्थिति का अध्ययन करना उसके लिए असभव नही तो कठिन अवश्य हो जाता है। अनेक शकाऐ अनेक प्रश्न उसके सामने आकर खडे हो जाते हैं। उसका जीवन सकल्प विकल्प की उलझनो मे उलझ जाता है। उसकी श्रद्धा किसी भी एक तथ्य पर नही टिक पाती। उसका उलझा हुआ वर्तमान, अपने भविष्य की चिन्ताओके गहनतम अन्धकार मे भटक जाता है। भौतिक प्रयोगशाला के भी अनेक प्रयोग उसके सामने आते हैं। उनमे से वह किसी भी एक वस्तुतत्त्व का निर्णय नही कर पाता है।

किसी भी तत्त्व को समझने के लिए उसकी परिभाषा को समझना नितान्त आवश्यक होता है। ऐसा करने से वस्तु का सत्य स्वय बोल पडता है। जहां परिभाषा अपूर्ण रह जाती है वहा वस्तुस्थिति का ज्ञान भी अपूर्ण ही रह जाता है। यह अपूर्णता ही सकल्प-विकल्पो की जननी है। इसे समाप्त करना ही मनुष्य का सर्वप्रथम लक्ष्य होना चाहिए। आप किसी भी दृष्टि से सोचे, और कुछ भी सोचे। उस सोचने मे एक निश्चित धारणा होनी चाहिए। सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। इसी मे आपके जीवन की महत्ता है। जहा जीवन का विकास है वही प्रगति है। आदिवासी मनुष्यो मे और आज के मानव मे विकास का ही तो अन्तर है।

ऋषभदेव भगवान से पूर्व भी मनुष्य की दशा नगण्य स्थिति मे थी।

भगवान् तो विकास की साधना पर आरुढ़ होने मे समर्थ थे, पर सामान्य लोगो के लिए यह सभव नही था। उनमे योग्यता की कमी थी। कुछ शताब्दियो के बाद विकासक्रम उन्नति की ओर बढने लगा। तव से अब तक की स्थिति इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज भौतिक विकास तो दिनो दिन उन्नति कर रहा है, किन्तु आध्यात्मिकता की ओर मनुष्य का ध्यान कुछ कम ही दीख पड रहा है। आज बौद्धिक विकास का चारो ओर बोल-बाला है। नित्य नये पौद्गलिक आविष्कार हो रहे है। पर आत्मिक परिष्कार का प्रयत्न कितने लोग कर रहे है। यह स्थिति अवश्य ही शोचनीय है। जब तक अपनी बौद्धिक शक्ति को आत्मिक चितन की ओर नही लगायेंगे तब तक अपने विकास का वास्तविक रूप सामने नही आ सकता है। आत्मिक विकास मे विश्वास का प्रमुखता से योग रहता है! इसके बिना कोई भी क्रिया सफल नही हो पाती है। बुद्धिवादी वर्ग को इस ओर अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। जीवन की उन्नति का यह प्रारम्भिक राजमार्ग है। इस पर विवेकपूर्वक चलने से ही अपने चरम ध्येय तक पहु च पायेंगे।

अच्छी और बुरी प्रवृत्तियां

विश्वास, समता का पोषक तत्त्व है! दुष्प्रवृत्तियो के त्याग की साधना मे विश्वास रखने से जीवन का विकास होता हैं। इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि :—कौनसी वृत्तिया बाधक हैं तथा कौनसी साधक हैं? सत् क्या है और असत् क्या है? इस जीवन के साथ सत्-असत् दोनो तत्त्व लगे हुए हैं। अच्छी और बुरी दोनो प्रवृत्तियो का पृथक्-पृथक् विचार करेगे तभी असत् त्याग की और सत् के ग्रहण की भावना जागेगी। आपके सन्मुख समता का जो प्रथम सूत्र रखा गया है, उसके लक्ष्य के अनुरूप जितनी प्रवृत्तिया हैं, वे सद् रूप है। इसके विपरीत प्रवृत्तिया असद् है। प्रत्येक स्थिति मे प्रवृत्ति की सीमा का ध्यान रखना आवश्यक होता है! अपने वर्तमान की सभी प्रवृत्तियो का व्यावहारिक दृष्टि से चितन करना चाहिए। अच्छाई केवल समझने की ही वस्तु नही है, उसे जब तक व्यवहार मे नही लाया जायगा तब तक जीवन निर्माण मे उसका कोई सहयोग नहीं हो सकता। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे समभावना ,रहनी चाहिए, उसमे विषमता नही आनी चाहिये। मान लीजिये आज आपके यहा कोई पर्व दिन मनाया जा रहा है। घर के प्रयोग के लिए आवश्यकता से कम ही

मिष्ठान्न वना है। परिवार मे सदस्य अधिक हैं। मिष्ठान्न यदि सब सदस्यो को वाट कर दिया गया तो मेरे हिस्से मे वहुत कम आयेगा। उस समय यदि अपने हिस्से से अधिक खाने की भावना उठती है तो यह दुष्प्रवृत्ति ही कहलायेगी। आपके इस व्यवहार मे समता नही है, विषमता है। इसी प्रकार आप अपने जीवन की समस्त क्रियायो के विषय मे सोच सकते हैं। अपनी इच्छा के साथ-साथ यदि आप दूसरो की इच्छाओ का भी ध्यान रखते है, तव तो आपकी प्रवृत्ति समता की सीमा मे आ सकती है। सत् प्रवृत्ति मे सत्य निहित रहता है। सत्य वोलना सभी के लिए हितवद्ध है। असत्य वोले और दूसरो को सत्य वोलने का उपदेश दे, यह न्याय सङ्गत नही है। जो आपकी आत्मा के लिए अनुचित है वह दूसरो के लिए उपयुक्त कैसे हो सकता है। इसीलिए तो कहा गया है कि "आत्मन' प्रति-कूलानि परेषा न समाचेरत्" जो कार्य अपनी आत्मा के लिए प्रतिकूल है वह दूसरो के लिए कभी नही करना चाहिए।

कुछ प्रवृत्तिया सामाजिक भी होती हैं। उनकी भी एक सीमा है। उनकी भी एक व्यवस्था है। द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की दृष्टि से उनमे परिवर्तन भी दीख पडता है। यह परिवर्तन सासारिक है। इसमे ससार पक्ष की व्यवस्था निहित है। गृहस्थ के प्रत्येक सदस्य का अपना एक व्यव-हार है। धर्मपत्नी के साथ जो व्यावहारिक प्रवृत्ति है, वह पुत्र वधू के साथ नही है। इसी प्रकार अन्य सदस्यो के विषय मे विचार करना चाहिए। यह सामाजिक क्षेत्र की प्रवृत्ति है। अब प्रश्न होता है कि दुष्प्र-वृत्ति और असद्वृत्ति मे क्या अन्तर है ? इसे केवल आत्मा के रूप मे सोचना चाहिए। पति की सज्ञा मे पति के रूप की जो भावना है, उसे धर्म-निष्ठा, लक्ष्य के अनुरूप और सामाजिक नियमो के अनुसार निभाने की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार पिता, श्वसुर भाई, वहिन आदि सम्बन्धो को कर्त्तव्य के अनुसार निभाना सद्वृत्ति की सीमा मे लिया जा सकता है। सासारिक सम्बन्ध भी एक दूसरे का पूरक होता है। यदि उनमे अपूरकता होगी तो कर्त्तव्य उपेक्षित हो जायगा। पुत्र माता-पिता का पूरक तत्व है, उसका उनके साथ सम्बन्ध है। अत माता-पिता की सेवा करना उसका कर्त्तव्य है। यदि वह अपने इस कर्त्तव्य को नही निभाता है तो वह अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करता है। एक ही पद मे कुछ तत्व ग्राह्य माने गये हैं और कुछ त्याज्य। पति सज्ञा मे एक आदर स्त्री को ग्राह्य समझ कर पाणिग्रहण करता है, किन्तु पर स्त्री उसके लिए सर्वथा त्याज्य

है। यह शास्त्रीय मर्यादा है। इन सब वातो से स्पष्ट है कि शास्त्रीय दृष्टिकोण लेकर चलना ही सद्प्रवृत्ति से आता है। इसके विपरीत जो भी अशास्त्रीय बाते हैं वे असद्प्रवृत्ति मे मानी गई है। वे त्याज्य ही है।

जो दुष्प्रवृत्तियो के त्याग मे विश्वास नही रखते हैं वे सोचते हैं कि त्याग से क्या लाभ है ? मन मे भावना शुद्ध रहनी चाहिए, त्याग की कोई आवश्यकता नही है। ऐसी धारणा के अनेक व्यक्ति आपको मिल जायेगे। उनके अलग-अलग दृष्टिकोण होते है। उनकी मान्यतायें भी अलग-अलग होती है। ये लोग ज्ञान को अधिक प्रमुखता देते हैं। त्याग प्रत्याख्यान के दृष्टिकोण को वे गौण मानते हैं। उनके सामने जब कभी त्याग का प्रसङ्ग आता है तो वे इस ओर अपनी असमर्थता व्यक्त करने लगते है। जब त्याग मे विश्वास ही नही है तो करेंगे कैसे ? जब त्याग नही करेंगे तो जीवन का विकास नही होगा। क्योकि दुष्प्रवृत्तियो के त्याग ही से जीवन का विकास होता है।

त्याग और श्रद्धा

मैं शास्त्रीय दृष्टिकोण की बात कह रहा हूँ। समता दर्शन का सिद्धान्त वीतराग देव की दृष्टि का सिद्धान्त है। आप स्वय सोचिये कि वीतराग देव की आज्ञा के अनुसार चलने वाला त्याग करेगा या नही ? त्याग पर विश्वास रखने वाला सदा यही भाव रखता है। यदि मै कोई त्याग प्रत्याख्यान नही कर कर पा रहा हूँ तो यह मेरी अपनी कमी हैं। अवसर और सामर्थ्य प्राप्त होने पर वह त्याग करता भो है। उसका त्याग पर विश्वास है, श्रद्धा है। जहाँ सच्ची श्रद्धा होती है वहाँ त्याग की भावना जागृत रहती है। वास्तविकता तो यह है कि जो सम्यक् दृष्टि होता है वह दुष्प्रवृत्तियो का अवश्य ही त्याग करता है। अतः जिनके मनमे त्याग प्रत्याख्यान के प्रति विश्वास नही है, वे मिथ्यात्व की ओर अपने आपको ले जा रहे है। मिथ्यात्व मे फसा मनुष्य अन्धकार मे भटक जाता है। उसे सही मार्ग नही मिल पाता है। उसकी भावना एकागीण बन जाती है। उसका सर्वागीण विकास नही हो पाता। सर्वांगीण विकास तो सर्वागीण भावना से ही संभव है। भगवान् ने बुद्धि के दो रूप बताये है। एक प्रज्ञा और दूसरा प्रत्याख्यान। प्रज्ञा का अर्थ है जानना और प्रत्याख्यान का अर्थ है त्याज्य को त्यागना। इस समय आप उपदेश श्रवण कर रहे हैं। त्याग नही कर रहे हैं, परन्तु अपनी प्रज्ञा का लाभ तो ले ही रहे हैं। इसका यह

अर्थ हुआ कि प्रज्ञा लाभ लेने के लिए बैठे हुए आप स्वाभाविक रूप से अपेक्षाकृत त्याग मे बैठे हैं। भगवान् की वाणी श्रवण करने मे अपना विश्वास रखकर भगवत् प्रणीत त्याग सिद्धान्त मे भी अपना विश्वास व्यक्त कर रहे हैं। विश्वास एक बीज है। वह चाहे कितना ही छोटा हो, उसमे एक बडे से बडे वृक्ष का शरीर समाहित है। यदि बीज ही नहीं होगा तो वृक्ष कैसे बनेगा ? इसी प्रकार विश्वास के विषय मे समझ लेना चाहिए। विश्वास ही जीवन वृक्ष के विकास का सूचक है। विश्वास दृढ होगा तो भावना बढती जायेगी, त्याग भावना वृद्धिगत होती जायेगी। इस भावना के तीन रूप बताये गये हैं। एक जघन्य, दूसरा मध्यम और तीसरा उत्कृष्ट। इसमे पहिली स्थिति भावात्मक है। विश्वास की प्रधानता है। यहाँ दुष्प्रवृत्तियो के त्याग की भावना मन तक सीमित है। इसी का नाम "बीज" है। तीनो भावनाओ मे पहिली जघन्य भावना है। जब विश्वास मे तीव्रता आती है, वाचिक शक्ति काम करने लगती है। त्याग की प्रशसा मे शब्द मुखरित होने लगते हैं तब मध्यम भावना होती है। इसके बाद आचरण की बात आती है। जब त्याग आचरण का रूप ले लेता है तब उसे उत्कृष्ट जीवन कहा जाता है। यहा आकर मन, वचन और काया के साथ त्याग का अभिन्न सम्बन्ध जुड जाता है। यह त्रियोगात्मक त्याग जब मनुष्य करने लग जाता है तो उसे अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है। उसके अनुभव से दूसरे लोग भी लाभ लेते हैं। यह स्व-पर कल्याण की स्थिति है। सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र का सम्मिलित त्रिवेणी सगम है। एक प्रकार का आत्मिक तीर्थ स्थान है।

त्याग की अनिवार्यता

एक मनुष्य के हाथ मे हलुवे का थाल है। उसने अभी उसे खाया नही है। उसके मन मे तीन प्रकार के विचार चल रहे है। पहिला विचार तो यह है कि थाल के हाथ मे रहने से हाथ भरा हुआ है उसे स्वतन्त्र हो जाना चाहिए। जब तक हाथ इसे नही छोडेगा नही त्यागेगा तब तक स्वतन्त्रता सभव नही है। त्याग के बिना स्वतन्त्रता नही मिलती है। दूसरा विचार उठा कि हलुवा पौष्टिक तत्त्व दे रहा है। इस प्रकार वह [illegible] करने लगा। [illegible] उसकी [illegible] भी [illegible] करने लगा। तीसरी स्थिति मे उसने [illegible] किया। [illegible] उसने [illegible] मे दे दिया। यह तीसरी उत्कृष्ट [illegible] है। थाल के त्याग का [illegible] होगा। [illegible]

मुख ने भी त्याग दिया तो हलुवा पेट के अधिकार मे चला गया। यदि मुँह का त्याग मे विश्वास न होता तो बताइये उसकी क्या स्थिति होती ? उसका बोलना ही वन्द हो जाता। यह त्याग भावना का फल है।

यह त्याग के विषय को स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा उदाहरण दिया है। चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक। यह सहज स्वाभाविक त्याग की स्थिति है। नास्तिक को भी ग्रास मुँह मे डालना पडता है। मुख से आगे गले से उतारना पडता। पेट मे जाकर भी एक भाग दूसरे भाग मे भोजन को छोडता रहता है। यह प्राकृतिक स्तर की वात है। प्रकृति भी त्याग के अनुरूप चलती है। इसका यह अर्थ हुआ कि— जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए त्याग आवश्यक है। त्याग से जीवन सुखी बनता है।

राजनीति में भी त्याग आवश्यक :

एक व्यक्ति चुनाव मे खडा हुआ। अपने अपने अकथन परिश्रम और समर्थन से वह विजयी हो गया। उसमे राष्ट्र-कल्याण की भावना रही हुई थी। क्रमशः प्रयत्न करते-करते वह राज्य से केन्द्र मे चला गया। वहा उसे राष्ट्रपति पद के लिये चुना गया। जनता का प्रबल समर्थन पाकर वह राष्ट्रपति पद पर घोषित हुआ है, परन्तु जब तक "शपथ" नही लेगा, वह अपने अधिकारो का विधिवत उपयोग नही कर सकता। शपथ क्या है ? यह भी एक त्याग की प्रतिज्ञा है। समूचे राष्ट्र के लिए स्वार्थो का त्याग ही शपथ की परिधि मे आता है। इससे स्पष्ट है कि राजनीति के क्षेत्र मे भी त्याग की आवश्यकता रहती ही है। धार्मिक क्षेत्र हो या सासारिक, राजनैतिक हो या सामाजिक सब मे किसी न किसी रूप से त्याग को आवश्यक माना गया है। इतना अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए कि त्याग मे जाति पाति अथवा विसी सम्प्रदाय विशेष का कोई विचार नही होता। समता दर्शन सिद्धान्त के अनुसार जो त्याग करता है, वही त्यागी है।

जब तक दुष्प्रवृत्तियो के त्याग की भावना दृढ नही होगी। तब तक विकास का चरण आगे नही बढ़ सकेगा। साधना के विश्वास का जब प्रश्न आता है तो कुछ लोग सोचते-सोचते इतना सोचते है कि शून्य तक आ जाते हैं। शून्य चिन्तन का फल तो शून्य ही रहेगा। फिर पल्ले क्या पड़ा ? जब तक समता सिद्धान्त को भली भाति नही समझा जायेगा तब तक

कोई जीवन के महत्व को नही समझ सकता। जीवन का महत्व त्याग में है। दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करिये और सत् प्रवृत्तियो को अपनाइये। समस्त ज्ञान का यही रहस्य है। जब तक हेय वस्तु का ज्ञान नही होगा तब तक उसे छोडा कैसे जायेगा। जिसे ग्रहण करना है, उसे भी बिना समझे कैसे ग्रहण किया जायेगा? इसीलिए भगवान महावीर की उद्घोषणा है कि ज्ञेय को जानने का प्रयत्न करो, हेय का त्याग आवश्यक है और उपादेय को ग्रहण करने से ही जीवन विकास की ओर अग्रसर हो सकता है। यही समता सिद्धान्त दर्शन का सार है। इसे बार-बार सोचिये और विवेक पूर्वक जीवन मे उतारने का प्रयत्न करिये।

कमलसेन कुमार का कथानक आपको सुनाया जा रहा है। वह एक तरुण राजकुमार है। आज उसके सामने एक तरुणी दुष्प्रवृत्तियो का निमित्त बन कर खडी हुई है। वह बडे ही लुभावने शब्दो मे प्रार्थना कर रही है। उसकी वासना का जाल प्रत्येक क्षण विस्तृत होता जा रहा है। योग के सामने भोग गिडगिडा रहा है। किन्तु वह तरुण कुमार समस्त सिद्धात दर्शन का अनुगामी था। उसका अपने जीवन पर पूरा नियन्त्रण था। वह एक वीर योद्धा की भाति इस 'रण क्षेत्र' मे निर्भय और अडोल खडा हुआ है। कोई भी दुष्प्रवृत्ति उसे पकड नही पा रही है। यह स्थिति देखकर तरुणी का धैर्य टूटने लगा। जब उससे न रहा गया तो वह बडे ही विनीत भाव से कहने लगी—

राजकुमार! मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये। मुझे ठुकराने का विचार मत करिये। आप सोच रहे होंगे कि इसने मुझे छल से यहा बुलाया है। यह छल नही है, यह तो नारी की एक कला है। मेरा अपमान मेरी कला का अपमान है। समूची नारी जाति का अपमान है। नारी पवित्रता की प्रति मूर्ति होती है। बुद्धिमानो ने कहा है कि—

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से पैदा हुए, बडे-बडे बलवान॥

पवित्र होता है तो उससे होने वाला कार्य भी पवित्र होता है। मैं आपके सम्मुख कारण मात्र बनकर उपस्थित हो रही हूँ। अपनी पत (इज्जत) की रक्षा करने के लिए मैं आपको पति के रूप मे वरण करना चाहती हूँ। आप मेरे जीवन साथी बन जाइये। आप चुपचाप क्यो खडे है, कुछ कहिये न। अनायास ही आपके हाथ मे एक रत्न आ रहा है। इसे छोडिये मत, ग्रहण कर लीजिये।

बन्धुओ, आप देख रहे है—एक नारी किस प्रकार विनाश के कगार की ओर बढ़ रही है। बात कुछ ठीक भी है। विपय विकार मनुष्य को अन्धा बना देता है। उसे अपना हित अहित कुछ भी नही सूझता। एक ओर तो यह नारी उस तरुण की पति बनना चाहती है। उधर कवि आनन्दघन जी कह रहे है—

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे।

भगवन् ऋषभ जिनेश्वर मेरे प्रीतम है। मेरे पति है। उस तरुणी की भावना मे और कवि की भावना मे कितना अन्तर है ? कवि की यहा आध्यात्मिक दृष्टि है। उस ओर भौतिक दृष्टि की लालसा है। वह कुमार से कहती चली जा रही है। मैं वयस्का नारी हूँ। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। मैं सब प्रकार से उत्तम हूँ। मुझे एक उत्तम पुरुष की आवश्यकता है। उत्तम से सदा ही उत्ताम की आवश्यकता पूर्ण होती आई है। अतः आप मेरी उत्ताम आवश्यकता को पूर्ण करिये। मेरे पति बन जाइये। आप अनाथो के नाथ कहलाते है। फिर मेरे नाथ बनने मे आप सकोच क्यो कर रहे हैं ?

उस तरुणी के एक-एक शब्द मे आकर्षण था, एक लोच थी। सामान्य व्यक्ति के लिए ऐसी स्थिति का सामना करना बडा ही कठिन हो जाता है। यहा आकर बडे बडो के धैर्य टूट जाते हैं। शास्त्रीय भाषा मे इसे "मोह दशा" कहा गया है। आठ कर्मों का नाम तो आपने सुना ही होगा। जिन्हे पच्चीस बोल के थोकडे का ज्ञान होगा वे जानते ही होगे कि क्रम की दृष्टि से मोहनीय कर्म का चौथा स्थान है। वैसे तो प्रत्येक कर्म अपने-अपने स्थान पर बलवान होता है। किन्तु उनमे मोह कर्म की शक्ति सातो कर्मों से अधिक मानी गई है। यही इस आत्मा को अनादि काल से नाच नचाता चला आ रहा है। जो इसे जीतने मे तत्पर होता है, उसीका जीवन धन्य हो जाता है। कमलसेन कुमार मोहनीय कर्म की स्थिति को अच्छी तरह से जानता है। यही कारण है कि

वह इस वासनामय संसार में रहता हुआ भी पौद्गलिक वासनाओं से निर्लिप्त है। उसके जीवन में समता का साम्राज्य है, विषमता का नहीं। वह इस तथ्य को भली भांति समझ चुका है कि—

पर नारी पैनी छुरी, तीन ठौर ते खाय।
धन छीजै यौवन हरे, मरे नरक लेजाय।

पर स्त्री पैनी छुरी के समान है। वह मानव जीवन की तीन हानियां करती है। पहिले तो धन का नाश यौवन का ह्रास और फिर नरक का निवास। इस प्रकार पराई नारी का सम्पर्क मनुष्य को सभी प्रकार से दुःखदायी है।

राजकुमार तरुणी के दुष्प्रवृत्तिमय विचारों को सुनकर चिन्तन कर रहा है। यह स्त्री अपने कर्त्तव्य से भटक गई है। भटके हुए राही को उसकी सही राह बताना मानवीय कर्त्तव्य है। मुझे अपने कर्त्तव्य का दृढ़ता के साथ पालन करना है। मैं सत् प्रवृत्ति-मार्ग का पथिक हूँ। दुष्प्रवृत्तियों का त्याग करना मेरा मुख्य लक्ष्य है। इसको किस प्रकार समझाया जाय? जब यह सब कुछ कह शान्त हो जायगी, मैं इसके सामने अपने विचार रखूंगा। जीवन के संघर्ष में खरा उतरना है।

आन्तरिक-प्रीति

प्रार्थना

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो और न चाहूँ रे कत ।
रीझयो साहेब सगन परि हरे, भागे सादि अनन्त ।।१।।
प्रीत सगाई रे जगमा सहु करे रे, प्रीत सगाई न कोय ।
प्रीत सगाई रे निरुपाधिक कही रे, सोपाधिक घन खोय ।।२।।

यह प्रभु ऋषभदेव भगवान् की प्रार्थना है, जो आप के सामने की जा रही है। आध्यात्मिक दृष्टि से कविता का सकलन के साथ उसका अर्थ समझना भी नितान्त आवश्यक है। इन पंक्तियो मे सबके सामने समझ मे आने वाली अलौकिक स्थिति का वर्णन है। किंतु यह वर्णन बाह्य दृष्टि से तो सरल ज्ञात हो रहा है, उसका आध्यात्मिक रूप कुछ पृथक् है। उस रहस्य की अभिव्यक्ति तब तक मनुष्य नही कर पाता है, जब तक कि उस रहस्य का अनुसधान न कर ले। प्रार्थना में ऋषभदेव भगवान् के लिये "कत" के रूप मे, स्वामी के रूप मे, और पति के रूप मे जो भाव व्यक्त किये गये हैं वे अत्यन्त चिंतन करने योग्य हैं। भगवान् ? मैं आपको कत तो बनाना चाहता हूँ किन्तु जो दुनिया मे आम जनता मे कत और पति का जैसा रूप माना जाता है, मैं वैसा भाव लेकर नही चल रहा हू। प्रभु को यहा कत बनाने का तात्पर्य प्रीति से है, किन्तु वह प्रीति दुनिया की प्रीति से भिन्न है।

"प्रीत सगाई रे जग मा सहू करे, प्रीत सगाई न होई।" ?

कवि कहना चाहता है कि जग मे प्रीति की सगाई सभी करते हैं परन्तु वस्तुतः वह प्रीति की सगाई नही है क्योकि जहा आन्तरिक शक्ति से प्रीति की सगाई की जाती है वहा बीच मे उपाधि नही आती। प्रीति उपाधि रहित होती है। उपाधि का तात्पर्य यहा बीच के माध्यम से है। किसी के माध्यम से की गई प्रीति उपाधियुक्त होती है। दो व्यक्ति जब

स्वतन्त्र रूप से परस्पर बातचीत करके एक दूसरे के आन्तरिक भावों का आनन्द लेते हैं, वह आनन्द दूसरे के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अन्य व्यक्ति को बीच में रखने से कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं कि जिससे दोनों का वास्तविक प्रेम नहीं जुड़ पाता। वह बीच में रहने वाला उसमें अपना रङ्ग घोल देता है। उस समय प्रीति का नाश होने पर भी अप्रीति का रूपक बन सकता है। यह स्थूल अर्थ है जो आन्तरिक रूप से समझना है

किसी को माध्यम मत बनाओ

यदि भगवान् से प्रीति जोड़नी है, भगवान् को कंत बनाना है तो उसके बीच में किसी को माध्यम मत बनाओ। यहाँ माध्यम का तात्पर्य पाँच इन्द्रियों और द्रव्य मन से है। पाँच इन्द्रियों से, अर्थात् आँखों से किसी के साथ में कुछ देखने का प्रसङ्ग आता है तो आँखें नहीं देखती हैं, आँखों के पीछे रहने वाला तत्त्व देखता है। आँखें तो बीच में माध्यम होती हैं। आँखों के इस माध्यम से किसी को देखते समय कभी-कभी भ्रान्ति हो जाती है। नेत्र में यदि रोग हो तो वह देखना सही न होकर विपरीत हो जाता है। यदि आँखें ठीक हैं और वह यदि देख रहा है, तो देखेगा क्या? जो भी आँखों का विषय है वही तो देखेगा। इन आँखों का विषय रूप है और वह अधिक से अधिक चमड़ी तक सीमित है। चमड़ी के भीतरी देश को ये आँखें नहीं देख पाती हैं। संसार में जितने स्थूल पदा

परिणत हो जाती है। जो शास्त्र आपके सामने व्याख्यान के आरम्भ से सुनाया जा रहा है, उसमे राजा परदेशी का वर्णन चल रहा है। उसकी सूर्यकान्ता नाम की महारानी के साथ प्रीति हो गई। यह प्रीति सासारिक थी। जब तक इन दोनो मे इन्द्रियो के विषय का स्नेह रहा, प्रीति चलती रही, पर ज्योही राजा परदेशी का मन भोग से योग की ओर मुडा वह प्रीति अप्रीति मे परिवर्तित हो गई। प्राण प्यारी रानी सूर्यकान्ता द्वेष की प्रति मूर्त्ति बन गई। क्योकि अब उसकी इन्द्रियाँ भूखी रहने लगी। इन्द्रियो को जब विषय सम्बन्धी भोजन नही मिलता तो उनमे एक विशेष प्रकार की विकृति आ जाती है। ऐसी स्थिति मे व्यक्तिगत स्वार्थों का मुंह खुल जाता है। प्राण न्योछावर करने वाली रानी आज राजा से इन्द्रिय सुख न मिलने की स्थिति मे सोच रही है कि पतिदेव अब मुझ से किंचित भी स्नेह नही करते है, उनका ध्यान सदा आत्म-चिन्तन मे लगा रहता है, अब उन्हे न पुत्र का ध्यान है, न मेरा। और तो और न तो पुत्र को राज्य अधिकार दे रहे है, न मुझे राजमाता का पद ही प्राप्त हो रहा है! ऐसे पति से क्या लाभ है? इन्हे समाप्त करने पर ही मेरे अधिकार मुझे मिलेगे। बन्धुओ! आप देख ही रहे है—नकली प्रीति आखिर अपना रङ्ग ले ही आई, राजा जिस रानी को प्राणो से अधिक प्यार करता था, जीवन की प्रत्येक स्थिति मे रानी के रूप लावण्य पर अपना सब कुछ न्योछावर किये रहता था जिस रानी के नाम को सदा स्मृति मे रखने के लिए उसने अपने पुत्र का नाम "सूर्यकान्त" रखा था, आज वही रानी 'सूर्यकान्ता' उबल रही है। इन्द्रिय सुख न मिलने की स्थिति मे उसका यह रूप कितना भयंकर है। उसके जीवन मे अब स्नेह नाम की कोई वस्तु नही है। यह इन्द्रियो के माध्यम से प्राप्त प्रीति का परिणाम है। प्राण सङ्गिनी रानी प्राण घातिनी बन गई। यह सारी कथा अभी आपके सामने नही रख रहा हूँ क्योकि इस समय मेरा विषय दूसरी ओर मोड ले रहा है। यहा तो प्रसङ्गवश थोडा सा सकेत कर गया हूँ। आज जो सासारिक सम्बन्ध हम देख रहे हैं वे सभी उपाधियुक्त हैं, उनमे मोह मदिरा का प्रभाव प्रधान रहता है। आत्मा के साथ परमात्मा का सीधा सम्बन्ध जोडने की स्थिति उपाधियुक्त नही होती। उपाधि सहित सम्बन्ध को कवि जीवन-धन का अपव्यय मानता है। यह अपव्यय जीवन की सबसे बडी हानि है। पूर्व जन्म के पुण्यो से प्राप्त शक्ति का सदुपयोग ही जीवन को सफल बनाता है। वर्तमान मे प्राप्त वैभव का विवेक पूर्वक—प्रयोग करने से यह लोक और परलोक दोनो ही सुधरते हैं। इसी बात को कविता मे कहा गया है कि —

'प्रीत सगाई जगमां सहू करे रे, प्रीत सगाई न कोय' ?

सांसारिक प्रीति, प्रीति सगाई नहीं है अत वह निरर्थक है। परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोडने के लिए हमे इन्द्रिय जनित विषयो से ऊपर उठना होगा तभी हमारा निरुपाधिक आत्मिक रूप प्रकट होगा। इसके विपरीत यदि इस जीवन को बालक का खिलौना मात्र समझ रख दिया तो फिर पछताने के अतिरिक्त कुछ हाथ नही आयेगा।

आज हमे प्रार्थना की दृष्टि से ईश्वर के चरणो मे पहुँचना है तो वहाँ हमे समता सिद्धान्त का माईक्रोस्कोप पास रखना होगा। उसके बिना हम उपाधि रहित आत्मिक स्वरूप भगवान ऋषभ देव के साथ अपनी बुद्धि का सम्बन्ध नही जोड पायेगे। इस उपाधि को हटाने के लिए ही समता-सिद्धान्त की स्थिति का दूसरा सूत्र बताया गया था, जिसमे यह बताया गया था कि असयमी दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करके पूर्ण शुद्ध भावना मे विश्वास रखना ही श्रेयस्कर है।

बुद्धि की शुद्धि के उपाय ?

यह विश्वास मन और बुद्धि की शुद्धि का उपाय है। जब तक दुष्प्रवृत्तियाँ मनुष्य के मन मस्तिष्क मे रहेगी, तब तक शुद्ध प्रवृत्तियो को स्थान नही मिलेगा। म्यान मे सर्प घुसा हुआ है तो तलवार उसमे नहीं आ पायेगी। यदि तलवार को प्रविष्ट करना है तो सर्प को बाहर निकालना होगा। घासलेट से भरे हुए बर्तन मे घृत नही रखा जा सकता। उसमे घृत को भरने के लिए पहिले घासलेट को निकालना होगा। तिजोरी मे यदि रत्न सुरक्षित रखने है तो वहाँ से कोयले हटाने होंगे। प्रत्येक बात के पीछे दो स्थितियाँ रहती हैं

को भली भाति नही पा सकता है। मैं शास्त्रीय शब्दो में कहूँ कि वह सम्यग् दृष्टा नही बन सकता, क्योकि वीतराग भगवान ने सम्यक् दृष्टा के लिए प्रवत्ति और निवृत्ति दोनो का वर्णन पृथक्-पृथक् किया है।

यहाँ चरण की विधि बतलाई है जो सब ससार के प्राणियो के लिए हितावह है। जिस विधि को अपना कर वहुत से प्राणी ससार मे अपने आपको ऊपर उठा कर ससार से पार हो गए और उन्होने मोक्ष प्राप्त कर लिया चरम सीमा को प्राप्त कर लिया। वह चरण विधि क्या है? एक तरफ निवृत्ति और दूसरी ओर प्रवृत्ति। यह शास्त्रीय परिभाषा है। शास्त्रो मे कहा गया है कि निवृत्ति किस से करो और प्रवृत्ति किसमे करो असजमे णियत्ति च सजमेय पवत्तण उ० ३०-२ इसमे इस बात का सकेत दिया गया है कि असंयम से निवृत्ति और संयम मे प्रवृत्ति करो। असयम दुष्प्रवृत्ति है। इसी असयम के कारण संसार मे अशाति है। विषमता की जडें हैं। मानव का दानव बनने की स्थिति असयम से ही आती है, आज मनुष्य, मनुष्य न रह कर पशु बन रहा है, एक दृष्टि से उसका कारण भी असयम ही है। आज तो इस असयम की स्थिति यत्र तत्र विस्तार पा रही है। तान्त्रिक दृष्टि से जीवन के किसी भी क्षेत्र मे असयम का प्रवेश नही होना चाहिए, किंतु आज तो कोमल हृदय वाले बच्चो मे भी असंयम के सस्कार प्रचूर मात्रा मे प्रवेश पा रहे है। कभी-कभी तो किन्ही दो व्यक्तियो द्वारा ऐसा भी कहा जाता है कि हमे असंयम के लिए छूट दी जाय। हम अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति रखना चाहते हैं। हमारा सहशिक्षण हो, हमे 'सेक्स' की शिक्षा भी दी जाय। इस प्रकार की इच्छाओ के द्वारा असयम की प्रवृत्तियो को प्रोत्सान मिलता है। प्रत्येक वस्तु को समझने के लिए मनुष्य को विवेक से काम लेना चाहिए। जब तक इस तत्त्व को हम हृदयगम नही कर लेगे तब तक दुष्प्रवृत्तियो और सद् प्रवृत्तियो के रहस्य को नही समझ पायेगे। मैं कह रहा था कि वीतराग के मार्ग मे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो का प्रावधान है।

यहाँ इसी बात का सकेत हे कि दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करो। यह निवृत्ति है किन्तु सद् साधना मे विश्वास प्रवृत्ति है। जब तक आप सद् साधना को नही अपनायेगे तब तक निवृत्ति की साधना भी सफल नही हो सकती। झूठ नही बोलना यह निवृत्ति है लेकिन केवल मूक होकर बैठ जाय तो यह स्थिति सही नही है। इसका दूसरा पक्ष है - झूठ नही बोलना परन्तु यदि आवश्यकतानुसार बोलना पडे तो सत्य बोलना। यह प्रवृत्ति

है। किसी जीव को नहीं मारना यह निवृत्ति है, लेकिन जो मृत्यु के मुख में जा रहे हैं, जो अशान्ति के कगार पर खड़े हैं, उनका संरक्षण करना यह अहिंसात्मक प्रवृत्ति है। इसी प्रकार चोरी, कुशील, और परिग्रह का त्याग निवृत्ति है, तथा अचौर्य-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की साधना प्रवृत्ति मानी गई है। सभी व्रतों में निवृत्ति और प्रवृत्ति का समावेश है अतः दुष्प्रवृत्तियों का त्याग तथा सद् प्रवृत्तियों का पालन सबके लिए आवश्यक है।

पानी का प्रवाह, पहाड़ से चलता है, पानी स्थिर नहीं रहता क्योंकि उसका स्वभाव बहने का है। जिधर रास्ता मिलता है उधर ही वह चल पड़ता है। जिधर कुछ ढीली मिट्टी की कमजोरी मिलती है उधर ही बहकर वह अपना रास्ता बनाकर नदी का प्रवाह रूप ले लेता है। जब उस स्वच्छन्दता से बहने वाले पानी को मनुष्य ने बांधने का प्रयत्न किया तो उसके मनमें पानी के उपयोग की भावना जाग उठी। इसी भावना से प्रेरित होकर और पानी के अपव्यय को रोकने के लिए मनुष्य ने अनेक बांध बनाये हैं। स्वच्छन्द पानी तो जिधर भी रास्ता मिलता है उधर ही वह निकलता है, उस पर किसी का नियन्त्रण नहीं होता। उसे स्वयं को भी यह नहीं मालूम कि वह किधर जा रहा है? दूसरी ओर जो पानी बांध के रूप में नियन्त्रित हो चुका है, उसका उपयोग भी किया जा सकता है। उसे जिधर चाहो उधर ही ले जा सकते हो। यही बात आपके जीवन की है। जीवन का अनियन्त्रण समाप्त करो। उसे नियन्त्रित और सुव्यवस्थित रूप से चलाओ। इसी में आपके जीवन की सफलता निहित है।

पूर्णरूपेण पवित्र मान लिया जाय तो इसका जीवन इस बात का अपवाद है। अतः यह कथन एकागी लगता है। तरुण अपने अन्तर मे एक एक बात का विवेचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण कर रहा है।

आत्मवत्सर्वभूतेषु

नारी तभी पवित्रता का प्रतीक मानी जा सकती है, जब उसके हृदय मे वास्तविक रूप से समता सिद्धान्त घर कर जाय। जैसे माता अपनी सतान के प्रति भी ममता की भावना रखती है, वैसी ही भावना पडोसी की सतान के प्रति भी रहे। इससे भी आगे ससार के प्रत्येक प्राणी के साथ यथा सभव यथा शक्ति, ऐसी ही भावना विकसित होती रहे इससे नारी समाज की प्रतिष्ठा बढती है, सम्मान बढता है और उसके गुणो का विकास होता है। इसके विपरीत जो नारी सदा मोह मे ही उलझी रहती है, अपने नारीत्व का तनिक भी ध्यान नही रखती। दुष्प्रवृत्तियो की दासी बनी रहती हैं। उसे पवित्र कहना उचित नही है। उसके व्यवहार से परिवार, समाज, देश, तथा राष्ट्र सभी के जीवन को हानि पहुँचती है। बहिने यदि अपने जीवन के स्वरूप को भलीभाति समझले तो इन अधिक उपदेशो की आवश्यकता ही न रहे। क्योकि माता ही मनुष्य का सर्व प्रथम 'शिक्षक' है। वह अपने जीवन निर्माण की नैसर्गिक कला के द्वारा सतान को जैसा चाहे वैसा ही बना सकती है। यह कला कमल सैन की माता को ज्ञात थी। उसकी शिक्षा का ही यह प्रभाव था कि विकारो की भयकर आधी मे भी वह अडिग खडा हुआ था। वह बार बार यही सोच रहा था कि:-यह कैसी स्त्री है इसे अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का तनिक भी ध्यान नही है। इसने "परललना" रखने वाले को उत्तम पुरुष कह कर तो अपनी वास्तविकता ही प्रगट कर दी। "परनारी" रखने वाला उत्तम पुरुष कैसे हो सकता है? उसे तरुणी का भाव समझने मे कुछ भी देर नही लगी! उसने शीघ्र ही इस तथ्य को पकड़ लिया कि यह तो मुझे फसाने के लिए एक शाब्दिक जाल फेका गया है। कुमार ने तरुणी की सभी बातो को सुना और फिर बोला—

कमल सेन भी प्रगट रूप मे करता है उच्चार।
परस्त्री का त्याग किया, दोष लगे निरधार जी॥

बहिन? तुम्हारी बातो मे कोई-तथ्य नही है। तुम्हारे सभी प्रश्नो का उत्तर देने से एक विवाद खडा हो जायेगा किन्तु उत्तम पुरुष के साथ परललना का विशेषण लगा कर तुमने सूर्य पर राहू का कलंक लगा दिया

है। उत्तम पुरुष तो परस्त्रीगमन की तरफ देखता भी नहीं है। फिर रमने की तो बात बहुत दूर की है। वह तो अपनी विवाहिता धर्म पत्नि के अतिरिक्त संसार की भी स्त्रियों को अपनी माता या बहिन समझता है। आप उधर मुझे उत्तम पुरुष की कोटि में रखना चाहती हो और इधर मेरे साथ 'परस्त्रीगमन' का विशेषण लगाने का दुष्प्रयास कर रही हो यह कहां तक ठीक है ? मैं परस्त्रीगमन हूँ और मुझे आप रख लीजिए यह कैसी बेतुकी बात है। बहिन ? इस प्रकार की बात आपके मुंह से शोभा नहीं देती। आप तो मुझे भ्राता के तुल्य देखें। मैं आपका भाई हूँ। मैंने आज तक किसी भी विकारी भाव को अपने मन में नहीं घुसने दिया है। तुमसे भी अधिक सुन्दरी कन्या से मेरे विवाह का प्रस्ताव रखा गया था किन्तु मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। मैं अपने जीवन की वर्तमान गतिविधियों का गम्भीरता पूर्वक चिन्तन कर रहा हूँ। मैं जीवन का विकास चाहता हूँ। इसे बंधन में डालना नहीं चाहता। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं साधु बनने जा रहा हूँ। साधुव्रत की भावनाओं के निर्वहन में पूर्ण सक्षम हुए बिना उस व्रत को कैसे धारण किया जा सकता है। हां ऐसी भावना नित्य प्रति अवश्य रहती है कि वह दिन मेरे लिए धन्य होगा, जब मैं सर्व तो भावेन साधु बनकर अपने जीवन का कल्याण करूंगा। अभी मेरी ऐसी स्थिति नहीं है। दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प अवश्य है। अतः आप मेरे लिये—इस प्रकार की कल्पना भी न करें। मैं आपको बहिन कह चुका हूँ। इस पवित्र सम्बन्ध को पवित्रता के साथ ही निभाने का शक्ति भर प्रयत्न करूंगा। आपको भी इस सम्बन्ध के अनुरूप ही मेरे साथ व्यवहार करना चाहिए।

उत्तम जन तो नाना स्त्रीसम तत् त्याग करे विकार।
इससे ऐसा शब्द न बोलो मलीन बने संसार॥

है। यदि ये शब्द तुम किसी साधारण व्यक्ति के सामने प्रयोग कर जाती तो अनर्थ हो जाता। एक उत्तम कहलाने वाला पुरुष यदि पर स्त्री को रखता है तो फिर दूसरे साधारणजनो के लिए उसका निषेध कैसे किया जायेगा? तुम्हारी इस दृष्टि से दुष्प्रवृत्तियो को प्रश्रय मिलता है। आप कहती है, मै अनाथ हू ँ। मै सोचता हूँ कि आपकी अवस्था अनाथो जैसी नही है। फिर भी इसके अतिरिक्त आपको और कोई सरक्षण चाहिए तो मै सहर्ष देने को तैयार हूँ।

भय और प्रलोभन के दांव

मै आपको बहिन के रूप मे निर्वाह की दृष्टि से सहायता दे सकता हू ँ। जीवन भर तुम्हारा निर्वाह कर सकता हू ँ। धन धान्य आदि जो भी चाहो जुटा सकता हू ँ। आपकी सभी नैतिक इच्छाऐं पूर्ण कर सकता हू। इस दृष्टि से तो मैं आपको 'सनाथ' बना सकता हूँ, लेकिन आपकी भावना के अनुसार मै नाथ बनने को तैयार नही हू ं। आप मुझे चाहे जो कुछ भी कहे। तरुण राजकुमार के इन वचनो को सुनकर उस तरुणी के मन मे एकदम जोश उभर आया, वह कहने लगी अरे राजकुमार? तू क्या कह रहा है? क्या सोच रहा है? तुझे कुछ भान भी है। मेरे जैसी अप्सरा तुल्य तरुणी तुझे कहा मिलेगी? मुझे तू केवल इस शरीर के रूप मे ही न देख, मेरे असली स्वरूप अनुपम सौन्दर्य और साथ-साथ ही जीवन पर भी दृष्टि पात कर? मेरे वैभव के पीछे कितना अर्थ, कितना ऐश्वर्य और न जाने क्या-क्या संयोग जुटा हुआ है? तुम किसी देश के राजा बन सकते हो पर यह सौन्दर्य तुम्हे इस जीवन मे नही मिल सकेगा। यदि तुम मेरी बात स्वीकार कर लोगे तो यह सारा वैभव और इसके साथ-साथ मेरे जैसो तरुणी आपके चरणो की चेरी बनकर रहेगी। यदि आपने मेरी बात को स्वीकार न किया तो सोचले इसका परिणाम अच्छा नही होगा। इस स्थिति मे आप अपने जीवन से हाथ धो बैठेंगे। इधर जीवन का सर्वनाश है अब भी समय है, मैं स्पष्ट कह रही हूँ। कल्पलता के समान मै —आपकी सभी इच्छाओ को पूर्ण कर दूंगी। तरुणी जोश मे अपनी बात को कहती ही चली गई। कुमार के मन पर उसका कोई प्रभाव नही पडा। उसने अपनी सहज वाणी मे कहाः—

प्रलय काल की आधी आवे सूर्य करे अंधियार।
सर्वनाश होवे तो भी मैं करू नही स्वीकार॥

आत्म-साधना

प्रार्थना

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरोरे और न चाहु रे कत ।
कोई कत कारण काष्ठ भक्षण करे रे मलशु कन ने धाय ।
ए मेलो नवि कइये समवेरे मेलो ठाम न ठाय ।। ऋषभ०

यह ऋषभ देव भगवान् की प्रार्थना है। पद्य की पक्तियो मे एक विशिष्ट अर्थ निहित है। उसे पढते जाइये, अनुसधान करते जाइये, आपको एक अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। पिछली पंक्तियो के भावार्थ तो आप सुन ही चुके हैं, यहा शेष रही पक्तियो पर विवेचन करने जा रहा हूँ। अपने इष्ट को प्राप्त करने के लिए सासारिक आत्माए अनेक प्रकार के कष्ट सहन करती है। कभी उसकी चिता के साथ जल मरने का प्रयास करती है तो कभी पानी मे डूब कर या अन्य अनेक विधि के प्रयोगो से उसे अपने इष्ट (पति) को प्राप्त करना चाहती हैं ! किन्तु उनकी इन अज्ञान जन्य क्रियाओ से उन्हे अपने साध्य की सिद्धि प्राप्त नही होती। जब हम भगवान् को पति के रूप मे देखना चाहते हैं, तब हमारा लक्ष्य सीधा परमात्मा की ओर होता है। अपनी चेतना शक्ति को प्रभु के चरणो मे समर्पित करके उनके तुल्य बनना चाहते हैं। आध्यात्मिक रूप से यह पति का दर्शन है। यह दो महान् तत्त्वो के मिलन का प्रश्न है। सासारिक सम्बन्धो से ऊपर उठकर ही इस प्रश्न का समाधान हो सकेगा। प्रभु वीतराग बन चुके हैं। वीतराग दशा मे उनके लिए राग का कोई प्रश्न ही नही उठता है। सासारिक पति और पत्नी के सम्बन्ध में राग भाव की प्रधानता होती है। रागी व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया मे राग भावना किसी न किसी रूप में झलकती रहती है ? राग दशा एक प्रकार की विकृति है। ऐसी स्थिति मे यदि मानव, भगवान् से सम्बन्ध जोडना चाहता है, और वह भी पति के रूप मे। यह कैसे सभव हो सकता है ? सम्बन्ध सदा समान प्रकृत्ति मे ही हो

भगवान् को पति बनाना है तो आप बुद्धि ललना के सहयोग से ही ऐसा कर सकेगे। यदि उस बुद्धि को आत्मा के साथ जोड देते है तो हमारा प्रयास सफल हो जाता है। इस प्रश्न के समाधान मे लोगो ने अपने–अपने दृष्टि-कोण के अनुसार अलग २ मार्ग—(उपाय) बताये हैं, यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो इससे आत्म साधना सफल नही होगी। जीवन साधना के क्षेत्र मे हमे विवेक से कार्य करना होगा। व्यर्थ ही शरीर को कष्ट देने या उसे अग्नि जल आदि मे नष्ट करने से कार्य सिद्धि नही होगी।

मनुष्य अज्ञानता से भटकता है। समता सिद्धान्त के द्वारा प्राप्त ज्ञान से ही हम अपना जीवन प्रशस्त कर सकेंगे हमारे शरीर मे अनेक तत्त्व है शरीर एक पिड है उसमे सारे ब्रह्माण्ड का नक्शा रहा हुआ है। इस विषय को समझना भी आवश्यक है। साधना के क्षेत्र मे साधक चलता है तो वह साधक तीर्थकर जैसा नही होता। उस साधक के लिए किसी अन्य साधन सपन्न साधक की आवश्यकता रहती है। साधना मे चलता हुआ साधक यदि कभी बीमार हो जाय तो रोग के कारण उसकी साधना मे बाधा आ सकती है। असमर्थ और अस्वस्थ दशा मे कभी-कभी वह अपनी परिचर्या भी नही कर पाता। ऐसी स्थिति उसे निष्क्रिय बना देती है। दूसरे साधक, सत साथ मे हो तो बीमारी की अवस्था मे, सकट की अवस्था मे सहयोग कर उसे साधना मे आरूढ कर सकते हैं। इसलिए साधक के लिए अन्य साधको के साहचर्य्य की आवश्यकता है। अन्य साधको का समूह बनेगा, वह एक तरह से साधको का सघ बनेगा। सघ की स्थिति मे कार्य चालू होगा तो उसके साथ सघ मे किंवा समूह मे रहने वाले अन्य साधको का अस्तित्व स्वीकार करना पडेगा। मै जैसा साधक हूँ, वैसे ही मेरे साथ रहने वाले भी होने चाहिए। मेरा और मेरे साथियो का एक ही लक्ष्य है। जब दोनो का एक लक्ष्य होगा तो साथ चलने का प्रयास भी होगा, एक दूसरे के सुख दु ख मे सहयोगी भी होगे। इस भावना से जितने साधक चलने वाले होते हैं वे एक दूसरे के साथ हमदर्दी रखते हुए, उनका अस्तित्व स्वीकार करके चलते है। इसलिए दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करके चलने वाले साधक के लिए अन्य साधको का अस्तित्व स्वीकार करने की आवश्यकता है! एक साधक साधना की अवस्था मे शरीर को लेकर चल रहा है, उसे वस्त्र, मकान, आदि अन्य उपकरणो की भी आवश्यकता होगी। ये वस्तुएँ उसे उपार्जन करने वाले गृहस्थो से ही प्राप्त हो सकती है। इस स्थिति मे गृहस्थ का अस्तित्व भी स्वीकार करना पडेगा! इसके बिना जीवन की

पहले प्रत्येक प्राणी को अस्तित्व स्वीकार करो। अस्तित्व की दृष्टि से सोचा जाय तो सब आत्माओ के असख्य प्रदेश हैं, उन सब का बराबर अस्तित्व स्वीकार करते है तब एक आदर्श सामने आता है। वह यह है कि जैसे असंख्य प्रदेश हमारे है, उसी तरह के पशु के है और उसी तरह के एकेन्द्रिय मे भी है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब सब जीव समान हैं तो उनकी समान स्थिति दिखती क्यो नही है। हम पशु को देखते है वह विवेक शक्ति से चलता है, उसको समझने का प्रयत्न भी करता है, पर समझ नही पाता। जब पचेन्द्रिय मनुष्य को हम देखते है तो मनुष्य सब कुछ समझता है, उसकी बुद्धि का विकास हो रहा है, वह तो आज सृष्टि के रूप को सुन्दर बनाने जा रहा है, उसने आज क्या कुछ नही कर लिया है, आज मानव की बुद्धि कहाँ से कहाँ पहुच गई हैं, वह निरन्तर आगे गति कर रहा है। फिर आप कैसे कह सकते है कि एकेन्द्रिय और मनुष्य मे समान असख्य प्रदेश हैं। आपका तर्क और प्रश्न दोनो ही ठीक है और इसका समाधान हुए बिना मानव अपनी साधना मे शान्ति से नही बैठ सकता है, उसके मस्तिष्क मे उथल-पुथल मचती रहेगी। आज मेरे भाई अधिकाश साधना मे बैठते है, सामायिक करते है, धर्म ध्यान की भावना से चलते है लेकिन मन स्थिर नही रहता है। साधना मे मन नही लगता है। क्यो नही लगता है ? इसके कई कारण हैं। उनमे से एक कारण यह भी है, हम वस्तु स्थिति को ठीक तरह नही समझते है, जहा आत्मा और परमात्मा का प्रश्न है, मनुष्य के जीवन और एकेन्द्रिय का प्रश्न है, मनुष्य के शरीर और पशु के शरीर का प्रश्न है—उन प्रश्नो मे असख्य प्रदेश मान लेने की दृष्टि से, असख्य प्रदेश के साथ यदि तारतम्यता नही समझी गई और केवल रट लगाते रहे तो वस्तु स्थिति का ठीक से दर्शन नही हो पायगा शास्त्रीय दृष्टि असख्य प्रदेश एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय सबके समान है। उसकी हिसा सबकी हिंसा है, चाहे पचेन्द्रिय की हो, चाहे तीन इन्द्रिय की हो, चाहे एकेन्द्रिय की हो। तो यह सोचना युक्ति विकल है।

भगवान् ने आत्मा के असख्य प्रदेश बताये हैं। पर यह बताते हुए एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय का विकास समान नही बताया है। वहाँ विकास की दृष्टि से तारतम्यता बतलाई है। विकास की दृष्टि से एकेन्द्रिय का विकास न्यून है, असख्य प्रदेशो का उनमे सकुचन हो गया है। एक इन्द्रिय वाला एकेन्द्रिय जीव है, दो वाला द्वीन्द्रिय जीव है, तीन वाला त्रीन्द्रिय जीव है, चार इन्द्रिय वाला चारइन्द्रिय है। एकेन्द्रिय वाले और पंचेन्द्रिय वाले जीव

बठी है। ऐसी स्थिति मे किसी भी कार्य मे मन नही लगता हैं। पिछले दिनो जोधपुर के एक भाई यहाँ आये थे। वे कहते थे कि महाराज पाकिस्तानी हमले के दिनो मे हमारी हालत बडी खराब हो गई थी। सामायिक सवर आदि किसी भी क्रिया में मन नही लगता था। यही भय रहता था कि न जाने कब क्या हो जाय। हवाई जहाज आकाश मे मंडराते और हमे डर लगता न जाने कब किस समय बम गिरा दे। हम सदा भयभीत बने रहते थे। मन मे उथल-पुथल मची रहती थी। आपसी सघर्ष के कारण ही यह सारी विषमता कि स्थिति बनी। ऐसे समय मे किसी साधक का क्षेत्र कैसे प्रशस्त हो सकता था। शास्त्र मे गृहस्थ धर्म, कुल धर्म, सघ धर्म, नगर धर्म, और राष्ट्रधर्म आदि के बाद चारित्र्य धर्म का वर्णन किया गया है। आप सोचें नगर धर्म, राष्ट्र धर्म कुल धर्म और फिर अत मे श्रुत धर्म और चारित्र्य धर्म क्यो बतलाया गया? गृहस्थ धर्म का अस्तित्व स्वीकार किये बिना नगर धर्म नही टिक सकता हैं और नगर धर्म को स्वीकार किये बिना राष्ट्र धर्म नही टिक सकता है और राष्ट्र धर्म को स्वीकार किये बिना सघ धर्म नही टिक सकता है। इस धर्म व्यवस्था को निभाने के बाद ही हम श्रुत धर्म और चारित्र्यधर्म को जीवन मे उतार सकते हैं। नगर धर्म की व्यवस्था ठीक रहने पर ही नगर मे रहने वाले अपनी धर्म ध्यान आदि क्रियाऐ निश्चित होकर कर सकते है। आज आप जयपुर नगर मे शान्ति से बैठें हुए हैं लेकिन यदि आपके मस्तिष्क मे यह बात आ जाय कि नगर की व्यवस्था टूट गई है शहर मे लूट खसोट हो रही है तो क्या आप शान्ति से धर्म-उपदेश सुन सकेगे? आप उसी समय अपनी-अपनी व्यवस्था को ठीक करने मे लग जायेगे और उपदेश सुनना छोड देगे। जहा नगर धर्म की व्यवस्था टूटती है वहा अध्यात्मिक धर्म भी नही हो पाता। पाकिस्तान बन गया। वहा भी श्रुत धर्म और चरित्र धर्म है। कुछ वहाँ रह गये थे लेकिन क्या वे शान्ति से रह रहे थे? जो हिन्दू सरक्षण की दृष्टि से भारत मे आना चाहते थे, उन्हे यहा लाया गया। यह राष्ट्र धर्म का ही तो कार्य है। धर्म की आराधना के लिए इन व्यवस्थाओ का होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारा लक्ष्य आध्यात्मिक है, आत्मा से परमात्मा बनने का है। प्राणी मात्र का अस्तित्व स्वीकार करने पर ही हमारी आध्यात्मिक साधना सफल हो सकेगी। अपना एक लक्ष्य बनाकर अपनी आत्मा को देखिये। आप इस लाल भवन की तीसरी मंजिल के ऊपर कमरे मे जाना चाहते हैं। सडक पर खड़े खडे आप ने कमरे को लक्ष्य बना लिया। क्या आप सड़क से सीधे ही ऊपर चले जायेगे, इसके लिए आप को

बठी है। ऐसी स्थिति मे किसी भी कार्य मे मन नही लगता हैं। पिछले दिनो जोधपुर के एक भाई यहाँ आये थे। वे कहते थे कि महाराज पाकिस्तानी हमले के दिनो मे हमारी हालत बडी खराब हो गई थी। सामायिक सवर आदि किसी भी क्रिया में मन नही लगता था। यही भय रहता था कि न जाने कब क्या हो जाय। हवाई जहाज आकाश मे मंडराते और हमे डर लगता न जाने कब किस समय बम गिरा दे। हम सदा भयभीत बने रहते थे। मन मे उथल-पुथल मची रहती थी। आपसी सघर्ष के कारण ही यह सारी विषमता कि स्थिति बनी। ऐसे समय मे किसी साधक का क्षेत्र कैसे प्रशस्त हो सकता था। शास्त्र मे गृहस्थ धर्म, कुल धर्म, सघ धर्म, नगर धर्म, और राष्ट्रधर्म आदि के बाद चारित्र्य धर्म का वर्णन किया गया है। आप सोचे नगर धर्म, राष्ट्र धर्म कुल धर्म और फिर अत मे श्रुत धर्म और चारित्र्य धर्म क्यो बतलाया गया? गृहस्थ धर्म का अस्तित्व स्वीकार किये विना नगर धर्म नही टिक सकता हैं और नगर धर्म को स्वीकार किये बिना राष्ट्र धर्म नही टिक सकता है और राष्ट्र धर्म को स्वीकार किये बिना सघ धर्म नही टिक सकता है। इस धर्म व्यवस्था को निभाने के बाद ही हम श्रुत धर्म और चारित्र्यधर्म को जीवन मे उतार सकते हैं। नगर धर्म की व्यवस्था ठीक रहने पर ही नगर मे रहने वाले अपनी धर्म ध्यान आदि क्रियाऐ निश्चित होकर कर सकते है। आज आप जयपुर नगर मे शान्ति से बैठें हुए हैं लेकिन यदि आपके मस्तिष्क मे यह बात आ जाय कि नगर को व्यवस्था टूट गई है शहर मे लूट खसोट हो रही है तो क्या आप शान्ति से धर्म-उपदेश मुन सकेगे? आप उसी समय अपनी-अपनी व्यवस्था को ठीक करने मे लग जायेगे और उपदेश सुनना छोड देगे। जहा नगर धर्म की व्यवस्था टूटती है वहा अध्यात्मिक धर्म भी नही हो पाता। पाकिस्तान बन गया। वहा भी श्रुत धर्म और चरित्र धर्म है। कुछ वहाँ रह गये थे लेकिन क्या वे शान्ति से रह रहे थे? जो हिन्दू सरक्षण की दृष्टि से भारत मे आना चाहते थे, उन्हे यहा लाया गया। यह राष्ट्र धर्म का ही तो कार्य है। धर्म की आराधना के लिए इन व्यवस्थाओ का होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारा लक्ष्य आध्यात्मिक है, आत्मा से परमात्मा बनने का है। प्राणी मात्र का अस्तित्व स्वीकार करने पर ही हमारी आध्यात्मिक साधना सफल हो सकेगी। अपना एक लक्ष्य बनाकर अपनी आत्मा को देखिये। आप इस लाल भवन की तीसरी मंजिल के ऊपर कमरे मे जाना चाहते हैं। सडक पर खडे खडे आप ने कमरे को लक्ष्य बना लिया। क्या आप सड़क से सीधे ही ऊपर चले जायेगे, इसके लिए आप को

अनेक अस्तित्व स्वीकार करने पडेगे। पहिले द्वार मे प्रवेश करना पडेगा। सीढियो का अस्तित्व मानना पडेगा फिर कही गन्तव्यस्थान पर पहुँच पायेगें। इसी प्रकार मोक्ष को साधना के लिऐ ससार मे जितने प्राणी है उन सबके अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। आपने दैनिक पत्रो मे पढा होगा कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का एक समझौता हुआ हैं। भारत के अधिकारी दोनो देशो मे शान्ति का वातावरण बनाना चाहते है इसके लिए दोनो पडौसी देश शान्ति के साथ सभी समस्याओ का समाधान खोजे। जब तक इस ओर सच्चे हृदय से निर्णय नही किया जावेगा तब तक कोई भी राष्ट्र शान्ति से नही रह सकता।

नैतिकता का प्रहरी

कमलसेन का कथानक कुछ दिनो से चल रहा हैं। वह अपने जीवन का दृष्टिकोण सही बना कर चल रहा हैं। वह सोच रहा है कि गृहस्थ अवस्था की दृष्टि से सब अपना अस्तित्व रखते है। इस अस्तित्व मे नैतिकना अनैकतिकता दोनो ही होती हैं। नैतिक व्यक्ति नैतिकता पर चलता हैं, और अनैतिक व्यक्ति अनैतिकता पर चलता है। राजकुमार का जीवन नैतिकता का जीता जागता आदर्श था। तभी तो वह करुण क्रन्दन सुनकर जगल मे आया था। एक नारी की सुरक्षा के लिए ही उसने ऐसा किया था। वहा जाकर उसने देखा कि वह जिसे बचाने आया था वह उसे अपने रूप यौवन के जाल मे फसाना चाहती है। उस नारी ने अनेक वाक् जाल फैलाये, अनेक प्रपन्च किए, पर राजकुमार पर उनका कोई प्रभाव नही पड सका। तब उस स्त्री ने एक दाव और चलाया—पैतरा बदल कर उसने राजकुमार को रोका और कहा—कुमार? तुम अपने आपको राजकुमार मानते हो। पर आपने क्षत्रीय धर्म कलकित कर दिया। क्षत्रीय तो सिह के तुल्य होते हैं जब कि तुम तो आज श्वान वृत्ति दिखा रहे हो। श्वान सूने घर मे जाता है और चुपचाप दुम दबाकर निकल जाता है। पहले तो वीरता का दम्भ लेकर आपने इस भवन मे प्रवेश किया था, और अब चुपचाप दुम दबाकर भागे जा रहे हो। यह श्वान प्रवृत्ति नही तो और क्या है? मुझ से हार क्यो गये, कुछ आप भी वीरता दिखाओ। मेरे पास तो कोई शस्त्र भी नही है, मेरी बातो को सुनकर ही घबरा गये! राजकुमार उसके इन वचनो को सुनकर आश्चर्य मे पड गया और सोचने लगा—यह क्या कह रही हैं। यह अपनी भावना के अनुरूप सबको देखना चाहती है। मैंने इसे बहन मान लिया है। फिर भी इसका मन शान्त नही हुआ है। यह मुझे भाई के रूप मे

नहीं मान रही है। अपनी वासना को मुंह से उगलती ही जा रही है। कुछ भी हो मैं वीर हूँ। मैं इस नारी का गुलाम नही बन सकता। बन्धुओ ? उस राजकुमार के विचार कितने पवित्र है। वह किसी के मोह मे नही फसना चाहता ! वह अपने चरित्र का रक्षक है। एक नारी तो क्या उसे कोई भी शक्ति अपने मार्ग से नही डिगा सकती।

वासना के दास वीर नही होते, कायर होते है। आप जानते ही है रावण जैसे राजा के मन मे वासना की दासता आ गई थी। वह अपनी इच्छा पूर्त्ति के लिए सीता के चरणो मे लका का साम्राज्य भी चढाने को तैयार था। पर सीता एक पवित्र सती थी। रावण की सारी शक्ति का उसने डट कर मुकाबला किया ! अन्त मे जीत उसी की हुई। यह जीत उसकी पवित्रता की जीत थी। राजकुमार सोच रहा है मुझे वीरता का ताना मार कर यह अपना दास बनाना चाहती है लेकिन मैं काम शस्त्र से हारने वाला नही हूँ। इसके कहने मात्र से मैं श्वान थोडे ही बन जाऊगा। मै तो क्षत्रिय सिंह हूँ ? मेरी वीरता इसी बात मे है कि मैं प्रत्येक विषम स्थिति का डट कर सामना करू। यही मेरी वीरता का माप दण्ड है। अनैतिक कार्य वीर नही कायर पुरुष ही करते हैं।

राजकुमार ने कहा तुम मेरी वीरता को क्या चुनौती दे रहे थे। मै डर कर भाग नही रहा हूँ। अपितु दृढता के साथ अपनी स्थिति मे खडा हूँ शक्ति कोई दिखाने की वस्तु नही है। वह तो समय पर ही काम मे ली जाती है। तुम तो नारी हो, यदि देवागनाये भी आये तो वे भी मुझे अपने शील स्वभाव से नही हटा सकती। मै आध्यात्मिक क्षेत्र का सेनानी हूँ। शक्ति और विवेक मेरे शस्त्र है। मै तुम्हारे काम बाणो से घायल होने वाला नही हूँ। क्षात्र धर्म के साथ-साथ नैतिक बल भी मेरा अखण्ड सम्बल है। मै तुम्हे बहुत कह व मान चुका हूँ। यही सोच कर खडा हूँ। क्या अब भी तुम्हे कुछ कहना शेष है ?

तरुणी बोली—तुम अपने आपको वीर बता रहे हो। यह वीरता की बाते मेरे सामने कह रहे हो। मेरे सहारे ही इस जगल मे निर्भय खडे हो। जगल मे कोई शेर निकल आया तो तुम्हारी वीरता भाग खडी होगी।

उनसे रक्षा करूंगा। कुमार इतना कह ही रहे थे कि सामने से एक भयंकर सिंह आता हुआ दीख पडा।

सिंह भी चरणों में झुक गया

देखिये वह सिंह आ गया। अब आपकी वीरता का पता चल जावेगा। शीघ्रता करिये, कही सिंह आक्रमण न कर दे, तरुणी ने कहा।

कमलसेन बोला डरने को कोई बात नही है। वह हमारा कुछ भी नही बिगाड सकता। उसके पास कोई शस्त्र नही था, किन्तु मनोबल अवश्य था, आध्यात्मिक शक्ति थी। वह वीरता से डटकर खडा हो गया और अपनी समता भरी दृष्टि से सिंह की ओर देखने लगा। जिसकी दृष्टि सिंह से अविमेश रूप से मिल जाती है उस पर शेर आक्रमण नही करता है। उसके स्नेहपूर्ण दृष्टिपात मात्र से सिंह चरणो मे झुक गया। उस समय का दृश्य बडा ही समतापूर्ण था। सिंह का सिर सहलाते हुए राजकुमार बोले—देखा अहिंसा दर्शन का प्रभाव। यह मासाहारी पशु है किन्तु आज मेरा साथी बन गया है। इसमे भी आत्मा है और मुझ मे भी। जब मैं इसका शत्रु नही हूं तो यह मेरा शत्रु क्यो कर होगा। समता की भावना से आज मेरा मित्र बन गया है।

तरुणी कहने लगी—तू कोई मत्रवादी प्रतीत होता है अन्यथा सिंह जैसा क्रूर पशु तुझे मारे बिना नही छोडता। मनुष्य और सिंह मे तो सदा से शत्रुता रही है। इसके उत्तर मे कुमार कुछ कहना ही चाहते थे कि उस भवन के भीतर से एक युवा व्यक्ति हाथ मे नगी तलवार उठाये हुए निकला और ललकार कर बोला—अरे तू इस स्त्री से क्या बातें कर रहा है? जानता है यह कौन है? पराई स्त्री से इस प्रकार बातें करना अनैतिकता नही तो और क्या है?

इस नाटकीय दृश्य को देखकर कमलसेन आश्चर्यचकित हो गया। वह सोचने लगा—यह क्या प्रपच है। कुछ समझ मे नही आता इधर यह स्त्री है, इधर यह सिंह और बीच मे यह आदमी आगया। फिर भी वह साहसपूर्वक बोला—भाई मैं अपने आप यहा नही आया। इसने करुण क्रन्दन करके पुकारा तभी मुझे यहा आना पडा। इसे सान्त्वना देने की दृष्टि से ही मैं यहा आया हूं। अनैतिकता नाम की कोई स्थिति मेरे जीवन मे नही है। तुम बताओ कि तुम कौन हो? और यहा क्यो आये हो?

तेरे पास कोई शस्त्र नही है अन्यथा अभी तुझे बता देता कि मै कौन हूँ। पहिले शस्त्र सम्भाल फिर मेरा परिचय ले। वीरो का परिचय शस्त्रो से ही होता है। उसकी इन बातो से कुमार तनिक मुस्कराये और फिर बोले—यह ठीक है कि कि मेरे पास कोई बाह्य शस्त्र नही है पर मेरे पास ऐसा शस्त्र है जिसे कोई देख नही सकता। वह शस्त्र है समता का। इसी शस्त्र के सहारे मैं सभी सकटो का सामना करता हूँ और करता रहूँगा। तुम भी अपने बल का परीक्षण यदि चाहो तो करलो।

फिर तो तू डरपोक है। तूने जो अपराध किया है, मैं तुझे उसका दण्ड अवश्य ही दूंगा। ले सभल जा। अब मैं बताता हूँ कि मै कौन हूँ। अपनी व्यर्थ की बाते बन्द कर और मरने को तैयार हो जा। अभी वह इस प्रकार कुछ कह ही रहा था कि कुमार ने एक झटके मे उसके हाथ से तलवार छीन ली और उसे आकाश मे घुमाकर कर कहा—लो अब तो मेरे हाथ मे शस्त्र आ गया। बोलो तुम क्या चाहते हो? मेरा बल देखना चाहते हो तो वह भी देख लो। यदि प्राण बचाकर भागना चाहते हो तो भाग जाओ। कुमार के इतना कहते ही उस युवा व्यक्ति ने दूसरी तलवार सम्भाल ली। अब दोनो के हाथ मे शस्त्र है। दोनो एक दूसरे के सामने खड़े है। एक समता मार्ग का सैनानी है तो दूसरा विपमता का। इसे दो व्यक्तियो का संघर्ष न कहकर समता और विपमता का सघर्ष कहूं तो अधिक उपयुक्त होगा। समता युगो-युगो से जीतती आयी है फिर भी उसमे अभिमान नही है और विपमता हर बार हारी है फिर भी उसकी अह की भावना नही मिट पाई है।

कुमार वीतराग के सिद्धात पर विश्वास रखता है। वह निरपराधी पर कभी प्रहार नही करता। हा, यदि कोई उस पर प्रहार करता है तो फिर उससे दो-दो हाथ किये बिना नही रहता। सामने खडे व्यक्ति को प्रहार करने की स्थिति देखकर वह उससे लोहा लेने को तैयार हो जाता है।

अभी आक्रमण प्रत्याक्रमण होने ही वाला था कि सारा दृश्य क्षण के क्षण मे कुछ से कुछ हो गया। अब न वहा भवन है, न सिंह, और न खड्ग धारी मनुष्य। वहाँ तो दिव्य स्वरूपधारी देवता नम्रतापूर्वक हाथ जोडे खडा है। चारो ओर मे कमलसेन कीजय जय की ध्वनियाँ आ रही है। वह देवता क्षमा-याचना करते-करते बोला—आप धन्य है। आपके समान इस ससार मे अन्य कोई दूसरा वीर नही है। आप पुरुप ही नहीं महापुरुप हैं।

मैं तो पहले ही आपके चरणों मे आना चाहता था परन्तु परीक्षा लेने की भावना एकाएक उठ खडी हुई थी। आप सचमुच ही जीत गये और मैं हार गया। इस रूप मे आपके दर्शन करके मै धन्य हो गया। इतना कह कर उसने एक वार फिर राजकुमार के चरणो मे नमस्कार किया और क्षण के क्षण मे आखो से ओझल हो गया। कमलसेन कुमार एक बार तो इस नाटकीय दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित हो गये। परन्तु दूसरे ही क्षण अपनी स्थिति को सम्भालते हुए विचार करने लगे—यह सब कुछ वीतराग वाणी पर चलने का फल है। आज मेरी नही समता सिद्धात दर्शन की विजय हुई है। यदि मै तनिक भी अपने मार्ग से डिग जाता तो मुझे यह सौभाग्य कभी नही प्राप्त हो सकता था। अपनी कर्त्तव्य परायणता के कारण ही आज मै इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ हूँ। अन्यथा न जाने क्या होता। इस सभी वातावरण से कुमार की आत्मिक दृढता को और भी प्रोत्साहन मिला। उसने अपने जीवन को और भी अधिक विकसित करने का सकल्प कर लिया। थोडी दूर पर सामने एक वृक्ष के नीचे गये और शुद्ध भावेन ध्यानस्थ हो गये। ध्य न मे पुनः-पुन अपने लक्ष्य का चिन्तन करने लगे।

लाल भवन
१८ अगस्त, ७२

